कोद—दो०	नं०	५७२	लाने—दो०	नं०	५६५
स्यों—दो०	नं०	२५१	चटक—दो०	नं०	२५१
रहँटघरी-दो०	नं०	१४२	देखबी / बीधे / गीधे ,,	नं०	६९३
चाला—दो०	नंबर	३१९	डरो रहौं ,,	नं०	७०७
सदं—दो०	नं०	३९०			
खिसी—दो०	नं०	४२१			
डारेरहत-,,	नं०	५२२			

विवाह हो जाने पर बिहारीलाल अपनी ससुराल 'मथुरा' में जा बसे। वहां निरादृत होने पर जयपूर पहुंचे। इसी निरादर ने बिहारी से यह दोहा कहला डालाः--

दो०--आदर जात न जानिये, तेजहिं तजि सियरान।

घरहिं जँवाई लौं घट्यौ, खरो पूस-दिन-मान॥

जयपूर में विहारी ने क्या करामात की सो सब लोग जानते हैं। इनका ठीक जन्म-संवत वा मृत्यु-सम्वत् ज्ञात नहीं, पर अनुमान कहता है कि जन्म सम्वत् १६६० और मृत्यु सम्वत् १७२० के लगभग होगा।

विहारी ने फारसी, अरबी, तुरकी और राजपूतानी शब्दों के सहारे भी बड़ी अच्छी उक्तियाँ कही है, अतः जान पड़ता है कि ये बड़े ही खोजी, सूक्ष्मदर्शी और अनुभवी थे। प्रकृति परीक्षण में तो बड़े ही निपुण थे। शृंगार रस के विलक्षण प्रतिनिधि थे, क्योंकि आप प्रत्येक प्रकार की घटना को लेकर शृंगार में घटित करते थे। प्रमाण में देखिये दोहा नं ५४, ६१, ६३, ६५, ६६, ७५, ८३, ९६, १०४, १२१, १२४,१४२, १४८, इत्यादि। कहाँ तक कहें सारी पुस्तक इसके प्रमाणों से भरी है।

हमारा निश्चय है कि जिस प्रकार शांतरस में तुलसी-

दास जी, और वीररस में भूषण मुख्य माने जाते हैं उसी प्रकार शृंगार रस वर्णन में विहारी ही का नंबर प्रथम है। मिश्र बंन्धुओं ने बिहारी को 'देव' से मध्यम ठहराने की चेष्टा की है सही, पर यह उनकी धींगा-धींगी है। हम मिश्र बन्धुओं की 'नवरत्न' नाम की पुस्तक से ही प्रमाणित कर सकते हैं कि उन्होंने बिहारी के अनेक दोहों का अर्थ ही नहीं समझा। अनर्गल ही लिख मारा कि विहारी ने देव के भावों को अपहरण किया है। प्रत्युत सत्य बात यह है कि देव ने ही बिहारी के भाव लेकर अपनी कविता का अधिक भाग शृंगारित किया है। हम यह नहीं कहते कि देव जी अच्छे कबि न थे, पर देव और बिहारी में बड़ा अंतर है। हमें तो विहारी के मुकाबले में देव जी ही मध्यम जान पड़ते हैं।

विहारी काव्यरीति के पक्के ज्ञाता थे। काव्य साहित्य के जानने के लिये जितनी सामग्री दरकार है वह सब सतसई में ज़रूरत से ज्यादा भरी पड़ी है। उस सामग्री को देखते हुए हमारा यह अनुमान है कि बिहारी अलंकारों के बड़े उत्कट भक्त थे। एक एक दोहे में पांच, सात दस, पंद्रह तक अलंकार मौजूद हैं। इस टीका में हमने कई एक दोहों का विलक्षण अर्थ किया है, उसका कारण यही है कि हमने मुख्य अलंकार का ध्यान रख कर ऐसा किया है। यदि वैसा अर्थ न करते तो अलंकार की स्थापना बिगड़ती। उदाहरण के लिये देखिये दोहा नंबर ५६५,

इस पुस्तक के प्रकाशन में काठियावाड़ प्रांतान्तर्गत 'गनौद' निवासी श्रीयुत ठाकुर गोपालसिंह रामसिंह जी ने अच्छी सहायता दी है, अतः मैं उनके निकट अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूं।

मूल ग्रन्थ में श्रृंगार वर्णित है 'व्रजविहारी' का, कवि हैं विहारी नामधारी, भला इन युगल विहारियों के निकट तक 'दीन' जन कैसे पहुंच सकता है। अतः बहुत संभव है कि भारी भूलें हुई हों। सज्जन साहित्य सेवियों और सत्कवियों से सविनय प्रार्थना है कि भूल चूक क्षमा करके मुझे सूचित कर दें, जिससे मैं आगे वैसी भूल न करूं।

काशी,
जन्माष्टमी सं० १९७८

निवेदक—
भगवानदीन

प्रस्तावना

मेरे परम मित्र श्रीमान् पंडित पद्मसिंह शर्म्मा जैसे मर्द-मैदान और लायक़ जेनरल के होते हुए मेरे जैसे साधारण सिपाही का बिहारी के कविताक्षेत्र में आगे बढ़ना बेअदबी है, और यदि एक साधारण छोटी सी भूमिका की बात न होती और अपने बीमार कमीदान का "कमांड" न होता तो शायद मुझे कलम उठाने की हिम्मत न होती।

सतसई-संजीवन-भाष्य की भूमिका जिस आनबान से निकल चुकी है, हिन्दी संसार में कौन ऐसा है जो नहीं जानता। उस भाष्य के लिये हजारों कविता-रसिकों की टकटकी लगी हुई है। एक दो नहीं, सैकड़ों पत्र तक़ाज़ों में आ चुके है। नौबत यहां तक पहुंची कि भूमिका का पहला संस्करण स्वयं प्रायः समाप्त हो गया है, पर अभी भाष्य ग्रंथकार के ही पास रखा हुआ है। "गुण न हिरानो गुण ग्राहक हिरानो है।" विद्यावारिधि की वड़वानलवाली बिषम ज्वाला से झुलसेहुए हृदयों के लिये वह संजीवनी न जाने कब किस धवलागिरि से प्रकाशित होगी। देखें किस महा-वीर को इसका श्रेय मिलता है।

हिन्दी-संसार को आश्चर्य्य में डालनेवाला और सनसनी फैलाने वाला एक और समाचार मुद्दत से सुन रहे हैं। सुनते हैं कि बिहारी के कवित्वरत्नाकर को स्वयं रत्नाकर आजकल बैठा मथ रहा है और चौदह नहीं वल्कि चौदह सौ रत्न निकाल निकाल संचय कर रहा है। इतना बड़ा इतने महत्व का काम हो रहा है, पर इन रत्नों के ग्राहकों को अभी शायद

खबर नहीं हुई, वरना देवासुर-संग्राम में क्या बाकी था ! सारांश, अभी इन रत्नों का प्रकाश संसार में नहीं फैला है। कविता-कामिनी इनसे सजने के लिये लालायित हो रही है, बड़े बड़े जौहरी, अच्छे अच्छे पारखी बाट जोह रहे हैं कि इनका पारसल कब पहुंचता है।

खरगोश सो रहा था, कि कछुवा धीरे धीरे टहलते टहलते मंजिल पर पहुंच गया। हमारे परम मित्र लाला भगवानदीन जी भी बिहारी को सुबोध बनाने के लिये टीका तय्यार कर रहे थे। उस्ताद ठहरे, लड़कों की खातिर आपने "बिहारी बोधिनी" समाप्त की। आज वही छप कर पाठकों के सामने मौजूद है। आखिर लड़के कबतक इन भाष्यों की राह देखते !

हिन्दी भाषा के अनेक रसिक जिन्हें बिहारी की कविता के उद्यान में विहार करने का शौक होता है छूटते ही यह पूछते हैं कि किस की टीका लूं जो आज कल के नये ढंग से बिहारी-वचनामृत का आस्वादन करावे। लाचार हो कहना पड़ता है कि ठहरिये, आपके मन की टीकाएँ छपा ही चाहती हैं। परन्तु वास्तविक बात यह है कि बिहारी-संजीवन भाष्य की भूमिका का भी पूरा आनन्द उसे ही मिल सकता है जिसने बिहारी-सतसई पहले कभी पढ़ी है। बिहारी की कविता से साधारण परिचय भी रुचि उत्पन्न कराने को पर्य्याप्त है। समुद्र में डुबकी लगाने और मोती निकालने की हिम्मत धीरे धीरे होती है, आरम्भ में तो किनारे पर ही खड़े खड़े सागर के हिलोरों का तमाशा देखना काफी होता है और अनायासःही बालू में पड़ी सीपियों से अपनी रस-पिपासा बुझानी पड़ती है। शेक्सपियर को आरंभ करने वाले पहला पृष्ठ पढ़ते ही डौडन की सैर नहीं करने लग जाते। उन्हें पहले

डैटन के नोट ही बड़े काम के लगते हैं। महाकवि बिहारी के लिये भी डैटन का सा नोट बनाने वाला चाहिये और मित्रवर लाला भगवानदीन ने "बिहारी बोधिनी" लिख कर हिन्दी के लिये डैटन का ही काम किया है। इस पवित्र सेवा के लिये विद्यार्थीवृन्द रोम रोम से आप को असीसेगा।

शृंगार रस के कवियों में केशव, तोष, दास, देव, मतिराम, पद्माकर आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। इन में से प्रत्येक ने नायिका भेद पर रीतिग्रंथ लिखे हैं, भावों रसों का स्वतंत्र वर्णन कर के चुने चुने उदाहरण दिये हैं। रीतिग्रंथ लिखना आचार्य्यत्व का दावा है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इनमें से हर एक ने मौलिकता और अनोखापन दिखाने में कोई बात उठा नहीं रखी। स्वाभाविकता का भी गला घोटने से कहीं कहीं बाज न आये। शब्दों के तोड़ मरोड़ से भी जी न भरा, अपने पूर्व के कवियों के भाव, उनकी बारीकी छीनने की कोशिशें कीं, पर वह भी भरपूर बन न पड़ा। इनमें से कई फिर भी कविता के आचार्य्य पद पर आसीन हैं। हमारी समझ में सर्वतोभावेन इन सब में 'दास' का पद सब से ऊँचा है। इनकी कविता प्रांजल है। शब्द-विन्यास में औचित्य का विचार पाया जता है। प्राचीन परम्परा इनके हाथों क्षतविक्षत नहीं हुई। 'देव' इनके टक्कर के कवि थे सही, पर देव ने शब्दों की जैसी कपालक्रिया की है, उनके वाक्यों में अस्वाभाविकता आ गयी है। उससे मेरी राय में वह अनेक स्थलों में दास से पीछे रह जाते हैं। दास को मजमून उड़ा लेने की चोरी लगायी गयी है, पर वस्तुतः यह उसकी सीना जोरी थी कि औरों को उसने राह बतायी कि भाव यों व्यक्त करते हैं, कलम तोड़ना इसे कहते हैं।

विहारी का पद इन समस्त शृंगार के आचार्यों से ऊँचा है। उसने रीतिग्रंथ संभव है लिखा हो, पर आज संसार केवल एक सतसई से परिचित है जो शृंगार रस का सात सौ मणियों से अलंकृत मुकुट है। जो सुसंगत शब्द योजना के रंग से रंगी हुई मानव हृदय के गंभीर से गंभीर भावों की जीती जागती सात सौ तस्वीरों का अलवम है, सुरक्षा है, जिसे जितना ही उजाले में देखते हैं उतना ही चटकीला भड़कीला उतनाही मनोमोहक पाते हैं। "अर्थ अमित अरु आखर थोरे" वाली उक्ति का एक एक दोहा खासा नमूना है। सागर को गागर में भर रखा है। सब से अधिक विशेषता तो यह है कि जहां शृंगार रस के अन्य उपासकों ने सजावट की खूबी से, शब्द बाहुल्य से, भरती के वाक्यों से असली मूर्तिको छिपा दिया है, वहां इस महाकवि ने शृंगार देवता की मनोहर मूर्त्ति में जान डालकर स्वाभाविक सुषमा से भूषित कर के उसे सादी पोशाक पहना कर हमें प्रत्यक्ष कर दिखाया है—और वह भी इस लिये नहीं कि वह दिमाग निचोड़ निचोड़ रीति-ग्रन्थों के लिये उदाहरण गढ़ रहा था, बल्कि उसके हृदय में शृंगार का समुद्र उमड़ रहा था और सहज ही एक एक चुना हुआ रत्न कभी कभी—या जैसा कि प्रसिद्ध है, नित्य एक एक दोहा—प्रकाश में लाता जाता था। ऐसी दशा में देव आदि पीछे के कवियों को विहारी से भी ऊँचे बिठाने की चेष्टा करना, विहारी का तो थोड़ा किन्तु काव्य-मर्मज्ञता का अत्यधिक अपमान करना है। हिन्दी-साहित्य में विहारी के दोहों ने अपने लिये एक विशेष स्थान बना लिया है, जिसका भद्दा अनुकरण करने के सिवा आज तक किसी कवि ने अधिक सफलता नहीं पायी है। सूरदास के पद, तुलसीदास की चौपाइयाँ और विहारी के दोहे अपना सानी नहीं रखते।

ही हुआ करता है ? यदि विहारी का यह कल्पना चित्र न होता, फोटो होती, तो कुछ उपालम्भ न था। परन्तु इस कल्पना के लिये दायित्व नवरत्नकारों पर है। विहारी के विषय में उनकी कैसी अच्छी कल्पना है! जान पड़ता है कि नवरत्नकारों की राय में विहारी का चरित्र ऊँचा न था। हमें विहारी की वकालत नहीं करनी है परन्तु आज यदि विहारी होता तो साहित्य-सेवियों की पंचायत में अवश्य अपने इस अपमान की फर्य्याद करता।

सुनते हैं विहारीदास चौबे के वंशज अभी बूंदी में मौजूद हैं और राजकवि के पद पर शोभित हैं। मिश्रबन्धु-विनोद में पं० अमरकृष्ण चौबे की कविता से पता चलता है कि विहारी की आठवीं पीढ़ी में चौबे जी हुए हैं। कुछ शब्दों के प्रयोग से कई विद्वानों की समझ में विहारी बहुत कालतक बुन्देलखंड में भी रहा है। पर उनके प्रमाण मेरी समझ में पुष्ट नहीं हैं। विहारी की भाषा आदर्श ब्रज भाषा है और सतसई के दोहे उसने मीरज़ा राजा जयसिंह के आश्रय में अधिकांश जयपुर में ही रचे। मीरज़ा राजा जयसिंह फारसी का अपूर्व विद्वान और कट्टर मुसलमान औरंगजेब बादशाह का एक मात्र विश्वास पात्र अमात्य था। हिन्दी की कविता का रसिक भी न था। यह तो विहारी की कविता का अपूर्व चमत्कार था जिसने पत्थर में भी छेद कर दिया और अ-रसिक को रसिक बना डाला। विहारी स्वयं कहता है:— "भये भेट जयसाहिसों भाग चाहियत भाल"। यह सच मुच उसका सौभाग्य था कि मीरज़ा साहब उसके कलाम पर रीझ गये, वरना कहाँ राजकीय कूटनीति और कहाँ शृंगार रस !

यदि साहित्य-संसार में रचना की दीर्घ-जीविता और लो
प्रियता ही उत्तमता की कसौटी मानी जाय तो हमको मान
पड़ेगा कि भक्ति-भाव प्रदर्शन में, शान्त रस के सम्पादन
जो पद सूर और तुलसी को मिल चुका है वही पद प्रा
शृंगार रस के लिये विहारी को भी प्राप्त है। सतसई
टीकाओं और अनुवादों की संख्या स्वयं उसकी लोक-प्रिय
और दीर्घ-जीविता का प्रमाण है। उसका वारंवार "अनुक
णीय" समझा जाना उसकी उत्तमता की मुहर है। ऐसा स
भाग्य विरले ही कवियों को प्राप्त होता है। यूनानी भाषा
महाकवि होमर, कहाँ जन्मा किसी को पता नहीं, पर यूना
के सात नगर इस गौरव के लिये झगड़ा करते थे। कालिदा
के जन्म स्थान के लिये इसी तरह के झगड़े मुद्दत से चल
हैं। आज बंगालियों ने भी कहीं अपने देश में उनका जन्
स्थान ढूंढ़ निकाला है। तुलसी और सूर को अपनाने
अनेक वंश और अनेक स्थान प्रयत्न शील हैं। विहारी अमु
ब्राह्मण थे, अमुक स्थान के थे इस बात के भी अनेक दावीदा
हैं। विहारी का महत्व और उसकी लोक प्रियता इससे स्पष्ट है

यह स्थल तुलनात्मक समीक्षा के लिये उपयुक्त नहीं है
परन्तु विहारी-बोधिनी की प्रस्तावना में हम इतना कहे बिन
नहीं रह सकते कि "हिन्दी नवरत्न" में रत्नों के प्रसिद्ध पार
खियों ने विहारी पर अनुचित रीति से आक्रमण किया है
समीक्षा और समालोचना काव्य-पारखियों के लिये काँट
है, हर एक अपने पैमाने से नापता अपने बाँट से तोलता है
परन्तु यह हमारी समझ में नहीं आता कि विहारी का चित्र
गुण्डों और शुहदोंकासा बनाना किस समीक्षा की रीति है
शृंगार रस के कवियों का आदर्श रूप और चरित्र क्या ऐस

कहते हैं कि बिहारी अनुमानतः साठ बरस जिया [सं० १६६० – १७२० विक्रमी]। ऐसी दशा में ऐसे बड़े सहृदय कवि की रचना केवल ७२५ दोहों में सीमित हो, यह बात कल्पना में नहीं आती। परन्तु जो हो और कोई रचना उसकी देखी नहीं गयी। इसकी कविता के गुण-ग्राहक इसके जीवन में ही हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों में हजारों हो चुके थे, परन्तु इसकी लोक-प्रियता ऐसी जबरदस्त थी कि तब से अब तक इकतीस या बत्तीस टीकायें बन चुकी हैं। ढाई सौ बरसों में ही इतनी टीकाओं का बनना साधारण बात नहीं है। जहां सामान्य ग्रंथों का जीवन दस बीस बरसों से अधिक नहीं होता वहां औसत आठ बरस में एक एक टीका क तय्यार होना विलक्षण जीवन-शक्ति का प्रमाण है।

इतनी टीकाओं के होते भी वर्त्तमान टीकाकार ने एक बड़ी आवश्यकता की पूर्त्ति की है। कोई टीका अबतक कालिज के छात्रों के लिये उपयुक्त अर्वाचीन ढंग से लिखी नहीं मिलती। साधारण विद्यार्थियों के लिये लिखते हुए भी कवि के चमत्कार का स्थान स्थान पर इस टीका में निदर्शन किया है। महत्व के शब्दों के अर्थ दिये हैं। अलंकार बतलाये हैं। कहीं कहीं "प्रीतम जी के उर्दू के पद्यानुवाद के नमूने भी हैं। अच्छा होता यदि प्रीतम जी हर दोहे के साथ अपना उर्दू पद्यानुवाद देने की उन्हें आज्ञा दे देते। लाला जी की टिप्पणियां उनके गंभीर अध्ययन का पता देती हैं। आप की भाषा स्पष्ट है। साधारण विद्यार्थियों की जितनी आवश्यकताएँ हैं सभी पूरी की गयी हैं। आप स्वयं प्रसिद्ध कवि एवं कविता-रत्न के पारखी हैं साथ ही हिन्दी साहित्य के अध्यापक हैं, आपकी टीका जिनके लिये लिखी गयी, जिस उद्देश्य से लिखी

गयी, उनके लिये एवं उस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये पूर्ण-रीत्या उपयुक्त है। टीका इसे ही कहना चाहिये। यदि "दीन" जी इस टीका को अधिक विस्तार से लिखते तो दीन-धनहीन विद्यार्थियों के लिये सुलभ न होती। आपने यहाँ सचमुच भगवान् दीन-बन्धु का काम किया है। हमें पूरी आशा है कि इससे बिहारी का अध्ययन सुलभ हो जायगा, और भविष्य में प्रकाशित होने वाले भाष्योंके गुण-ग्राहकोंकी संख्या बढ़ जायगी। एवमस्तु।

बड़ी पियरी, काशी।
कृष्णाष्टमी, १९७८ } रामदास गौड़



शुद्धि-पत्र

दोहा-संख्या	अशुद्ध	शुद्ध	दोहा-संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१०	तुकुट	मुकुट	४०४	नख-रखा	नख-रेखा
४८	बचाय	नचाय		ससि	ससि
७२	तुख	मुख	४०८	हात	हांत
९६	नैग	नैन	४०८	नन	नैन
१०२	पुनो	पून्यो	४३७	धाइ	धाई
१०७	कलि तरुन	कलि-तरुन	४८३	गात	वात
११६	मे	से	५१४	लगत	जगत
१२०	यां	यो	५२३	जिहि	जिहिं
१२५	साम	स्याम	५२६	न	नै
१४२	रहट	रहँट	५२६	रहा	रही
१५९	मकै	सकै	५३०	ऐसोइ	ऐसांई
१६१	रहचटे	रहँचटे	५३८	यर	पर
१६२	त्थो	त्यों	५४४	मरि	मूरि
२०७	धाम	धाय	६०१	उच	उचै
२३३	वचन	वचत	६०३	रती	तीर
२३७	जम	जस	६१६	क	कै
२३३	उजरेहू	उजेरहू	६२०	केस	कस
२५१	भस्या	भख्यो	६२१	विलसिय	विलसियै
			६७३	चकभार	कचभार

नोट—दोहा नं० २६१ में 'अलंकार' भूल से छूट गया है पाठक निश्चय उक्त दोहे के अन्त में जोड़ लें।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

स्थायी ग्राहकों के लिये नियमः—

(१) प्रवेश-शुल्क आठ आना मात्र देना पड़ता है।

(२) स्थायी ग्राहकों को,इस कार्यालय के समस्त पूर्व प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों की एक २ प्रति पौने मूल्य में दी जायगी।

(३) किसी भी पुस्तक का लेना अथवा न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है, किन्तु वर्ष भर में ३) मूल्य की पुस्तकें अवश्य लेनी पड़ती हैं।

(४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसके मूल्यादि की सूचना भेजी जाती है और १५ दिवस पश्चात् उसकी वी. पी. भेजी जाती है। यदि किसी सज्जन को कोई पुस्तक न लेनी हो तो पत्र पाते ही सूचना देनी चाहिये। वी. पी. लौटाने से डाक-व्यय उन्हीं को देना पड़ेगा, अन्यथा उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी से पृथक् कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों के इच्छानुसार डाक-व्यय के बचाव के लिये३-४ पुस्तकें एक साथ भी भेजी जा सकती हैं।

(६) स्थायी ग्राहकों को अन्य पुस्तकों पर भी प्रायः एक आना रुपया कमीशन दिया जाता है और साहित्य-संसार में नवीन प्रकाशित पुस्तकों की सूचना भी समय २ पर दी जाती है।

(७) ग्राहकों को प्रत्येक पत्र में अपना ग्राहक-नम्बर, पता इत्यादि स्पष्ट लिखना चाहिये।

श्रीहरिः

बिहारी-बोधिनी

(मंगलाचरण)

दो०—मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परे स्याम हरित दुति होय ॥१॥

शब्दार्थ—भवबाधा = जन्म मरण का दुःख। जा तन की = जिसके शरीर की। झाँई = छाया। स्याम = श्री कृष्ण। हरितदुति = आनन्दित।

भावार्थ-वे ही राधा नागरी मेरे जन्म मरण के दुःखों को दूर करें, जिनके शरीर की छाया पड़ते ही श्री कृष्णजी भी (जो स्वयं आनन्द मूर्ति हैं) आनन्दित हो जाते हैं।

(विशेष)—इस दोहे में कवि श्री राधिका जी को कृष्ण से भी बढ़कर आनन्ददायिनी शक्ति मानकर निज दुःख हरण की प्रार्थना करता है।

अलङ्कार—काव्य लिंग। (काव्य लिंग जहँ युक्ति सों अर्थ समर्थन होय)

(सूचना)—हमारी सम्मति में 'हरितदुति' का अर्थ होना चाहिये "हरी गई है द्युति जिसकी"। इसी अर्थ से राधिका जी में 'भवबाधा' हरने की शक्ति का होना प्रतिपादित होकर 'काव्यलिंग' अलंकार सिद्ध हो सकता है।

दो०—सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल ॥२॥

शब्दार्थ—उर = हृदय। बानिक = रूप।

भावार्थ—सरल ही है। (यह बानिक वर्णन है)

अलंकार—स्वभावोक्ति। (जाको जैसो रूप गुण वरनत ताही साज)

दो०—मोहनि मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोय।
बसति सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिंबित जग होय ॥३॥

शब्दार्थ—जोय = देखो। अन्तर = भीतर।

भावार्थ—देखो! श्याम (कृष्ण जी) की मोहिनी मूर्ति की अत्यन्त अनोखी रीति है। सुन्दर चित्त के भीतर तो रहती है, परन्तु उसकी कान्ति को संसार भर देखता है।

अलंकार—तीसरी विभावना (प्रतिबन्धक के होत हू होय काज जेहि ठौर)

दो०—तजि तीरथ हरि-राधिका तन दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज केलि निकुञ्ज मग पग पग होत प्रयाग ॥४॥

शब्दार्थ—तजि = छोड़ कर। करि = करो। निकुञ्ज = कोई निश्चित कुञ्ज। प्रयाग = (प्र + याग=जहाँ बहुत से यज्ञ हुए हों) तीर्थराज प्रयाग, त्रिवेणी तीर्थ।

[वचन]—किसी प्रेमी भक्त का वचन किसी तीर्थाटनप्रिय व्यक्ति प्रति।

भावार्थ—तीर्थाटन को छोड़कर श्रीकृष्ण और राधिका की छटा पर प्रेम करो (प्रेमपूर्वक युगल मूर्ति की माधुरी को ध्यान में अवलोकन करो)। जिस छटा से ब्रजमण्डल की

केलि-निकुञ्जों के रास्तों की पग पग पृथ्वी प्रयाग के समान पुण्यदायिनी हो जाती है—अथवा त्रिवेणीवत् हो जाती है।

[विशेष]—श्री कृष्ण और राधिका जी के चरणों के प्रभाव से पृथ्वी का पवित्र होना असम्भव नहीं।

चरणों की नखप्रभा से सफेद, तलवों की आभा से लाल और कृष्ण के चरणों के पृष्ठ भाग से श्याम कांति की आभा पड़ने से गंगा, सरस्वती और यमुना (अर्थात् त्रिवेणी) का होना सम्भवित है। यथाः-तैरैं जहां ही जहां वह बाल तहां तहां ताल में होत त्रिवेणी (पद्माकर)

अलंकार—१ काव्यलिंग। २—उल्लास। ३-तद्गुण

दो०—सघन कुंज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर ॥५॥

शब्दार्थ—मन्द=धीरे धीरे बहने वाली। समीर=हवा।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—स्मरण (कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कछु सुधि आवै कछु खास)।

दो०—सखि सोहति गोपाल के उर गुंजन की माल।
बाहर लसति मनो पिये दावानल की ज्वाल ॥६॥

शब्दार्थ—गुंजा=घुंघुची। ज्वाल=लपट।

भावार्थ—हे सखी देखो, गोपाल के हृदय पर घुंघुचियों की माला ऐसी शोभा देती है, मानो कृष्ण ने जो दावानल पी लिया है उसी की ज्वाला बाहर दिखलाई पड़ रही है।

अलंकार—उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—जहां जहाँ ठाढो लख्यो स्याम सुभग-सिरमौर।
उनहूं बिन छिन गहि रहत दृगनि अजहुँ वह ठौर ॥७॥



शब्दार्थ—सुभग सिरमौर=भाग्यवानों में शिरोमणि (यहां पर रूपवानों में शिरोमणि)। छिन=थोड़ी देर के लिये। वह ठौर अजहुं द्दगनि गहि रहत=वह जगह अब भी आंखों को पकड़ लेती है अर्थात् आंखें वही टकटकी बांधकर देखती है।

भावार्थ—जहां जहां उस अत्यन्त सुन्दर श्याम (कृष्ण) को खड़े देखा है, वह स्थान अब भी, उनकी अनुपस्थिति में भी मेरे नेत्रों को पकड़ रखता है। अर्थात् मेरे नेत्र उस स्थान को टकटकी बांधकर बड़ीदेर तक देखा करते हैं।

अलंकार—विभावना। स्मरण।

दो०—चिरजीवो जोरी जुरै क्यौं न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर ॥८॥

शब्दार्थ—सनेह=प्रेम। गंभीर=गहरा। वृषभानुजा=वृषभानु की बेटी। हलधर के वीर=बलदेव के भाई। (दूसरा अर्थ) वृषभानुजा=वृषभ+अनुजा=बैल की बहिन, हलधर के वीर=बैल (हलधर) के भाई।

(विशेष)—श्लेष वक्रोक्ति अलंकार से इस दोहे में इसी दूसरे अर्थ के भान से ही अधिक मज़ा आता है। हास्य उद्देश्य से सखी का वचन सखी प्रति।

भावार्थ—यह जोड़ी दीर्घजीवी हो, इन दोनों (राधा और कृष्ण) में गहरा प्रेम क्यों न जुड़ै (अर्थात् जुड़ना ही चाहिये क्योंकि दोनों सम हैं)। दोनों में से कोई कम नहीं है, ये (राधा) वृषभानु की कन्या हैं और वे बलदेव के भाई हैं, अथवा व्यंग्य से ये बैल की बहिन और वे बैल के भाई।

अलंकार—श्लेषवक्रोक्ति। सम (बरणन जहां विशुद्ध मति यथायोग्य को संग)

शब्दार्थ—सुभग सिरमौर=भाग्यवानों में शिरोमणि (यहां पर रूपवानों में शिरोमणि)। छिन=थोड़ी देर के लिये। वह ठौर अजहुं द्दगनि गहि रहत=वह जगह अब भी आंखों को पकड़ लेती है अर्थात् आंखें वहीं टकटकी बांधकर देखती हैं।

भावार्थ—जहां जहां उस अत्यन्त सुन्दर श्याम (कृष्ण) को खड़े देखा है, वह स्थान अब भी, उनकी अनुपस्थिति में भी मेरे नेत्रों को पकड़ रखता है। अर्थात् मेरे नेत्र उस स्थान को टकटकी बांधकर बड़ीदेर तक देखा करते हैं।

अलंकार—विभावना। स्मरण।

दो०—चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर ॥८॥

शब्दार्थ—सनेह=प्रेम। गंभीर=गहरा। वृषभानुजा=वृषभानु की बेटी। हलधर के वीर=बलदेव के भाई। (दूसरा अर्थ) वृषभानुजा=वृषभ+अनुजा=बैल की बहिन, हलधर के वीर=बैल (हलधर) के भाई।

(विशेष)—श्लेष वक्रोक्ति अलंकार से इस दोहे मे इसी दूसरे अर्थ के भान से ही अधिक मज़ा आता है। हास्य उद्देश्य से सखी का वचन सखी प्रति।

भावार्थ—यह जोड़ी दीर्घजीवी हो, इन दोनों (राधा और कृष्ण) में गहरा प्रेम क्यों न जुड़ै (अर्थात् जुड़ना ही चाहिये क्योंकि दोनों सम हैं)। दोनों में से कोई कम नहीं है, ये (राधा) वृषभानु की कन्या हैं और वे बलदेव के भाई हैं, अथवा व्यंग्य से ये बैल की बहिन और वे बैल के भाई।

अलंकार—श्लेषवक्रोक्ति। सम (वरणत जहां विशुद्ध मति यथायोग्य को संग)

मुकुट की चन्द्रिकाओं से हुए नंदलाल यों ज़ेबा।
खिलाफे शिव लिये सौ चांद सर पर आपने गोया॥

६ दो०—नाचि अचानक ही उठे बिन पावस वन मोर।
जानति हों नन्दित करी यह दिसि नंदकिसोर॥११॥

शब्दार्थ—पावस=वर्षा। नन्दित करी=आनन्दित की।

(वचन)—सखी वचन विरहिनी नायिका प्रति-नायक आगमन सूचनार्थ।

भावार्थ—बिना वर्षा के ही वन में अचानक मोर नाचने लगे, इससे मैं अनुमान करती हूं कि इस दिशा को श्री कृष्ण ने आनन्दित किया है (इस स्थान पर आते ही हैं)

अलंकार—भ्रम (कृष्ण को देख कर मोरों को घन का भ्रम हुआ)। प्रमाणान्तर्गत अनुमान अलङ्कार (मोरों को नाचते देख कृष्ण के आगमन का अनुमान)।

दो०—प्रलय करन बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गर्व हरयो हरषि गिरिधर गिरिधर हाथ १२

शब्दार्थ—प्रलय करन=प्रलयकालवाले। जलधर=बादल। सुरपति=इन्द्र। गिरिधर=श्रीकृष्ण।

भावार्थ—जिस समय (व्रजको बहा देने के लिये) प्रलय-काल वाले बादल एकत्र होकर बरसने लगे, उस समय श्रीकृष्ण ने सहर्ष अपने हाथ पर पहाड़ को उठाकर इन्द्र का अहंकार दूर किया।

(विशेष)—श्रीकृष्णका वीरत्व वर्णन है। हर्ष संचारी है।

अलंकार—छेकानुप्रास, यमक।

दो०—डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कंप किसोरी दरस तें खरे लजाने लाल॥ १३॥

शब्दार्थ—डिगुलात=डगमगाता है। बेहाल=व्याकुल। किसोरी=श्री राधिकाजी। खरे=बहुत अधिक। लाल=श्री कृष्ण।

(बचन)—सखी का सखी प्रति।

भावार्थ—(हाथ पर गोवर्धन उठाये हुए श्री कृष्णजी के निकट राधिका जी आईं उस समय श्री कृष्ण जी को प्रेमाधिक्य से कंप हुआ, तब) हाथ के डिगते ही पहाड़ भी डगमगाने लगा, इसे लख सब ब्रजबासी व्याकुल हो उठे। किशोरी जी के दर्शन से यह कंप अनुभाव हुआ (ऐसा न हो लोग लख जायें) जानकर श्रीकृष्ण बहुत लज्जित हुए।

(विशेष)—कंप अनुभाव। व्रीड़ा संचारी। कृष्ण के लिये शृंगार रस। ब्रजबासियों के लिये भयानक रस।

अलंकार—हेतु (प्रथम)।

(कारण कारज संगही जहं बरनै इकठौर)।

दो०—लोपे कोपे इन्द्र लों रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल॥ १४॥

शब्दार्थ—लोपे=पूजा लोप किये जाने पर। कोपे=क्रुद्ध। रोपे प्रलय अकाल=बे वक्तही प्रलय करना चाहती है। गिरधारी=गोवर्द्धन पर्वत को उठाने वाले (वा) गिरिवत् कुच स्पर्श करने वाले।

(बचन)—विरहिनी नायिका की दूती का बचन नायक प्रति। विरह निवेदन। संघट्टन उद्देश्य।

भावार्थ—वह नायिका पूजा लुप्त हुए क्रुद्ध इन्द्र की तरह

समय से पहिले ही प्रलय करना चाहती है (रो रो कर अपने आंसुओं से संसार को डुबो देना चाहती है)। हे कृष्ण उस समय तुमने पहाड़ उठाकर सबकी अर्थात् गौओं गोपियों और गोपालों की रक्षा की थी (उसी प्रकार इस समय उसके गिरिवत् कुचों को स्पर्श कर सब की पुनः रक्षा कीजिये)

अलंकार—(पूर्वार्द्ध में) वृत्यानुप्रास, उपमा। (उत्तरार्द्ध में)-परिकरांकुर, वृत्यानुप्रास। पूर्ण दोहे में 'कारज मिस कारण कथन' से अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

(दूसरा अर्थ)—(तृणावर्त, केशी, अघ, बक इत्यादि की तो बात ही क्या) कुपित हुए इन्द्र तक का (जिसने अकाल ही प्रलय करना विचारा था) घमंड लोप कर दिया और गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर गौ, गोपी और गोपालादि सबकी रक्षा की।

(नोट) इस अर्थ से कृष्ण की दया और वीरता प्रगट होती है, परंतु हमें पहला अर्थ बहुत अधिक अच्छा जँचता है।

दो०—लाज गहो बेकाज कत घेरि रहे घर जाहिं।
गोरस चाहत फिरत हो गोरस चाहत नाहिं॥ १९॥

शब्दार्थ—घर जाहिं = घर छूट जायंगे (बदनाम होने से घर से निकाल दिये जायंगे) गोरस = (१) दही, मही इत्यादि (२) इन्द्रियों का मज़ा-आलिंगन, चुम्बन, संभोगादि।

(वचन) स्वयं दूतिका नायिका का वचन अनभिज्ञ नायक प्रति।

भावार्थ—कुछ तो शर्माओ, व्यर्थ यहां रास्ते में मुझे क्यों घेरे पड़े हो (अर्थात् मेरी अंगचेष्टाओं से तुम नहीं समझ



सकते कि मैं क्या चाहती हूं, व्यर्थ यहां रास्ते में रोके खड़े हो, घने जंगल में क्यों नहीं ले चलते) ऐसा करने से (रास्ते में यदि कोई देखलेगा तो) हमारे तुम्हारे घर छूट जायंगे । तुच्छ चीजें दही माठा तो मांगते हो, पर इन्द्रियों का रस नहीं चाहते ।

अलंकार--यमक और पर्यायोक्ति। (पर्यायोक्ति बखानिये कछु रचना सों बात) ।

अथवा-लज्जाकरो, व्यथ को घेर रहे हो, छोड़ो घर जायँ । तुम यथार्थ में इन्द्रियों का भोग चाहते हो गोरस नहीं चाहते ।

दो०--मकराकृति गोपाल के कुंडल सोहत कान ।
धस्यो समर हिय गढ़ मनो ड्योढी लसत निसान ॥१६॥

शब्दार्थ-मकराकृति=मछली के आकार वाले । धस्यो=पैठा है, भीतर गया है । समर=(स्मर) कामदेव । निसान=ध्वजा ।

भावार्थ--श्रीकृष्ण के कानों में मछली के आकार के कुण्डल शोभा देते हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेव श्रीकृष्ण के हृदयगढ़ में प्रवेश कर गया है और ये कुण्डल उसी की ध्वजाएँ हैं जो गढ़ के द्वार पर शोभा दे रही हैं ।

(विशेष)-जब कोई राजा किसी दूसरे राजा की भेंट के लिये उसके गढ़ में जाता है तब राजा तो भीतर चला जाता है, पर उसके माही-मरातिब (ध्वजादि राजचिन्ह) द्वारही पर रहते हैं ।

अलंकार--उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

दो०-गोधन तू हरष्यो हिये घरीक लेहि पुजाय ।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुन के पाय ॥१७॥

शब्दार्थ—गोधन = गोबर की बनी हुई गोवर्द्धन गिरि की प्रतिमा जिसे किसान लोग कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन

अपने द्वार पर बना कर पूजते हैं। घरीक=(घरी+एक घड़ी, (थोड़ी देर तक)। पुजाय लेहि=आदर करवा ले।

भावार्थ—हे गोर्वधनदेव (गोवर गणेशजी) तू हृदय में हर्पित होते हुए थोड़ी देर अपना आदर सत्कार कराले। पर जब थोड़ी देर बाद पशुगण तुझे पैरों से रौंदेंगे तब सच्ची कैफियत मालूम होगी।

(वचन)-किसी दुष्ट प्रकृति अधिकारी प्रति किसी सज्जन उपदेशक का वचन।

अलंकार—'अन्योक्ति'।

दो०—मिलि परछाहीं जोन्ह सों रहे दुहुनि के गात।
हरि राधा इक संग हीं चले गली में जात ॥ १८ ॥

शब्दार्थ-जोन्ह=(ज्योत्स्ना) चांदनी। गात=शरीर।

(वचन)-सखी का सखी प्रति (दम्पति प्रशंसा)।

भावार्थ—जब कृष्ण और राधिका एक साथ मिलकर गली में चले जा रहे थे तब (मैंने देखा कि) उन दोनों के शरीर चांदनी और छाया से मिल गये थे (अर्थात् पहचाने नहीं जा सकते थे। राधिका का शरीर चांदनी में मिल जाता था और कृष्ण उनकी छाया में लुप्त से थे)

(विशेष)--परकीया नायिका, संयोगस्रिंगार, नायक नायिका, अवलंबन, संका तथा अवहित्थ संचारीभाव, रति स्थाई भाव, अनुभावान्तर्गत ललित हाव-अत पूर्ण शृंगार।

अलंकार--मीलित। (दुइ चीजें इक रंग जहँ मिलें न भेद लखात।

दो०—गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रसरास।
लहाछेह अति गतिन की सबनि लखे सब पास ॥१९॥



शब्दार्थ—रमत=क्रीड़ा करते हैं । रसिक=रसिया (रसज्ञ) रसरास=रसमय रास में । रास=नृत्य । लहाछेह=एक प्रकार का नृत्य जिसमें बड़ी तेजी से चक्रवत घूमना पड़ता है ।

भावार्थ—शरद ऋतु की रात्रि में गोपियों के साथ रसमय नृत्य करते समय रसिया श्रीकृष्ण इस प्रकार क्रीड़ा करते हैं कि लहाछेह नामक नृत्य की अत्यन्त चंचल गतियों के कारण सब गोपियों ने कृष्ण को सब के निकट देखा ।

(विशेष)—दक्षिण नायक । आश्चर्य संचारी ।

अलंकार—तृतीय विशेष । (वस्तु एक जहँ युक्ति तें बहु थल बरनी जाय) ।

दो०—मोरचंद्रिका स्याम सिर चढ़ि कत करति गुमान ।
लखिबी पायन पै लुठत सुनियत राधा मान ॥२०॥

शब्दार्थ—गुमान = अहंकार. घमंड । लखिबी = देखेंगे । लुठत = लोटते हुए ।

भावार्थ—हे मोरचंद्रिका तू श्रीकृष्ण के सिर पर चढ़ कर क्यों घमंड करती है । बहुत शीघ्र ऐसा समय आवेगा कि हम तुझको पैरों पर लोटते हुए देखेंगे, क्योंकि सुनते हैं कि राधा ने मान किया है । (अर्थात् राधिका का मान मनाते समय श्रीकृष्ण जी उनके चरणों पर अपना मस्तक धरेंगे तब मुकुट की चंद्रिकायें राधिका जी के चरणों पर लोटेंगी) ।

अलंकार—अन्योक्ति, अन्योकति मिस और के कीजै पर उपदेश) ।

(नोट) देखो नोट दोहा नं० ६९३ ।

दो०—सोहत ओढ़ पीतपट स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमणि सैल पर आतप पर्‍यो प्रभात ॥२१॥

शब्दार्थ—तरनि=सूर्य। किसोरवय=किशोरावस्था। दौन= दोनों। वैससन्धि=लड़कपन और जवानी की सन्धि अर्थात् किशोरावस्था। संक्रौन=संक्रान्ति।

भावार्थ—नायिका तिथि है, किशोरावस्था (वैससन्धि) सूर्य है। संक्रान्ति और वैससन्धि दोनों बराबर दर्जे के पुण्यकाल हैं। यह दोनों किसी बड़े पुण्य से प्राप्त होती हैं।

वचन—नायक प्रति नायिका की दूती का वचन। नायिका की प्रशंसा करके नायक को मिलाने की चेष्टा करती है।

अलंकार—रूपक।

وہ مدتِ عہد بالغی خور وقت اقدس دونوں یکساں ہیں
یہہ سنکرانت اور تبدیلئی سن پائی نہ آساں ہیں

दो०—ललन अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति।
आज कालि मे देखियत उर उकसौंही भांति ॥२६॥

शब्दार्थ—सिहाति=ईर्षा करती है। उकसौंहा भांति= उभड़ने वाला।

भावार्थ—हे ललन (कृष्ण) उस नायिका की (राधिका की) अद्भुत लड़काई देख देख कर सदा निकट रहने वाली सखी ईर्षा करती है (कि ऐसी अवस्था और ऐसी शोभा मेरे तन में न हुई)। देखती हूं कि बस आज ही कल में (अतिशीघ्र) उसकी छाती पर कुछ उभार होने वाला है।

अलंकार—अनुमान (प्रमाणान्तर्गत)

لال کمیاب طفلی اوسکی دیکھ آلی سہاتی ہیں—
کہ گویا آجہی کلہہ میں اوکستی آتی چہاتی ہیں



दो०—भावक उभरौहौं भयो कछुक पर्‌यो भरु आय ।
सीप-हरा के मिस हियो निसदिन देखतजाय ॥२७॥

शब्दार्थ—भावक=एक भाव से, एक तरह से, कुछ थोड़ा थोड़ा। उभरौहौं=उभरने वाला। भरु=बोझ, भार। सीप-हरा=सीपजनित मोतियों का हार। हियो=वक्षस्थल। जाय=गुजरता है, व्यतीत होता है।

(वचन)—नायक प्रति दूती वचन। ज्ञातयौवना नायिका।

भावार्थ—हे कृष्ण ! उस (नायिका) के वक्षस्थल पर कुछ उभार होने वाला है और इसी कारण उसकी छाती पर कुछ बोझ सा आ पड़ा है। अतः, मोतियों के हार को देखने के बहाने से उसका रात दिन का समय छाती ही देखते बीतता है।

अलङ्कार—द्वितीय पर्यायोक्ति—(मिसकरि कारज साधिये जो हित चितहिं सोहात)

(युवावस्था वर्णन)

दो०—इक भीजे चहले परे बूडे बहेहजार ।
कितो न औगुन जग करत नै वै चढ़ती बार ॥२८॥

शब्दार्थ—चहले परे=दलदल में फँसे। नै=नदी। वै=(वय) उम्र।

भावार्थ—कोई भीग जाता है, कोई २ दलदल में फँस जाते है, कोई डूब जाता है और हजारों बह जाते हैं। चढ़ती हुई नदी और चढ़ती जवानी की उम्र संसार में कितना औगुन नहीं करती (अर्थात् बहुत अवगुण करती है)

शेर—कोई भीगे फँसे दलदल में भीगे और बहे सदहा।
बड़ा नुकसान करती है य चढ़ती उम्र औ नदिया॥

अलंकार—काकुवक्रोक्ति और दीपक—(वर्ण्य अवर्ण्यन को जहां एकै धर्म कहाय)

दो०—अपने तन के जानि कै जोबन नृपति प्रवीन।
स्तन मन नैन नितंब को बड़ो इजाफा कीन॥२९॥

शब्दार्थ—अपने तन के=अपने सहायक (अपने पक्ष के) जोबन=जवानी। प्रवीन=चतुर। स्तन=कुच। नितंब=चूतड़। इजाफा=तरक्की, बढ़ती। (जवानी में उक्त अंग स्वाभाविक रीति से बढ़ते ही हैं)

भावार्थ—सरल है।

(वचन)—दूती वचन नायक प्रति।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में रूपक। उत्तरार्द्ध में तुल्ययोगिता।

दो०-देह दुलहिया की बढ़ै ज्यौं ज्यौं जोबन जोति।
त्यौं त्यौं लखि सौतै सबै बदन मलिन दुति होति॥३०

शब्दार्थ—दुलहिया=नववधू। बदन=मुख।

भावार्थ-नववधू के शरीर में जैसे जैसे जवानी की छटा बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे उसकी सुछवि देख देख कर सौतों के मुख मलीन (प्रभाहीन) होते जाते हैं।

अलंकार—उल्लास-(औरहि के गुण दोष ते औरहि को गुण दोष)

दो०—नव नागरि तन मुलक लहि जोबन आमिल जोर।
घटि बढ़ि ते बढ़ि घटि रकम करी और की और॥३१॥

शब्दार्थ-नव नागरि=नवीन युवती। मुलक=देश। आमिल=शासक, हाकिम। जोर=जबरदस्त। रकम=जमा।

भावार्थ—ज़बरदस्त यौवन-शासकने नववधूका शरीर रूपी देश पाकर जमाबंदीकी रकमोंमें बहुत कुछ हेर फेर कर डाला अर्थात् छोटी रकमको बढ़ा दिया और बड़ी रक़मको घटा दिया (अर्थात् शरीरके अवयवोंमें अनेक परिवर्तन कर डाले)

अलंकार—रूपक (सम अभेद)।

दो०—लहलहाति तन तरुनई लचि लगि लौं लफि जाय।
लगै लांक लोयन भरी लोयन लेति लगाय ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ-लहलहाति=उमँड़ती है। तरुनई=तरुणाई, जवानी। लचि=लचक कर, नै कर। लगि=बांसकी हरी शाखा (लग्गी, कइन)। लगि लौं=बांसकी हरी शाखा की तरह। लफिजाय=झुक जाती है, दूनर हो जाती है। लांक=कमर। लोयनभर=लावण्यपूर्ण। लोयन=लोचन (आंख) लोयन लेति लगाय=आंखोंको अपनेमें लगा लेती है, आंखोंको अपनी ओर आकर्षित करती है।

भावार्थ—उस नायिकाके शरीरमें जवानी उमँड़ रही है। उसके भार से उसकी कमर झुक कर बांसकी हरी शाखाकी तरह दूनर हुई जाती है। वह कमर लावण्यसे परिपूर्ण जान पड़ती है और बरबस देखने वालोंकी आंखोंको अपनी ओर लगा लेती है।

(वचन)—दूतीका वचन नायक प्रति। नायिकाकी जवानी की प्रशंसा करके नायकको उससे मिलाना चाहती है।

अलंकार—वृत्यानुप्रास और उपमा।

(केश वर्णन)

दो०—सहज सचिक्कन स्यामरुचि सुचि सुगंध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—सहज सचिक्कन=बिना फुलेल लगायेही चिकने। स्यामरुचि=काले। सुकुमार=मुलायम। पथ अपथ=राह कुराह। बिथुरे=छूटे हुए, बिखरे हुए। सुथरे=

(विशेष)—नायक नायिकाके बालोंको याद करके कह रहा है। स्मृति संचारी भाव है।

भावार्थ—जो सहजही चिकने, काली चमक वाले, पवित्र सुगंधित और कोमल हैं। ऐसे सुन्दर बिखरे हुए बालोंको देख कर मेरा मन राह कुराह नहीं देखता (अर्थात् उन्हीं बालोंमें जाकर फँस जाता है)

अलंकार—पूर्वार्द्धमें वृत्यानुप्रास, उत्तरार्द्धमें छेकानुप्रास है पूर्णमें स्वभावोक्ति है।

दो०—वेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरो कौन विचार।
जिनहीं उरझ्यो मो हियो तिनहीं सुरझे बार ॥२४॥

शब्दार्थ—ब्यौरनि=बाल सुलझानेका ढंग। ब्यौरो=मर्म, भेद।

(विशेष)—नायकने नाइनका रूप धर कर छलसे नायिकाके बाल सँवारे हैं। कर स्पर्शसे नायिकाको रोमांच हुआ है। (तब वह स्वगत कहती है)। नायिका परकीया है।

भावार्थ—वैसे ही तो इस नाइनके हाथ हैं (जैसे नायक के हैं) और बाल सुलझानेका ढंग भी वही है (जैसा नायकका है) हे मन तू बिचार तो कर कि यह क्या भेद है (यह कौनसी नाइन है) मुझे तो जान पड़ता है किजिन सेमेरा हृदय उलझा हुआ है (अर्थात् प्रेम है) उन्होंने मेरे बाल सुलझाये हैं।

अलंकार—प्रमाणान्तरगत अनुमान।

दो०—कच समेटि कर, भुज उलटि, खए सीस पट डारि।
काको मन बाँधै न यह जूरो बाँध निहारि ॥२४॥

शब्दार्थ — कच = बाल । खप=भुजमूल, पखौरा ।

भावार्थ—बालोंको हाथोंसे समेटकर, भुजाओंको पीछेकी ओरको मोड़ कर और सीस परके कपड़ेको पखौरों पर डाल कर यह जूड़ा बाँधने वाली (अपनी स्वाभाविक छबिसे) किसका मन नही बाँध लेती ? (सबका मन अपने वशमें कर लेती है) ।

(विशेष)—किसी स्त्रीको उपर्युक्त प्रकारसे जूड़ा बाँधते देख कोई रसिक स्वागत कहता है ।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति और स्वभावोक्ति ।

दो०—छुटे छुटावैं जगत तें सटकारे सुकुमार ।
मन बांधत बेनी बँधे नील छबीले बार ॥२६॥

शब्दार्थ—सटकारे = लंबे । सुकुमार = मोलायम । नील= काले और चमकदार । छबीले=(छबि + ईला) सुन्दर ।

(विशेष)—नायक नायिकाके सुन्दर बालोंका स्मरणकर रहा है । स्मृति संचारी भाव है ।

भावार्थ—वे लंबे और मोलायम बाल जिस समय छूटे हुए रहते हैं उस समय देखने वालोंको संसारसे छोड़ा देते हैं । (उन्हें देख कर सांसारिक काम काजमें मन नहीं लगता) और जब वे काले चमकीले और सुन्दर बाल वेणी रूपमें बँधे रहते हैं तब मन हीको बांध लेते हैं (अर्थात् प्रत्येक दशामें मनोहर हैं)

अलंकार—दूसरी व्याजस्तुति-(बालोंकी प्रशंसासे नायिकाकी रूप सम्पत्तिकी अत्यन्त प्रशंसा होती है)—यथा:—
(कीन्हें पर अस्तुति जहाँ पर अस्तुति दरसाय) (स्नानान्तर मुखपर छुई हुई लटका वर्णन)

दो०—कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगो इतो उदोत ।
बंक बिकारी देत ज्यौं दाम रुपैया होत ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—कुटिल = टेढ़ी । अलक = लट । उदोत = सौन्दर्य । बंक=टेढ़ी । विकारी = टेढ़ी लंबी पाईजो रुपया लिखनेमें अंक के नीचे खींची जाती है जैसे ( )) । दाम=दमड़ी ।

भावार्थ—स्नान करनेके अनन्तर (नायिकाके) मुख पर टेढ़ी लट छूट पड़नेसे मुखका सौन्दर्य (वा प्रकाश) इतना बढ़ गया जैसे टेढ़ी विकारी लगा देने से दमड़ी सूचक अंकका मान रुपया सूचक हो जाता है ।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा ।

(वेणी वर्णन)

दो०—ताहि देखि मन तीरथनि विकटनि जाय बलाय ।
जा मृगनैनी के सदा वेनी परसत पाय ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—विकटनि=कठिन (व्याकरणानुसार 'विकट' यहां पर 'तीरथनि' का विशेषण है । इसका बहुवचन रूप न होना चाहिये था) । वेनी = (१) चोटी, (२) त्रिवेणी, । परसत = स्पर्श करती है ।

भावार्थ—जिस मृगनैनीके पैरों को सदा वेणी स्पर्श किया करती है (जिसकी चोटी पैर तक लंबी है) उसे देख कर, हे मन ! विकट तीर्थोंका अटन करने मेरी बलाय जाय ।

अलंकार—१ काव्यलिंग (तीर्थाटन न करने की बातका युक्ति से समर्थन है ।

२—श्लेष-'वेणी' शब्दमें ।

३—व्याजस्तुति (द्वितीय)-वेणीकी प्रशंसासे नायिकाकी

अत्यंत प्रशंसा सूचित होती है।

(टीका वर्णन)

दो०—नीको लसत ललाट पर टीको जटित जराय।
छबिहिं बढ़ावत रवि मनो ससि मंडल में आय॥ ३९॥

शब्दार्थ—टीको = भाल पर पहननेका आभूषण विशेष। जटित जराय=रत्न जटित।

भावार्थ—रत्नजटित टीका भाल पर ऐसी अच्छी शोभा देता है मानो सूर्य शशिमंडलमें आकर उसकी छवि बढ़ा रहा हो।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

(बिंदी वर्णन)

दो०—सबै सोहाये ई लगैं बसत सोहाये ठाम।
गोरे मुख बेंदी लसै अरुन पीत सित स्याम॥ ४०॥

शब्दार्थ—ठाम = ठौर, स्थान। अरुन=सुर्ख। सित=सफेद।

भावार्थ—अच्छे स्थानमें रहनेसे सभी वस्तु अच्छीही जान पड़ती है। गोरे मुख पर लगानेसे लाल, पीली, सफेद और श्याम सभी रंगकी बिंदी अच्छी ही लगती है।

[विशेष]—अरुन से रोरी की बिंदी, पीतसे केसरकी. सितसे चंदनकी, श्यामसे कस्तूरीकी समझना चाहिये।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास—

दो०—कहत सबै बेंदी दिये आंक दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये अगनित बढ़त उदोत॥४१॥

शब्दार्थ—लिलार = ललाट। उदोत = प्रकाश, छवि। बेंदी= विन्दी, (सिफर, शून्य)।

भावार्थ—सब लोग कहते हैं कि अंक पर बिंदी लगानेसे अंकका मूल्य दस गुना बढ़ जाता है, परंतु नायिकाके ललाट पर बिंदी लगानेसे तो अगणित गुना प्रकाशवा सौन्दर्य बढ़ जाता है।

अलंकार—व्यतिरेक।

दो०—भाल लाल बेंदी दिये छुटे बार छवि देत।
गह्यौ राहु अति आह करि मनु ससि सूर समेत ॥४२॥

शब्दार्थ—अति आह करि=बड़ा भारी साहस करके। सूर= सूर्य। सूर समेत=सूर्यकी सहायतासे।

(विशेष)—यहां 'राहु' कर्मकारकमें है और 'ससि सूर समेत' कर्ता कारकमें है। यदि ऐसा न मानेंगे तो 'छबिदेत' शब्द निरर्थक हो जायेंगे, क्योंकि जब राहु चन्द्रमा और सूर्य को ग्रसता है तब उनकी छवि मंद पड़ जाती है।

भावार्थ—नायिकाने भाल परजो लाल बिंदी लगाई है (रोरीकी) वह सिरके बाल छुटे हुए होने परभी शोभा देती है और ऐसा जान पड़ता है मानो चंद्रमा और सूर्यने मिलकर और बड़ा साहस करके राहुको पकड़ा है (जिससे राहुका शरीर शिथिल हो कर छिन्न भिन्न हो गया है)।

अलंकार—उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—पायेल पाय लगी रहै लगे अमोलक लाल।
भोंडर हू की भासि है बेंदी भामिनि भाल ॥४३॥

शब्दार्थ—पायल = पायजेब। अमोलक = बहुमूल्य। लाल= माणिक। भोंडर =अबरख। भासि है=शोभा देगी।

भावार्थ—पायजेब अमूल्य माणिक जटित होने परभी पैरों हीमें पड़ी रहती है, परंतु बिंदुली चाहे अबरखही की क्यों न हो पर वह सुन्दर स्त्रियोंके भाल पर, शोभित होती है। (अर्थात् नीच व्यक्ति बहुत बना ठना होने परभी नीचेही दर्जेमें रहता है, और कुलीन वा गुणवान व्यक्ति साधारण होने परभी उच्च पदवी पाता है)।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसान्तर्गत अन्योक्ति।

दो०—भाल लाल बेंदी ललन आषत रहे बिराजि।
इंदुकला कुज में बसी मनो राहु भय भाजि॥ ४४॥

शब्दार्थ—आषत = (अक्षत) चावल। कुज=मंगल।

भावार्थ—हे ललन! नायिकाके भाल पर रोचनाकी लाल बिन्दी परजो चावल लगे हुए हैं वे ऐसे बिराज रहे हैं, मानो राहुके डरसे चन्द्रमाकी कलाएं भाग कर मंगलमें बसी हैं।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—मिलि चंदन-बेंदी रही गोरे मुख न लखाय।
ज्यों ज्यों मद-लाली चढ़ै त्यों त्यों उघरति जाय॥४५॥

शब्दार्थ—मदलाली=शराबके नशेकी लाली। उघरति जाय= प्रगट होती जाती है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—उन्मीलित (जहँ मीलितमें हेतु लहि कछुक भेद बिलगाइ)।

दो०—तिय मुख लखि हीरा जरी बेंदी बढ़ै बिनोद।
सुत सनेह मानो लियो बिधु पूरण बुध गोद॥४६॥

शब्दार्थ—बिनोद=आनन्द। बिधुपूरण=पूर्ण चंद्र।

भावार्थ—हे तिय तेरे मुख पर हीरा जटित बेंदी देख कर मेरा आनन्द बढ़ता है, ऐसा जान पड़ता है मानो पुत्र स्नेह वश पूर्ण चन्द्रने अपने पुत्र बुध को गोदमें लिया है।

(बचन) नायक बचन परकीया नायिका प्रति।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

(विशेष) यद्यपि बुद्धका रंग 'हरा' माना जाता है तो भी हीराकी उपमाके कारण, तथा गौर वर्ण चंद्रमाका पुत्र होनेके कारण बिहारीने सफेद ही माना। अथवा ज्योतिषमें यह बात भी लिखी है कि बुद्ध जिस ग्रहके साथ होता है वैसाही रूप स्वभाव और गुण ग्रहण करता है। यहां चंद्रमाकी गोदमें होनेसे सफेद माननेमें कोई बाधा नहीं आती। केशवने भी बुलाकके मोतीके लिये लिखा है—"मानो गोद चंद हीकी खेलै सुत चंद को"।

(भौंह वर्णन)

दो०—गढ़ रचना बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान।
आघु बँकाई ही बढै तरुनि तुरंगम तान ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—गढ़ रचना=किलेकी बनावट (किला वा व्यूह सदा टेढ़े बनते हैं) आघु=(सं० आर्घ) मूल्य, आदर। बँकाई= टेढ़ापन। तुरंगम=घोड़ा।

भावार्थ—गढ़रचना, बरुणी (पलक), लट, चितवन, भौंह, कमान, तरुणी (स्त्री), घोड़ा, और तानका मूल्य (आदर) टेढ़ाईसे ही बढ़ता है।

[बचन]—सखीको शिक्षा नायिका प्रति कि जरा बाँकपन से रहा करो निपट सीधी सादी नहीं।



अलंकार—दीपक ।

दो०—नासा मोरि बचाय दृग करी कका की सौंह ।
काँटे सी कसकति हिये वहै कटीली भौंह ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—मोरि = सिकोड़ कर । सौंह = शपथ । कसकति = सालती है, गड़ती है, पीड़ा देती है । कटीली = काट करनेवाली ।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति । नायिका परकीया ।

भावार्थ—नाक सिकोड़, आंखें मटका और भौंहे टेढ़ी करके जिस समय उसने (नायिका ने) चाचाकी शपथ की थी, (उस समयकी वह कटीली भौंहोंकी बांकी अदा) अब भी मेरे हृदयमें कांटेकी तरह गड़ती है ।

अलंकार—पूर्णोपमा ।

दो०—खौंरि पनच भृकुटी धनुष बधिक समर तजि कानि ।
हनत तरुन मृगतिलक सर सुरकि भाल भरि तानि ॥४९॥

शब्दार्थ—खौंरि = ललाटपर का बेड़ा टीका । पनच = कमान-की डोरी, प्रत्यंचा । कानि = मर्यादा । तिलक = ललाट पर का खड़ा टीका । सुरकि = तिलकका वह भाग जो नाकपर लगा होता है । भाल = तीरकी गांसी । भरि तानि = खूब खींच कर ।

भावार्थ—भृकुटी रूपी धनुषपर खौरकी प्रत्यंचा चढ़ा कर सुरक रूपी गांसी वाले तिलक रूपी बाणको संधान कर और खूब खींच कर मर्यादा छोड़ कर काम रूपी व्याधा युवक रूपी हिरनोंका शिकार करता है ।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति । नायिका परकीया-('तजिकानि' इसीसे कहा गया है)

अलंकार—सांग सम अभेद रूपक ।

(नयन वर्णन)

दो०—रस सिंगार मंजन किये कंजन भंजन दैन ।
अंजन रंजन हू बिना खंजन गंजन नैन ॥५०॥

शब्दार्थ—रस सिंगार मंजन किये = शृंगार रससे नहलाये हुए। कंजन भंजन दैन=कमलोंका मान भंग करने वाले। अंजन रंजन हू बिना=बिना अंजन लगाये हुए।

भावार्थ—उसके नेत्र शृंगार रससे नहलाये हुए हैं अतः कमलोंका मान मर्दन करते हैं। बिना अंजन लगाये हुए सहज ही कजरारे हैं और चंचलतामें खंजनका भी मान गंजन करते हैं।

अलंकार—वृत्यानुप्रास (उपनागरिका वृत्ति) और चतुर्थ प्रतीप।

दो०—खेलन सिखये अलि भले चतुर अहेरी मार ।
काननचारी नैन मृग नागर नरनि सिकार ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—अहेरी=शिकारी। मार=कामदेव। काननचारी=(१) कानों तक फैले हुए अर्थात् अति दीर्घ। (२) जंगली। नागरनरनि = शहराती चतुर पुरुषोंको।

भावार्थ—हे अलि! चतुर शिकारी कामदेवने, तेरे अति दीर्घ नैन रूपी मृगोंको चतुर पुरुषोंका शिकार करना भली भांति सिखलाया है।

(विशेष)—सखी वचन नायिका प्रति। नायिका कुलटा वा गणिका (क्योंकि नागर नरनि बहुवचन है)। यहां शृङ्गार रस में अद्भुत रसका पुट है (क्योंकि साधारणतः नर लोग मृगों-का शिकार करते हैं, पर यहां नैन मृगोंने नरोंका शिकार करना सीखा है।)



अलंकार—रूपक। 'काननचारी' में श्लेष।

दो०—अर तें टरत न वर परे दई मरुक मनु मैन।
होड़ा होड़ी वढ़ि चले चित चतुराई नैन ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—अर=(अड़) हठ। वर परे=बलवान पड़गये हैं। मरुक=वढ़ावा, होड़ा होड़ी=शर्त लगा कर।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—उसके (नायिकाके) चित्तकी चतुराईने और उसके नेत्रोंने परस्पर एक दूसरेसे बढ़ जानेकी शर्त लगाई है, और कामने मानो वढ़ावा दे दिया है अतः उसका वढ़ावा पाकर दोनों अति बलवान पड़ गये है और अपनी अपनी हठ नहीं छोड़ते।

(विशेष)—जवानीमें नेत्रोंका और चातुर्यका बढ़ना कवि लोग मानते हैं। इस दोहामें वही वर्णन है।

अलंकार—असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा (कामके वढ़ावा देने को कविने नेत्रों और चातुर्यके बढ़नेका हेतु माना है। यह अहेतुको हेतु कल्पित किया है)।

दो०—सायक सम मायक नयन रंगे त्रिविधि * रंग गात।
झखौ विलखि दुरि जात जल लखि जलजात लजात॥

शब्दार्थ—सायक=बाण। मायक=माया करने वाले। झख=मछली। विलखि=व्याकुल होकर, डर कर। जलजात=कमल।

भावार्थ—उस नायिकाके नेत्र बाण समान तीक्ष्ण तो हैं ही, तिसपर कुछ माया (जादू) करना भी जानते हैं, और अपने गातको तीनरंगोंसे रंगे हुए हैं। इसी कारण उनको देख कर डरकर मछली तो पानीमें छिप जाती हैं और कमल लज्जित

* अमी हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार।



हो जाता है (मछली डरती है कि मुझे छेद न डाले और कमल लजाता है कि मुझमें एक ही रंग है)

अलंकार—व्यतिरेक—(मछलीमें मायिकता नहीं, नेत्रोंमें मायिकता है। कमलमें एकरंग नेत्रोंमें तीन रंग है। यह अधिकता है)।

यथाः—उपमा ते उपमेयमें अधिक कछू गुण होय।
व्यतिरेकालंकार तेहि कहैं सयाने लोय ॥
'जलजात और लजात' में यमक

दो०—जोग जुगुति सिखये सबै मनो महामुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता कानन सेवत नैन ॥५४॥

शब्दार्थ—जोग = (१) योग (२) संयोग। अद्वैतता = (१) एकता (ईश्वरमें मिलजाना) (२) सर्वकालीन संयोग। कानन सेवत = कानों तक बढ़े हैं।

भावार्थ—मानो काम महामुनिने योग की सब युक्ति सिखा दी है। इसीसे निज प्रियतमसे सदा मिले रहनेकी इच्छासे (उस नायिकाके) नेत्र-कानन-सेवन करते हैं (कानों तक लंबायमान हैं)

अलंकार—जोग अद्वैतता और काननमें श्लेष। 'महामुनि मैन' में रूपक और पूर्ण दोहामें सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है।

(विशेष)—जैसे कालिदासने वेदान्तिक सिद्धान्त "अणोरणीयान्महतो महीयान्" की पूर्ति शृंगार रसमेंकी थी, उसी प्रकार बिहारीने भी इस दोहेमें योग संबंधी सिद्धान्तकी पूर्ति शृंगारमें की है। इस से कवि की प्रतिभाकी विलक्षणता प्रगट होती है।

दो०—वर जीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान ते हरि नीके ये नैन ॥५५॥

शब्दार्थ—वर = बलपूर्वक, बलात्, जबरदस्ती।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे हरि, ये नैन (इस नायिकाके नेत्र) हरिनीके नेत्रोंसे भी बढ़कर हैं। मैंने तो ऐसे नेत्र कभी नहीं देखे। इन्होंने बलात् कामके बाणोंको जीत लिया है।

अलंकार—यमक और काव्य लिंग।

दो०—संगति दोष लगै सबै कहे जु साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रू संग ते भये कुटिल गति नैन ॥५६॥

शब्दार्थ—कुटिल = कपटी, छली। वंक = टेढ़ी। भ्रू = भौंह। नैन = (१) नेत्र। (२) जिसमें नीतिका आचरण न हो (नय + न) कुटिलगति = (१) कपटकी चाल चलने वाले (२) तिरछे कटाक्ष करने वाले।

भावार्थ—लोगोंने जो ये वचन कहे हैं कि "संगतिका दोष सब को लगता है" सो सत्य है। देखो छली और टेढ़ी भौंहोंके संगसे नेत्र भी कुटिल गति वाले (अर्थात् तिरछे कटाक्ष करने वाले) हो गये हैं।

अलंकार—उल्लाससे परिपुष्ट किया गया अर्थान्तर न्यास।

दूसरा अर्थ—(खंडिता नायिकाका वचन सखी प्रति) हे सवय (सखी) तूने जो कहा था कि संगतिका दोष अवश्य लगता है सो सत्य ही हुआ, देखो किसी कुटिल और टेढ़ी भौंह वाली स्त्रीकी संगतिसे ये मेरे स्वामी भी (नायक) कुटिल गति वाले हो गये हैं और इनमें अब नीतिके आचरण नहीं रहे।

दो०—दृगन लगत बेधत हियो विकल करत अंग आन।
ये तेरे सब तें विषम ईछन तीछन बान ॥५७॥

शब्दार्थ—विषम = अद्भुत। ईछन = (ईक्षण) नेत्र। तीछन = पैनी नोकके।

(वचन)—नायक वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे प्यारी ये, तेरे पैने नयनबाण सबसे (बरछी तरवार कटारी, इत्यादि) अधिक अद्भुत हैं, क्योंकि ये लगते तो नेत्रोंमें हैं, बेधते हैं हृदयको और व्याकुल करते हैं अन्य सब अंगोंको।

अलंकार—असंगति द्वारा पुष्ट किया हुआ काव्यलिंग अलंकार।

(काव्यलिंग जहँ युक्ति तें अर्थ समर्थन होय) नयन बाण की विषमता असंगति द्वारा पुष्ट की गई है।

असंगति—कारण कहुं कारज कहूं देश कालको बीच। लगते हैं नेत्रोंमें, बेधते हैं हृदय और व्याकुल करते है अन्य अंगों को।

(नैन सैन वर्णन)

दो०—झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह निकसे बैन।
याही ते मानो किये बातन को विधि नैन।५८॥

शब्दार्थ—संग्रहे = ग्रहण किये, प्रमाण माने।

भावार्थ—मुंहसे निकले हुए वचन कभी कभी झूठे भी हो जाते हैं। ऐसा जान कर ही उन्हें मनसे संग्रह करने योग्य नहीं माना (प्रामाणिक न मानकर) मानो इसी हेतु विधिने बातें करनेके लिये नेत्र बनाये हैं। अर्थात् नेत्रोंके इशारे से निकला हुआ भाव हार्दिक और अत्यन्त सत्य होता है।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—फिरि फिरि दौरत देखिअत निचले नेकु रहैं न।
ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन ॥५९॥

शब्दार्थ—निचले=स्थिर। नेकु=तनक, थोड़ी देर,। कजरारे=अंजनयुक्त। कजाकी=लूटमार, हत्यारापन।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति परिहास।

भावार्थ—ये तेरे नेत्र स्थिर नहीं रहते, देखती हूं कि बार २ इधर उधर दौड़ते हैं। आज तूने अंजन लगाया है सो ये कजरारे नेत्र किस पर लूटमार करने वाले हैं।

अलंकार—छेकानुप्रास। 'नेत्र कज्जाकसे दौरत' मान कर वाचकोपमान लुप्ता भी कह सकते हैं।

(विशेष)—कोई कोई इसमें कुलटा नायिका मानते हैं।

दो०—खरी भीरहू भेदिकै कितहू ह्वै उत जाय।
फिरै डीठि जुरि डीठि सों सबकी डीठि बचाय॥

शब्दार्थ—खरी=भारी। उत जाय=नायक के पास जाकर।

वचन—सखिका वचन सखी प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ—भारी भीड़को चीरकर कहीं होकर उस नायक तक पहुंचकर और सब (भीड़के लोगोंकी) दृष्टि बचाकर नायककी दृष्टिसे मिलकर तब इसकी दृष्टि लौटती है।

अलंकार—तीसरी विभावना (प्रतिबंधकके होत हू, होय काज जेहि ठौर) और प्रतिबंधकके होते भी दृष्टि मिलौना हो रहा है।

दो०—सब ही तन समुहाति छिन चलति सबनि दै पीठि।
वाही तन ठहराति यह किबलनुमा लौं डीठि ॥६१॥



शब्दार्थ— तन = तरफ। समुहाति = सामना करती है। किबलनुमा = मुसल्मानी समयका वह यंत्र जिसकी सुई सदैव मक्केकी ओर रहती थी। (यहां पर उसकी सुईसे ही तात्पर्य्य है)।

(विशेष)—'क़िब्लानुमा' वास्तवमें वह यंत्र था जिसकी सुई सदैव 'मक्के' की ओर रहती थी। मुसल्मान लोग इस यंत्रको अपने पास इसलिये रखते थे जिससे उन्हें नमाज़ पढ़ते समय मक्केकी दिशाका ठीक ज्ञानहो जाय, क्योंकि मुसल्मान लोग मक्केकी ओर मुंह करके ही नमाज़ पढ़ते है।

(वचन) सखी प्रति सखीका वचन।

भावार्थ —इस नायिकाकी दृष्टि सबकी ओर एक क्षण मात्र के लिये जाती तो है, पर तुरन्त ही उनकी ओरसे पलट पड़ती है, केवल उसीकी ओर (नायककी ओर) इसकी दृष्टि किब्लानुमाकी भांति स्थिर होती है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात ॥६२॥

शब्दार्थ-नटत = नाहीं करते हैं। खिलत=प्रफुलित होते हैं। लजियात=(पूर्वी बोली) लज्जित होते हैं।

[वचन]-सखीप्रति सखी वचन। नायक नायिकाकी दशाका वर्णन। नायिका परकीया।

भावार्थ-नायक कुछ कहता है। नायिका नाहीं करती है। इस बनावटी नाहीं पर नायक रीझता है, तब नायिका खीझती है। पुनः मिलकर दोनों प्रसन्न हो जाते हैं और कोई लखनले




इस बिचारसे लज्जित हो जाते हैं। इस प्रकार भरे भवनमें ही नेत्रों द्वारा ये सब बातें कर लेते हैं।

अलकार—पूर्वाद्धमें कारक दीपक—यथाः—क्रमतें क्रिया अनेकको कर्ता एकै होय। उत्तरार्द्ध में तीसरी बिभावना।

दोहा—सब अँग करि राखी सुघर नायक नेह सिखाय।
रसयुत लेति अनन्त गति पुतरी पातुर राय ॥६३॥

शब्दार्थ—सुघर = चतुर। नायक = नाच सिखाने वाला उस्ताद। पातुर राय=पतुरियों की सरदार।

(बचन)—सखी बचन सखी प्रति। नायिका वासकसज्जा है

विशेष—मिलनकी सब तैयारी लगाकर नायकका रास्ता देख रही है। बार बार रास्तादेखने में पुतली चंचल हो रही है। उसी चञ्चलताका वर्णन-इस दोहेमें है।

भावार्थ—प्रेम रूपी नायकने (उस्ताद) शिक्षा देकर इसको (आंखकी पुतलीको) नृत्यके सब अङ्गोमें (नृत्य, गान, वाद्य, और भाव प्रदर्शन) चतुर कर रक्खा है, अतः उसकी (नायिकाकी) पातुर शिरोमणि पुतली असंख्य रसीली गतियां ले रही है (अर्थात् नायकका आगमन बार बार देखती है)।

अलकार—रूपक।

दो०—कंज नयनि मंजन किये बैठी ब्यौरति बार।
कच अँगुरिन बिच डीठि दै निरखति नंदकुमार ॥६४॥

शब्दार्थ—ब्यौरति=सुलझाती है। कच = बाल।

भावार्थ—सरल है

अलंकार—दूसरी पर्यायोक्ति।

दो०—डीठि बरत बाँधी अटनि चढ़ि धावत न डरात।
इत उत ते चित दुहुनि के नट लौं आवत जात ॥६५॥

शब्दार्थ—बरत = रस्सी। अटनि = अटारियों पर।

भावार्थ—दृष्टि रूपी रस्सी अटारियों पर बांधी है (नायक और नायिका अपनी अपनी अटारियों पर खड़े परस्पर देख रहे हैं) और उसी पर चढ़ कर दोनोंके मन नटकी तरह दौड़ते हैं। गिरने से नहीं डरते (लोकदृष्टि से नही डरते)।

(वचन)—सखीका सखी प्रति। परकीया।

अलकार—पूर्णोपमा।

दो०—जुरे दुहुनि के दृग झमकि रुके न झीने चीर।
हलकी फौज हरौल ज्यौं परत गोल पर भीर ॥६६॥

शब्दार्थ—झमकि=शीघ्रता से। झीने = बारीक, महीन। हलकी फौज=थोड़ी सेना। हरौल=(तुर्की शब्द हरावल) सेनाका अगला भाग। गोल=(तुर्की शब्द) सेनाका मध्य भाग जिसमें सेनाका मुख्य नायक रहता है।

भावार्थ—दोनों अर्थात् नायक और नायिकाके दृग शीघ्रतासे मिल गये, घूंघटके महीन कपड़ेसे रुक नहीं सके, जैसे हरावली सेना थोड़ी होनेसे शत्रुकी सेना नहीं रुकती और सेना के मुख्य भाग पर भीर आपड़ती है।

अलकार—उदाहरण (देखो अलंकार मंजूषा पृष्ठ १०७, सूचना)

दो०—लीने हू साहस सहस कीने जतन हजार।
लोयन लोयन सिंधु तन पैरि न पावत पार ॥६७॥

शब्दार्थ—लोयन=लोचन। लोयनसिंधु=(लावण्य सिंधु) सुन्दरता का समुद्र।

(विशेष)—नायक वा नायिका का वचन सखी प्रति। पूर्वानुराग की दशा का वर्णन। उत्सुकता संचारी भाव।

भावार्थ—सरल है।



अलंकार—यमक और रूपक तथा विशेषोक्ति।

दो०—पहुँचत डटि-रन सुभट लौं रोकि सकैं सब नाहिं ।
लाखन हू की भीर में आंखि उतै चलि जाहिं ॥६८॥

शब्दार्थ—डटि = वीरता युक्त, साहस सहित। उतै=वहीं (नायक वा नायिका के पास)।

भावार्थ—सरल है।

(विशेष)--शृङ्गार में वीर रस का पुट। परकीया नायिका।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में पूर्णोपमा, उत्तरार्द्ध में तृतीय विभावना

दो०—गड़ी कुटुँब की भीर में रही बैठि दै पीठि।
तऊ पलक परिजात उत सलज हँसौंहीं डीठि ॥६९॥

शब्दार्थ—गड़ी = छिपी हुई। पलक = एक पल मात्र के लिये सलज=लज्जा सहित। हँसोहीं=हँसती सी। रही बैठि दै पीठि=नायक की ओर पीठ किये बैठी है।

(विशेष)--नायिका स्वकीया। सखी वचन सखी प्रति।

भावार्थ--सरल है।

अलंकार—तीसरी विभावना।

दो०—भौंह उचै आंचरु उलटि मौर मोरि मुंह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई डीठि डीठि सों जोरि॥

शब्दार्थ—उचै=उठाकर। आँचरु=अंचल। मौरि=(मौलि) सिर। नीठि नीठि=किसी प्रकार, मुशकिल से।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ—भौंहे उठा (अर्थात् भौंहों से कुछ इशारा करके) अंचल उलट, सिर निहुरा, मुँह मोड़, और दृष्टि से दृष्टि मिलाकर मुशकिल से किसी प्रकार (अर्थात् अपनी इच्छा के विरुद्ध) भीतर गई।



(विशेष)-इस दोहा में चिंता और चपलता संचारी हैं अनुभावान्तर्गत बिलास हाव है, नायक नायिका आलंबन, रतिस्थायी स्पष्ट हैं।

अलंकार-स्वभावोक्ति।

दो०-ऐंचत सी चितवनि चितै भई ओट अलसाय।
फिरि उझकनि को मृगनयनि दृगनि लगनिया लाय॥७१॥

शब्दार्थ-ऐंचत सी=मेरे मनको खींचती हुई सी। फिरि उझकनि को=फिर फिर उठकर देखने के लिये। लगनिया लाय=लगन लगा कर।

(वचन) नायक वचन सखी प्रति। नायिका परकीया।

भावार्थ-चित्त को खींचती सी चितवन से देखकर और अलसाकर वह मृगनयनी नायिका आंखों से ओट हो गई और मेरे नेत्रों को बार बार उझक उझक कर देखने की लगन लगा गई।

(विशेष)-इस दोहा में अभिलाष संचारी, आलस्य अनुभाव, नायक नायिका आलंबन, रतिस्थायी स्पष्ट हैं।

अलंकार-'ऐंचति सी' में उत्प्रेक्षा। जहां क्रिया वा क्रियार्थ द्योतक संज्ञा में 'सी' शब्द लगता है वहां अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा मानी जाती है।

दो०-सटपटाति सी ससिमुखी मुख घूँघट पट ढाँकि।
पावक झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि॥ ७२॥

शब्दार्थ-सटपटाति सी=डरती हुई सी (लज्जा वा भय से)। पावक झर=आग की लपट। झमकि कै=शीघ्रता से। झरोखे=खिड़की से।

भावार्थ-वह शशिमुखी डरती हुई सी मुखको घूंघट से




ढँककर आग की सी लपट के रूप वाली शीघ्रता से झरोखे से झाँक कर चली गई।

(विशेष)—इसमें त्रास और लज्जा संचारी भाव है।

अलङ्कार–पूर्णोपमा। 'लटपटातिसी' में उत्प्रेक्षा।

(नयनोक्तियां)

दो०–लागत कुटिल कटाच्छ सर क्यों न होंहि बेहाल।
कढ़त जु हियो दुसार करि तऊ रहत नटसाल ॥७३॥

शब्दार्थ–कटाच्छ=चितवन। बेहाल=व्याकुल। दुसार करि=आर पार होकर, इस पार से उस पार होकर। नटसाल=तीर की गांसी का वा कांटे का वह भाग जो टूट कर शरीर के भीतर ही रह जाय (परन्तु यहां पर उस पीड़ा से तात्पर्य्य है जो ऐसे भाग के रह जाने से तब तक हुआ करती है जब तक वह भाग निकाल नहीं लिया जाता)।

(विशेष)-प्रलय अनुभाव स्पष्ट है।

भावार्थ—तिरछे कटाक्ष बाण के लगने से नायक (वा नायिका) क्यों न व्याकुल हो जाये, क्योंकि कटाक्ष बाण ऐसा होता है कि हृदय को छेद कर वार से पार हो जाता है तो भी उसकी कसक बनी ही रहती है।

अलङ्कार–काव्यलिंग, और विरोधाभास।

दो०–नैन तुरंगम अलक-छवि छरी लगी जिहि आय।
तिहि चढ़ि मन चंचल भयो मति दीनी बिसराय ॥७४॥

शब्दार्थ–तुरङ्गम=घोड़ा। अलक छवि=मुख पर पड़ी हुई लट का सौन्दर्य।

(वचन)-नायक वचन सखी प्रति।

भावार्थ–अलकछवि रूपी छड़ी द्वारा उत्तेजित किये हुए नेत्र



रूपी घोड़े पर सवार होकर मेरा मन चंचल हो गया और सुध बुध भूल गई (अर्थात् नायिका के सुन्दर और चंचल नेत्र देख कर मेरी बुद्धि जाती रही)

अलंकार-रूपक।

(विशेष)-कोई कोई कहते हैं कि यह दोहा बिहारी कृत नहीं है, परन्तु हमारी सम्मति में यह दोहा अवश्य बिहारी ही का है। " किसी की आंखो में चढ़ना " यह हिन्दी का एक मुहावरा है। इस मुहावरे का भाव लेकर नेत्रों को घोड़ा बनाना बिहारी की ही प्रतिभा का काम है। नेत्रों को तुरङ्ग तो अन्य कवियों ने भी माना है। परन्तु पहुंचे हैं केवल उसकी चंचलता ही तक। विहारी ने उपरोक्त मुहावरे का सहारा लेकर उस घोड़े पर सवारी भी गांठी है। तुर्रा यह कि शृंगार-रसकी पूरी सामग्री भी मौजूद कर दी है। रति स्थायी नायिका नायक आलम्बन विभाव, सखी उद्दीपन, चपलता संचारी और प्रलय (मति विसराना) अनुभाव स्पष्ट हैं।

दो०—नीची यै नीची निपट डीठि कुही लौं दौरि।
उठि ऊंचे नीचे दियो मन कुलग झकझोरि॥ ७५॥

शब्दार्थ-कुही=छोटी जाति का बाज पक्षी। कुलंग=(सं० कलविंक) गौरवा पक्षी।

(विशेष)-कुही पक्षी पहले नीचे ही उड़ता रहता है पर जब किसी पक्षी पर आक्रमण करता है तब पहले बहुत ऊंचे उड़ जाता है तब उस पर अचानक टूट पड़ता है कुही के इसी स्वभाव को लेकर विहारी नायिका की नीची निगाह का उपमान बनाते हैं। ऐसा प्रकृति निरीक्षण और ऐसी योजना विहारी ही की प्रतिभा का काम है।

भावार्थ-नायिका की निपट नीची दृष्टि कुही पक्षी की तरह नीचे ही नीचे उड़ कर पुनः ऊंचे उठ कर मेरे मन कुलंग को झकझोर डाला (अर्थात् केवल एक दृष्टिपात से ही मुझे अपना आशिक बना लिया)

अलंकार-पूर्णोपमा ।

दो०-तिय कित कमनैती पढ़ी विनु जिह भौंह कमान ।
चल चित बेझो चुकति नहिं वंक विलोकनि वान ७६

शब्दार्थ-कित=कहां । कमनैती=तीरंदाजी (धनुर्विद्या)। जिह=(फा० ज़ि) चिल्ला. प्रत्यंचा । वेझा=निशाना ।

(वचन)-सखी वचन नायिका प्रति । नायिका परकीया ।

भावार्थ—हे तिय तूने ऐसी अद्भुत तीरंदाजी कहां से (किससे) सीखी है कि विना प्रत्यंचा की भौंह रूपी कमान से तिरछी चितवन रूपी वाण चला कर चित रूपी निशाना को कभी चूकती नहीं ।

(विशेष)—शृंगार में अद्भुत का मेल । अद्भुतता यह कि (१) कमान विना चिल्ले की (२) चितवन रूपी वाण भी टेढ़ा और (३) चित्त (जो प्रत्यक्ष देखा ही नहीं जाता और चलता भी है) उसका निशाना ।

अलंकार - दूसरी विभावना । (हेतु अपूरण ते जहाँ कारज पूरण होय) ।

दो०-दूरै खरै समीप को मानि लेत मन मोद ।
होत दुहुन के दृगन हीं वतरस हँसी विनोद ॥७७॥

शब्दार्थ-खरे=निपट । वतरस=रसीली वातें ।

(वचन)-सखी का सखी प्रति । नायिका परकीया ।

भावार्थ-नायक नायिका दूर ही रहने पर भी निपट समीप

रहने का सा आनन्द मान लेते हैं क्योंकि दोनों की रसीली बातें और हँसी विनोद आंखों ही में होते हैं।

अलंकार—दूसरी विभावना और काव्यलिंग।

दो०—छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहर गेह।
सटपटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ-प्यौ=(प्रिय) नायक। नैहर=पीहर, मायका। सट-पटात=छटपटाते हैं, व्याकुल हैं।

(वचन)-सखी का सखीप्रति। नायिका स्वकीया मध्या।

भावार्थ—नैहर में आये हुए नायक को देखने के लिये नायिका के लोचन व्याकुल हो रहे हैं क्योंकि संकोच और प्रेम युक्त होने के कारण न तो लज्जा ही त्यागते बनती है न मिलने का लालच ही।

अलंकार—दूसरा पर्याय। यथाः-

क्रम ही सों जहँ एक में आवैं वस्तु अनेक।

(विशेष)-संकोच और स्नेह—लज्जा और प्रेम-की उमङ्गें बारी बारी से नायिका के हृदय में आकर उसे व्याकुल कर रही हैं। ऐसी दशा को साहित्य में "भाव सन्धि" कहते हैं। यह भाव सन्धि 'मध्या' में अवश्य ही होती है।

दो०—करे चाह सो चुटुकि कै खरे उड़ौंहे मैन।
लाज नवाये तरफरत करत खुँदी सी नैन ॥७९॥

शब्दार्थ—चुटुकि कै=चुटकी से डरा डरा कर। खरे उड़ौंहैं=खूब उड़ने वाले। तरफरत=तड़फड़ाते हैं। खुंदी=घोड़े की वह चंचलता जिसके कारण वह स्थिर होकर खड़ा नहीं रहता।

विशेष-सन की एक गावदुम लंबी रस्सी सी (वेणी के आकार की) बनाई जाती है उसे चुटकी कहते हैं। घोड़ा निकालते समय जब घोड़े को 'उड़ान' सिखाना होता है तब यह चुटकी घोड़े के पीछे तड़ाक तड़ाक बजाई जाती है जिससे डर कर घोड़ा उड़ना (कूदते हुए चलना) सीखता है। 'खुंदी करना=जब घोड़ा उड़ना चाहता है, परन्तु सवार उसे उड़ने से रोकता है तब घोड़ा एक जगह स्थिर होकर खड़ा नहीं रहता-इसी को 'खुंदी' करना कहते हैं।

भावार्थ-काम ने चाह को चुटकी दे देकर नायिका के नयन तुरंगों को खूब उड़ने वाले बना दिया है। अतः लाज रूपी लगाम द्वारा रोके जाने पर तड़फड़ा तड़फड़ा कर वे नेत्र तुरंग खुंदी सी करते हैं (अर्थात् नायिका नायक को देखना चाहती है पर गुरुजन की लज्जा से स्वतंत्रता पूर्वक देख नहीं सकती अतः उसके नेत्र चंचल हो रहे हैं) मायके (नैहर, पीहर) में युवती स्त्रियां अपने पति को स्वतंत्रता पूर्वक नहीं देख सकतीं। यही अवस्था इस दोहे में वर्णित है।

अलंकार-एक देश विवर्तित सांग रूपक। (नेत्रों को 'तुरंग' और लाज को 'लगाम' कहना चाहिये था सो स्पष्ट शब्द नहीं कहे गये। "चुटुकि कै, उड़ौहैं करे, और खुंदी सी करत" इत्यादि शब्दों की लक्षणा शक्ति से 'तुरङ्ग' का रूपक जान पड़ता है। ऐसी लक्षणा शक्ति से काम लेना भी बिहारी ही का काम है।

दो०नावक *सर से लाय कै तिलक तरुनि इत ताकि।
पावक झर सी झमकि कै गई झरोखे झांकि ॥८०॥

---

* सतसैया के दोहरा अरु नावक के तीर।
देखत के छोटे लगैं घाव करैं गंभीर।

शब्दार्थ—नावक सर (फा०) एक प्रकार का छोटा तीर जो एक नली द्वारा (जो कमान में लगी रहती है) फेंका जाता है। वास्तव में नावक उस नलिका को कहते हैं जिसमें से होकर वह बाण फेंका जाता है। परन्तु 'लक्षित लक्षणा' से 'नावक' का अर्थ 'तीर' ही लेते हैं। झर=लपट। झमकि कै=शीघ्रता से।

भावार्थ—वह तरुणी (नायिका) नावक के तीर के समान तिलक लगा कर मेरी ओर ताक कर, आग की लपट की तरह शीघ्रता पूर्वक झरोखे से झाँक कर चली गई।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान ?।
वह चितवनि औरै कछू जिहिं वस होत सुजान ॥८१॥

शब्दार्थ—अनियारे = अनीवाले (वे नेत्र जो लंबे और जिन के कोने पैने नुकीले हों)। समान=(स + मान) गर्वीली।

(विशेष)—सखी नायिका की प्रशंसा में कहती है।

भावार्थ—इस ग्राम में अनियारे और बड़े नेत्र वाली गर्वीली स्त्रियां कितनी नहीं हैं (अर्थात बहुत हैं), परंतु तेरी चितवन कुछ बिलक्षण भांति की है जिस से सुजान नायक वस होता है।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति, व्यतिरेक और भेदकातिशयोक्ति।

दो०—चमचमात चंचल नयन विच घूंघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन ॥८२॥

शब्दार्थ—चमचमात = चमकते हैं। झीन = महीन, बारीक। सुरसरिता = गंगा।





भावार्थ—महीन घूंघटपट के भीतर नायिका के चंचल नेत्र चमकते हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों गंगा के निर्मल जल में दो मछलियां उछलती हों ।

अलकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

दो०—फूले फरकत लै फरी पल कटाच्छ करवार ।
करत बचावत विय नयन पायक घाय हजार ॥८३॥

शब्दार्थ—फूले=आनंदित होकर । फरकत = पैतरे बदलते हैं । फरी = ढाल । करवार = (करवाल) तलवार । विय=(द्वि) दोनों । पायक=सिपाही (पैदल) । घाय = (आघात) वार ।

(विशेष)—नायिका नायक को देख रही है । यह देख कर सखी का सखी प्रति कथन ।

भावार्थ—नायिका के दोनों नेत्र रूपी सिपाही पल रूपी ढाल और कटाक्षरूपी तलवार लिये हुए आनंदयुक्त पैतरे बदलते हैं, और हजारों वारें करते और बचाते हैं ।

(विशेष)—इस में हर्ष संचारी भाव और कटाक्षपात अनुभाव है ।

अलंकार—सांगरूपक और कारकदीपक ।

दो०—जदपि चवायनि चीकनी चलति चहूँ दिस सैन ।
तऊ न छांड़त दुहुन के हँसी रसीले नैन ॥८४॥

शब्दार्थ—चवायनि चीकनी=चवाव अर्थात् निन्दा से चीकनी अर्थात् पुष्ट (निंदायुक्त)। सैन=इशारा ।

(वचन)—सखी प्रति सखी का । नायिका परकीया ।

भावार्थ—यद्यपि निन्दायुक्त इशारे चारों ओर से हो रहे हैं तो भी दोनों के रसीले नेत्र परस्पर की हँसी नहीं छोड़ते ।

अलंकार—विशेषोक्ति (विद्यमान कारण बन्यो तऊ न फल जहँ होय)

(नासिका वर्णन)

दो०—जटित नीलमणि जगमगति सींक सुहाई नाँक।
मनो अली चंपककली बसि रस लेत निसांक॥८५॥

शब्दार्थ—सींक=नांक में पहनने का एक आभूषण जिसे लौंग वा फुली भी कहते हैं। अली=(अलि) भौंरा। निसांक=निःशंक

भावार्थ—उस नायिका की सुन्दर नाक में नीलमजटित लौंग जगमगा रही है, वह ऐसी जान पड़ती है मानो चंपा की कली पर बैठा हुआ भौंरा बेखटके रस पी रहा हो।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा। (धन्य बिहारी। प्रतिभा द्वारा भौंरे को चंपा की कली पर बैठा ही दिया)।

दो०—बेधक अनियारे नयन बेधत कर न निषेध।
बरबस बेधत मो हियो तो नासा को बेध॥८६॥

शब्दार्थ—बेधक=बेधनेवाला। अनियारे=नुकीले। निषेध=मनाही। बरबस=जबरदस्ती। बेध=छेद।

भावार्थ—हे प्रिया! तेरे नुकीले नेत्र जो मेरे हृदय को बेधते हैं उन्हें तू मना मत कर (अर्थात् बेधने दे, वे नुकीले हैं, बेधना उनका काम ही है, क्योंकि नुकीली वस्तु है) परंतु आश्चर्य तो यह है कि तेरी नाक का छेद (जो स्वयं विद्ध है और नुकीला नहीं है) बरबस मेरे हृदय को बेधता है। (अति सौन्दर्य व्यंजित है)।

अलंकार—चौथी विभावना। (जाको कारण जो नहीं उपजत ताते तौन)।

दो०—जदपि लौंग ललितौ तऊ तू न पहिरि इक आक ।
सदा संक बढ़िये रहै, रहै चढ़ी सी नांक ॥ ८७ ॥

शब्दार्थ—लौंग=नाक में पहनने की फुल्ली (सींक)। इक आंक=निश्चय ।

(वचन)—शठ नायक का वचन मानवती नायिका प्रति ।

भावार्थ—यद्यपि लौंग अति सुन्दर है तो भी तू इसे कभी न पहना कर। इसके पहनने से तेरी नाक चढ़ी सी रहती है और मेरी शंका सदा बढ़ी ही रहती है (कि शायद तू मान किये हुए है)।

अलंकार—लेश-(जहं वर्णत गुण दोष कै कहै दोष गुणरूप)

यहां लौंग की ललिताई को दोषवत् माना है। श्लेष से यह व्यंजित होता है कि 'लौंग' कटु रस युक्त होती है अतः यह लौंग तेरी नाक से कटु रस अर्थात् मान (क्रोध) प्रदर्शित करती है।

दो०—बेसरि-मोती-दुति झलक परी ओठ पर आय ॥
चूनो होय न चतुर तिय क्यों पट पोंछो जाय ॥८८॥

शब्दार्थ—बेसर=नाक में पहनने का एक भूषण विशेष जिसमें बहुत से मोती गुंथे होते हैं। चूनो=पान में खाने का चूना ।

भावार्थ—बेसर में गुंथे हुए मोतियों की चमक की सफेद आभा तेरे ओठों पर आपड़ी है (जिसे तू चूना समझती है, सो) हे तिय, यह चूना नहीं है, यह कपड़े से कैसे पुंछ सकती है।

अलंकार—भ्रान्त्यापन्हुति ।

दो० इहि द्वै ही मोती सुगध तू नथ गरबि निसांक ।
जिहि पहिरे जगदृग ग्रसति लसति हँसति सी नांक ॥८९॥

शब्दार्थ—सुगथ=सुन्दर पूंजी। गरबि=गर्व कर ले। निसांक=निर्भय।

(वचन)—नायक वचन नथ प्रति। (अति सौन्दर्य व्यंग)

भावार्थ—हे नथ इन दोही मोतियों की पूंजी पर तू निःशंक गर्व करले, क्योंकि तू ऐसा सुन्दर है कि तुझे पहनकर यह नासिका हँसती सी जान पड़ती है और सब के नेत्रों को ग्रसती है (सब लोग टकटकी लगाकर इसे देखते हैं)

(विशेष)—इस दोहा में विच्छित्त हाव और गर्व संचारी है

अलंकार—अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा-(हँसती सी नाक)

दो०—बेसरि-मोती धन्य तू को पूछै कुल जाति।
पीबो करि तिय अधर को रस निधरक दिनराति॥९०॥

शब्दार्थ—अधर=नीचे वाला ओठ। निधरक=निर्भयता से।

भावार्थ—हे बेसर के मोती, तू धन्य है, कुल और जाति कौन पूंछता है? नायिका के ओठ का रस निर्भयता पूर्वक रातो दिन पिया कर।

अलंकार—अन्योक्ति। व्याजस्तुति।

(कपोल वर्णन)

दो०—बरन बास सुकुमारता सब बिधि रही समाय।
पँखुरी लगी गुलाब की गाल न जानी जाय॥९१॥

शब्दार्थ—बरन=(वर्ण) रंग। बास=गंध।

भावार्थ—गुलाब की एक पंखुरी नायिका के गाल में चिपक गई है, सो जान नहीं पड़ती, क्योंकि वह रंग, सुगंध और कोमलता में गाल ही में समा गई है (अर्थात् उसके गाल का रंग तथा उसकी सुगंध और कोमलता उसी प्रकार की है

जैसी गुलाब की पंखुरी की)

अलंकार—मीलित।

(श्रवन वर्णन)

दो०—लसत सेत सारी ढक्यों तरल तर्यौना कान।
पर्यो मनो सुरसरि-सलिल रवि-प्रतिबिंब बिहान ॥९२॥

शब्दार्थ—तर्यौना=कर्णफूल। प्रतिबिंब=अक्स। बिहान=प्रातःकाल।

भावार्थ—सरल।

अलंकार—उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

(अधर वर्णन)

दो०—सुद्युति दुराये दुरति नहिं प्रगट करति रति रूप।
छुटे पीक और उठी लाली ओठ अनूप ॥९३॥

शब्दार्थ—सुद्युति=सुन्दर कान्ति। रति=समागम।

(विशेष)—नायिका प्रति सखी वचन। नायिका लज्जिता।

भावार्थ—ओठ की सुन्दर कान्ति (जो तू छिपाना चाहती है) छिपाने से छिपती नहीं, वरन् वह प्रत्यक्ष पुरुष समागम का रूप प्रगट कर रही है। पीक के छूट जाने से (नायक के चुम्बनादि से) ओठ में और ही प्रकार की अनूपम सुर्खी आगई है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

(चिबुक वर्णन)

दो०—कुच गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै चली डीठि मुख चाड़।
फिरि न टरी परियै रही परी चिबुक की गाड़ ॥९४॥



शब्दार्थ—चाड़=चाह। चिबुक=ठोड़ी। गाड़=गड्ढा।

भावार्थ—मेरि दृष्टि कुचरूपी पर्वतों पर चढ़ कर अत्यन्त थकित हो कर धीरे २ मुख की छवि देखने की चाह में आगे बढ़ी, तो रास्ते में चिबुक का गड्ढा मिला। बस उस गड्ढे में जो गिरी तो वहीं पड़ी रह गई फिर वहां से टली नहीं।

अलंकार—एक देश विवर्तित सांगरूपक—(यहां "दृष्टि" को "यात्री" कहना चाहिये था सो नहीं कहा)।

दो०--ललित स्यामलीला ललन चढी चिबुक छवि दून।
मधु छाक्यो मधुकर पर्यो मनों गुलाब प्रसून ॥९५॥

शब्दार्थ—स्यामलीला=गोदना का बिन्दु। मधु=मकरंद, पुष्परस। प्रसून=फूल।

भावार्थ—(सखी वचन नायक प्रति) हे ललन उस नायिका की ठोढ़ी पर जो सुन्दर गोदना का विंदु है उससे चिबुक पर दूनी छवि चढ़ गई है और ऐसा जान पड़ता है मानो मकरंदसे छककर कोई भौंरा गुलाबके फूलमें पड़ा हुआ है।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०--डारे ठोढ़ी गाड़ गहि नैग बटोही मारि।
चिलक चौंधि में रूप ठग हांसी फांसी डारि ॥९६॥

शब्दार्थ—बटोही=मुसाफिर। चिलक=चमक। चौंधि=चकाचौंधी।

(वचन)--सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—तेरे रूप ठगने कान्ति की चमक की चकाचौंधी में पड़े हुए नेत्र पथिकों को गले में हंसी की फांसी डालकर उन्हें मार कर ठोढी के गड्ढे में डाल रक्खा है (जो नेत्र

तेरे रूप को देखता है वही मारा जाकर चिवुक के गड्ढे में डाल दिया जाता है। उसी की लाश यह स्यामलीला है)।

अलंकार—सांग रूपक।

दो०--तो लखि मो मन जो लही सो गति कही न जाति।
टोढ़ी गाड़ गड्यौ तऊ उड़्यौ रहै दिन राति ॥९७॥

शब्दार्थ तथा भावार्थ सरल हैं।

अलंकार—बिरोधाभास।

(डिठौना-वर्णन)

दो०-लोने मुख डीठि न लगै यों कहि दीनो ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी दिये दिठौना दीठि ॥९८॥

शब्दार्थ—लोने=सुन्दर। ईठ=हितू वा मित्र।

भावार्थ—(सखी वचन सखी प्रति) हितू सखीने नायिका के मस्तक पर यह समझ कर कि इस सुन्दर मुख पर किसी की नजर न लगजाय दिठौना लगा दिया। परन्तु दिठौना लगाने से उस मुखकी और भी अधिक सुन्दरता बढ़गई और और अधिक लोगों की दृष्टि उसके मुखपर पड़ने लगी।

अलंकार--तीसरा विषम।

(जहां भलो उद्यम किये होत बुरो फल आय)

दो०—पिय तिय सों हँसि के कह्यौ लखे दिठौना दीन।
चंद्रमुखी मुखचंद तें भलो चंद सम कीन ॥ ९९ ॥

भावार्थ--दिठौना दिये हुए देखकर नायक ने हँसकर नायिका से कहा कि हे चन्द्रमुखी तेरा मुख चंद्रमासे अच्छा था सो

अब दिठौना लगाकर कलंकी चन्द्रमा के समान कर डाला (अथवा) हे चन्द्रमुखी, यह चन्द्र सम कलंकित किया हुआ तेरा मुख अब भी चन्द्रमा से अच्छा ही है।

अलंकार—व्यतिरेकालंकार।

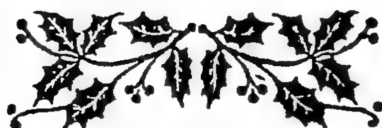
(मेंहदी वर्णन)

दो०—गड़े बड़े छबि-छाक छकि छिगुनी छोर छुटैं न।
रहे सुरँग रँग रँगि वही नह दी महँदी नैन ॥ १०० ॥

शब्दार्थ—छविछाक छकि = छवि के नशेसे मस्त होकर। रँगि रहे = अनुरक्त हो रहे हैं।

भावार्थ—(नायक वचन सखी प्रति) हे सखी नायिका ने जो नाखून में मेंहदी लगाई है उसीके बड़े छवि-छाकसे छक कर मेरे नेत्र छिगुनी के छोर में गड़ रहे हैं वहांसे छूटने नहीं पाते, (मानो) उसी नाखून में दी हुई मेंहदी के सुन्दर लाल रंग से अनुरक्त हो रहे हैं।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।



द्वितीय शतक ।

(मुख वर्णन)

दो०—सूर उदित हू मुदित मन मुख सुखमा की ओर ।
चितै रहत चहुँ ओर ते निश्चल चखनि चकोर ॥१०१

शब्दार्थ—सुखमा = परम शोभा । निश्चल = स्थिर ।

(वचन)—सखी वचन नायिका के मुख की प्रशंसा ।

भावार्थ—सूर्य्य उदय हो आने पर भी उसकी मुख-शोभाकी ओर आनन्दित मनसे टकटकी लगाये चकोर चारो ओरसे देखा करते हैं (चकोर उसके मुखको चन्द्रमा ही समझते हैं)

अलङ्कार—भ्रम भ्रान्ति ।

दो०—पत्राही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास ।
नितप्रति पुनो ही रहत आनन ओप उजास ॥१०२॥

शब्दार्थ—चहुंपास = चारो ओर । पूनो = पूर्णमासी । ओप = चमक । उंजास = प्रकाश ।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—वाके (नायिका के) घर के चारो ओर तिथि का ठीक पता नहीं चलता केवल पत्रा ही से ठीक तिथि जानी जाती है, कारण इसका यह है कि उस के (नायिका के) मुख की चमक और प्रकाश से वहां नित्य पूर्णमासी ही की सी चांदनी छिटकती है ।

अलंकार—परिसंख्या तथा काव्यलिंग ।

(हास्य वर्णन)

दो०——नेकु हँसौंही बानि तजि लख्यौ परत मुख नीठि।
चौका चमकनि चौंधमें परत चौंधिसी डीठि।१०३।

शब्दार्थ—बानि=आदत। नीठि=कठिनतासे। चौका=अगले चार दाँतों का समूह। चौंध=चकचौंध। डीठि चौंधि सी परति=दृष्टि चौंधिया सी जाती है।

भावार्थ—(सखी वचन नायिका प्रति) जरा हँसोड़ आदत छोड़ दो, इस हंसी के कारण तेरा मुख मुशकिल से देखा जा सकता है। चारो दाँतों की चमक की चकचौंध में देखने-वाले की दृष्टि चौंधियासी जाती है।

अलंकार—काव्यलिंग और अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

(कुच वर्णन)

दो०——चलन न पावत निगम मग जग उपजी अति त्रास।
कुच उतंग गिरिवर गह्यौ मीना मैन मवास॥१०४॥

शब्दार्थ—मीना=राजपूताने की एक जंगली और लुटेरी जाति (गोंड़-भील)। मवास=आश्रयस्थान (गढ़)।

(वचन)—कविकी उक्ति।

भावार्थ—तेरे उतंग कुचोंके कारण वेदका पंथ (परनारिको मातावत् समझना इत्यादि) नहीं चलने पाता, अतः संसार भरमें अति त्रास उत्पन्न हो गई है। तेरे उतग कुचरूपी पहाड़ों पर काम रूपी मीनाने अपना गढ़ बना लिया है (वहीं रह कर चारो ओर लूट मार करता रहता है अतः उसकी लूट के डरसे वेदका रास्ता बंद हो गया है)।

अलंकार—समअभेद रूपक। (सांगरूपक)।

(कटिवर्णन)

दो०—ज्यौं ज्यौं जोबन जेठदिन कुच मिति अति अधिकाति।
त्यौं त्यौं छिन छिन कटि छपा छीन परति सी जाति १०५

शब्दार्थ—मिति = दिनका मान। छपा = रात्रि। छीन परति जाति = कम होती जाती है।

[वचन]—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—जैसे जैसे जवानी रूपी जेठ मास में कुच रूपी दिनों का मान बढ़ता जाता है (अर्थात् जैसे जेठ मास में रोज रोज दिन बढ़ता है वैसेही जवानी में कुच बढ़ते हैं) वैसेही वैसे कमररूपी रात्रि प्रतिदिन थोड़ी थोड़ी घटती जाती है।

अलंकार—रूपक।

दो०—लगी अनलगी सी जु विधि करी खरी कटि छीन।
किये मनो वाही कसरि कुच नितंब अति पीन॥१०६॥

शब्दार्थ—खरी छीन = बहुत पतली। वाही कसरि = उसी के बदलेमें। पीन = पुष्ट।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—ब्रह्माने जो उसकी कमर अत्यंत पतली बनायी है कि लगी हुई भी न लगी हुई सी जान पड़ती है, (अर्थात ब्रह्माने उसकी कमर ऐसी पतली बनाई है कि होते हुए भी नहीं के समान है) मानो इसीका बदला देनेके लिये उसके कुच और नितंब बहुत बड़े बड़े कर दिये हैं।

अलंकार—असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

(जंघा वर्णन)

दोहा०—जंघ जुगल लोयन निरे करे मनो विधि मैन।
केलि तरुन दुखदैन ए केलि तरुन सुखदैन॥१०७॥



शब्दार्थ—निरे = बिल्कुल, निखवख ।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—मानो काम ब्रह्माने उसके दोनों जंघा बिल्कुल लावण्य (सौन्दर्य) ही के बनाये हैं। वे जंघा केलेके वृक्षोंको तो दुख देनेवाले हैं (लज्जित करनेवाले हैं) परंतु केलि (रति) समय में तरुण पुरुष को सुख देनेवाले हैं।

अलंकार—पूर्वार्द्धमें अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्धमें यमक

(मोरवा वर्णन)

दो०—रह्यो ढीठ ढाढ़स गहे ससिहर गयो न सूर ।
मुरयो न मन मुरवान चुभि भौ चूरन चपि चूर ॥१०८॥

शब्दार्थ—ढाढ़स=साहस । ससिहर=(फा० शशदर) भयभीत, हैरान। ससिहर गयो न=डरानहीं, हैरान नहीं हुआ। सूर=शूर बीर। मुर्यो न=मुड़ा नहीं,लौटा नहीं। मुरवा=पांवका वह भाग जहां पर कड़े, छड़े, पाजेब, इत्यादि भूषण पहने जाते हैं। चूरन=(चूराका बहुवचन) कड़े।

भावार्थ—नायक वचन सखी प्रति) हे सखी मेरा मनभी कैसा शूर बीर है। देखो तो प्यारीके मुरवोंको देखकर मुड़ा नहीं, डरा नहीं, बरन् ढीठ होकर साहस धारण किये रहा और वहीं चुभकर कड़ोंसे चँपकर चूर चूर हो गया । (भाव यह है कि नायिकाके मुरवा इतने सुन्दर हैं कि मेरा मन वहांसे हटा नहीं, वरन् वहीं चँपकर चूर चूर हो गया) ।

अलंकार—छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास ।

(एंड़ीवर्णन)

दो०—पाय महावर देनकों नाइन बैठी आय ।
फिरि फिरि जानि महावरी एंड़ी मीड़त जाय १०९

शब्दार्थ—महावरी = महावरकी गोली।

भावार्थ—(सखी वचन नायक प्रति) हे लाल! हमारी सखी (नायिका) की एंड़ी स्वभाविक ऐसी गोल और लाल है कि एक बार एक नाइन महावर लगाने को आई थी, उसे भ्रम हो गया और वह एंड़ी ही को महावरकी गोली समझ कर उसे ही मींड़ मींड़ कर लाल रंग निकालने लगी।

अलंकार—भ्रम।

दो०—कौहर सी एंड़ीन की लाली निरखि सुभाय।
पाय महावर देइको आप भई बे पाय ॥११०॥

शब्दार्थ—कौहर = एक जंगली लाल फल जिसे माहरी भी कहते हैं। बे पाय भई = चकित हो गई।

भावार्थ—कौहर समान एँड़ियों की सहज स्वाभाविक लालिमा देख कर नाइन ऐसी चकित हो गई कि उसकी बुद्धि भ्रमित हो गई; तो पैर में महावर कौन लगावै (अर्थात् महावर लगानाही भूलगई)।

अलंकार—पूर्वार्द्धमें पूर्णोपमा। उत्तरार्द्धमें (पाय, बेपाय) यमक।

(पायल वर्णन)

दो०—किय हायल चित चायलगि बजि पायल तुव पाय।
पुनि सुनि सुनि मुख मधुर धुनि क्यों न लाल ललचाय॥ १११

शब्दार्थ—हायल = (घायल) मूर्च्छित, स्थगित। चाय = चाह।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—चित्तमें चाह लगी रहनेके कारण जब तेरे पैरकी पायजेबही बज बजकर नायकको स्तंभित कर देतीहै, तो फिर

शब्दार्थ—निरे = बिल्कुल, निखवख।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—मानो काम ब्रह्माने उसके दोनों जंघा बिल्कुल लावण्य (सौन्दर्य) ही के बनाये हैं। वे जंघा केलेके वृक्षोंको तो दुख देनेवाले हैं (लज्जित करनेवाले हैं) परंतु केलि (रति) समय में तरुण पुरुष को सुख देनेवाले हैं।

अलकार-पूर्वार्द्धमें अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्धमें यमक

(मोरवा वर्णन)

दो०—रह्यो ढीठ ढाढ़स गहे ससिहर गयो न सूर।
मुरच्यो न मन मुरवान चुभि भौ चूरन चपि चूर ॥१०८॥

शब्दार्थ—ढाढ़स=साहस । ससिहर=(फा० शशदर) भयभीत, हैरान। ससिहर गयो न=डरानहीं, हैरान नहीं हुआ। सूर=शूर बीर। मुर्‌यो न=मुड़ा नहीं,लौटा नहीं। मुरवा= पांवका वह भाग जहां पर कड़े, छड़े, पाजेब, इत्यादि भूषण पहने जाते हैं। चूरन=(चूराका बहुबचन) कड़े।

भावार्थ—नायक वचन सखी प्रति) हे सखी मेरा मनभी कैसा शूर बीर है। देखो तो प्यारीके मुरवोंको देखकर मुड़ा नहीं, डरा नहीं, वरन् ढीठ होकर साहस धारण किये रहा और वहीं चुभकर कड़ोंसे चँपकर चूर चूर हो गया। (भाव यह है कि नायिकाके मुरवा इतने सुन्दर हैं कि मेरा मन वहांसे हटा नहीं, वरन् वहीं चँपकर चूर चूर हो गया)।

अलंकार—छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास।

(एंड़ीवर्णन)

दो०—नाय महावर देनकों नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एंडी मीड़त जाय १०९

शब्दार्थ—महावरी = महावरकी गोली ।

भावार्थ—(सखी बचन नायक प्रति) हे लाल ! हमारी सखी (नायिका) की एंड़ी स्वभाविक ऐसी गोल और लाल है कि एक बार एक नाइन महावर लगाने को आई थी, उसे भ्रम हो गया और वह एंड़ी ही को महावरकी गोली समझ कर उसे ही मींड़ मींड़ कर लाल रंग निकालने लगी ।

अलंकार—भ्रम ।

दो०—कौहर सी एंडीन की लाली निरखि सुभाय ।
पाय महावर देइको आप भई बे पाय ॥११०॥

शब्दार्थ—कौहर = एक जंगली लाल फल जिसे माहरी भी कहते हैं । वे पाय भई = चकित हो गई ।

भावार्थ—कौहर समान एँड़ियों की सहज स्वाभाविक लालिमा देख कर नाइन ऐसी चकित हो गई कि उसकी बुद्धि भ्रमित हो गई; तो पैर में महावर कौन लगावै (अर्थात् महावर लगानाही भूलगई) ।

अलंकार—पूर्वार्द्धमें पूर्णोपमा । उत्तरार्द्धमें (पाय, वेपाय) यमक ।

(पायल वर्णन)

दो०—किय हायेल चित चायलगि वजि पायल तुव पाय ।
पुनि सुनि सुनि मुख मधुर धुनि क्यों न लाल ललचाय॥११

शब्दार्थ—हायल = (घायल) मूर्च्छित, स्थगित । चाय = चाह ।
(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति ।

भावार्थ—चित्तमें चाह लगी रहनेके कारण जब तेरे पैरकी पायजेबही वज वजकर नायकको स्तंभित कर देतीहैं, तो फिर



तेरे मुखकी मधुर ध्वनि सुन सुनकर लाल (नायक) क्यों न ललचाय (तेरे मुखकी वार्ता सुननेको)।

अलंकार---अनुप्रास।

(अनवट वर्तन)

दो०-सोहत अँगुठा पायके अनवट जर्‌यौ जराय।
जीत्यौ तरिवन दुति सु ढरि पर्‌यो तरनि मनु पाय॥११२।

शब्दार्थ-अनवट = पैरके अँगूठामें पहनने का आभूषण। तरिवन = (तर्‌यौना) कर्णफूल। तरनि = सूर्य।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ-पैरके अँगूठेमें जड़ाऊ अनवट ऐसी शोभा देता है मानो कर्णफूलकी दुतिसे पराजित होकर सूर्यही पैरों पर आ गिरा है।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

(पगतल अरुणता वर्णन)

दो०-पग पग मग अगमन परति चरन अरुन दुति झूलि।
ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि॥११३॥

शब्दार्थ—अगमन = आगे (जहां उठाया हुआ चरण पड़ने को है)। अरुनदुति झूलिपरति=लालआभा झड़ पड़ती है। दुपहरिया=बंधूकपुष्प।

(वचन)—सखीका नायक प्रति।

भावार्थ—रास्तेमें (नायिकाके चलते समय) पग पग पर आगेकी ओर (जहां उठाया हुआ चरण पड़नाहै) पैरकी लाल आभा झड़ पड़तीहै, (और ऐसी जान पड़तीहै) मानो जगह जगह पर दुपहरियाके फूल, फूल उठेहैं।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

(कंचुकी वर्णन)

दो०—दुरत न कुच बिच कंचुकी चुपरी सादी सेत।
कवि अंकनके अर्थ लौं प्रगट दिखाई देत ॥११४॥

शब्दार्थ—कंचुकी=अंगिया। चुपरी=इत्र आदि सुगंध लगाईहुई।

(वचन)—सखी बचन नायक प्रति।

भावार्थ—सुगंध लगीहुई, सादी और सफेद कंचुकीमें कुच छिपते नहीं हैं (अर्थात् अत्यंत कान्तिमानहैं) काव्यके अर्थके समान प्रगटही दिखाई पड़तेहैं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो० -भई जु तन छवि बसन मिलि बरनि सकै सु न बैन।
अँग ओप आंगी दुरी आंगी आंग दुरैन ॥ ११५॥

शब्दार्थ—ओप=कान्ति। आँगी=अँगिया।

भावार्थ—वस्त्रसे मिलकर जो छवि उसके शरीरकी हुई उसे बचन नहीं कह सकता। उसके कुचोंकी कान्तिसे अंगियाही छिपगई, अँगियामें कुच न छिपे।

अलंकार—पूर्वार्द्धमें 'वाचकधर्मोपमानलुप्ता' तृतीय चरणमें मीलित और चतुर्थ चरणमें विशेषोक्ति।

(वस्त्राभूषण वर्णन)

दो०—भूषन पहिरि न कनकके कहि आवत इहि हेत।
दरपनके से मोरचे देह दिखाई देत ॥११६॥

शब्दार्थ—कनक=सोना। दरपन=आईना।

(विशेष)—स्मरण रखना चाहिये कि दर्पण (आईना) पहले लोहेसे बनताथा। उसमें मोरचा लगना संभवथा।

भावार्थ--(सखी बचन नायिकाप्रति) "तू सोनेके भूषण न पहनाकर" यह बात इसलिये कही जातीहै कि (भूषणोंसे तेरी शोभा नहीं बढ़ती वरन्) तेरी देहमें वे भूषण दर्पणमें लगे हुये मोरचेके समान दिखाई पड़तेहैं (अर्थात् तेरी स्वाभाविक सुन्दरताको भी बिगाड़ देतेहैं)

अलंकार-पूर्णोपमा। विषम।

दो०-मानहु विधि तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिबे काज।
दृगपग पोंछन को किये भूषन पायन्दाज ॥ ११७ ॥

शब्दार्थ--स्वच्छ=निर्मल। पायन्दाज=(फा०) पैर पोछनेका वस्त्र।

(बचन)—कविकी उक्ति वा सखी बचन नायक प्रति।

भावार्थ--दृष्टिके पैरोंसे शरीरकी अच्छी छबि मैली न होजाय (स्वच्छरहै) मानो इसीलिये दृष्टिके पैर पोछनेके लियेही ब्रह्माने पायन्दाजके तौर पर भूषणोंकी सृष्टिकी है।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा।

نگاہوں کے قدم میلی نہ کردیں چاندنی
یہ زیور ہیں گڑھے خالق نے پایںداز کی صورت-

दो०-सोनजुही सी जगमगै अँग अँग जोबन जोति।
सुरंग कुसुंभी चूनरी दुरंग देहदुति होति ॥११८॥

शब्दार्थ—जगमगै=चमचमातीहै। जोबन=जवानी। सुरंग=लाल। दुरंग=दो रंगकी। देह-दुति=शरीरकी आभा।

(बचन)—सखी वचन नायकप्रति।

भावार्थ-जवानीके कारण उसके सब अंगोमें सोनजुही (पीली चमेली) की आभा चमकतीहै। उसपर जिस समय वह कुसुमकी रंगीहुई लाल चूनरी पहनतीहै उस समय उसके





शरीरकी आभा दोरंगी (धूप छाँह सी) हो जातीहै।

अलंकार— पूर्वार्द्धमें) पूर्णोपमा। (उत्तरार्द्धमें) वृत्यानुप्रास (उपनागरिका)।

جوانی سے بدن پیلی چھیلی سا دمکتا ہے-

کسی بھی چونری سے تافتہ بنکر جھکتا ہے-

दो०—छप्पो छबीलो मुख लसै नीले आंचर चीर॥
मनो कलानिधि झलमलै कालिंदीके नीर॥११९॥

शब्दार्थ—छप्पो = ढँका हुआ। छबीलो=सुन्दर। आँचर = दामन, सारीका वह भाग जो ओढ़ा जाता है। कलानिधि= चन्द्रमा। कालिंदी=यमुना।

भावार्थ—सरल।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—लसै मुरासा तिय स्रवन यो मुकतन दुति पाय।
मानो परस कपोलके रहो सेदकन छाय॥१२०॥

शब्दार्थ-मुरासा=तरकी, तरौना। सेदकन=(स्वेदकण) पसीनेके बूंद।

भावार्थ—मोतियोंकी आभायुक्त (मोती जटित) तरकी नायिकाके कानोंमें ऐसी शोभायमान है, मानो कपोलके स्पर्शसे (मुरासे स्वेद सात्विक भाव हुआ है) पसीनेके बूंदोंसे छा गया है।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—सहज सेत पचतोरिया पहिरे अति छवि होति।
जल चादर के दीप लौं जगमगाति तन जोति १२१

शब्दार्थ—पचतोरिया=एक प्रकारकी बारीक रेशमी साड़ी जलचादर=फव्वारेसे छूटती हुई पानीका चादर।



भावार्थ-सफेद बारीक रेशमी साड़ी पहननेसे सहजहीमें उस नायिकाकी छवि बहुत बढ़ जाती है। उसके तनकी कान्ति जलचादरके भीतर रक्खे हुए दीपककी भाँति जगमगाती है।

(विशेष)—राजाओंके अच्छे बागोंमें प्रायः ऐसी सजावट होती थी कि ऊपरसे एक चौड़ी चादरकी भांति जल गिरता था और उसके पीछे ताखोंमें चिराग रक्खे जाते थे ;जो इस ओर झिलमिलातेसे दिखाई पड़ते थे। लाहौरमें महाराजा रणजीत सिंहके शालमार बागमें और श्रीअयोध्याजीमें अवध नरेशके शृंगार वन नामक बागमें अबतक जलचादर मौजूद हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(खुभी वर्णन)

दो०—सालति है नटसाल सी क्यौं हूं निकसति नाहिं।
मन-मथ—नेजा नोक सी खुभी खुभी मनमांहि॥१२२॥

शब्दार्थ—सालति है=पीड़ा देती है।नटसाल=तीरकी गांसी का वह अंश जो टूट कर अंगके भीतर रह जाती है। खुभी= लौंगके आकारका एक कर्णभूषण। खुभी=गड़ी है।

भावार्थ--(नायक वचन नायिका प्रति) तेरे कानकी खुभी मेरे मनमें कामके नेजेकी नोककी तरह गडगई है, सो भीतर टूटी हुई गांसीकी तरह पीड़ा देती है किसी प्रकार निकलती ही नहीं।

अलंकार-पूर्णोपमा। चतुर्थ चरण में " यमक "

(तरौना वर्णन)

दो०—अजौं तऱ्यौना ही रह्यो स्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास बेसर लह्यो बसि मुकुतन के संग॥१२३॥

शब्दार्थ—तय्योना=(१) कर्णफूल (२) तय्यो ना (न तरा)। स्रुति=(१) कान (२) वेद। इकअंग=अवाध्य रीतिसे, स्वयं अकेला ही। नाक=(१) नासा (२) स्वर्ग। वेसर=(१) नाक का भूषण (२) जो समताका न हो। मुकतन=(१) मोती (२) मुक्त लोग।

भावार्थ—अबाध्य रूपसे श्रुतिका सेवन करते रहनेपर भी यह कर्णफूल अब तक 'तय्योना' ही (के नाम से पुकारा जाता है) रहा-(दूसरा अर्थ यह कि जो कोई श्रुति अर्थात् वेदका सेवन करता है वह तर जाता है, परन्तु यह अभी तक तरा नहीं) देखो (मुक्ताजटित होनेके कारण) वेसरने नाकका वास पा लिया (जीवन-मुक्त-जनोंका सङ्ग करके तुच्छ व्यक्तिने स्वर्गका वास पाया)।

[विशेष]-इस दोहेमें बिहारीने कमाल किया है। शब्दोंके श्लेषार्थ बलसे बड़ा भारी काम लिया है। वास्तव में 'तरौना' वर्णन है। दूसरा अर्थ जो श्लेषसे भासता है वह अप्रस्तुत है।

अलंकार-श्लेषसे पुष्ट किया हुआ मुद्रालंकार।

सो०-मंगल बिंदु सुरङ्ग मुख ससि केसर आड़ गुरु।
इक नारी लहि संग रसमय किय लोचन जगत १२४

शब्दार्थ—बिंदु सुरंग=मस्तकपर लगी हुई रोरीकी बिन्दी। केसर आड़=केसरका आड़ा टीका। गुरु=बृहस्पति। नारी=(१) स्त्री (२) राशि। रस=(१) जल (२) शृंगार रस।

(विशेष)-ज्यौतिषके अनुसार यदि मङ्गल, चन्द्रमा और बृहस्पति वर्षाके नक्षत्रोंमें एक राशिपर एक पंक्तिमें आजायें तो जलयोग होता है। इसी सिद्धान्तको बिहारीने अपने सहज स्वभावानुसार इस सोरठामें दर्शाया है।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति।

भावार्थ—नायिकाका मुख चन्द्रमा है ही, उसके भालपर लगा हुआ रोरीका बिन्दु मंगल है और केसरका आड़ा टीका बृहस्पति है। इन तीनोंने एक राशि पाकर संसारके नेत्रोंको जलमय कर डाला (अर्थात देखनेसे दर्शकोंके नेत्रोंमें आनन्दके आंसू आते हैं और न देखनेसे शोकके)।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट किया हुआ सांग रूपक।

दो०—गोरी छिगुनी अरुन नख छला स्याम छवि देय।
लहत मुकुति रति छिनक ये नैन त्रिबेनी सेय॥१२५॥

शब्दार्थ—छिगुनी=कनिष्ठिका अँगुली। छला स्याम=लोहे का छल्ला। रति=अनुराग।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति।

भावार्थ—नायिकाकी गोरी छिगुनी पर लाल नख और काला (लोहेका) छल्ला बड़ी छवि देते है। ये मेरे नेत्र इस त्रिवेणी का एक क्षण मात्र सेवन करके प्रीति रूपी मुक्ति को प्राप्त करते हैं (देखकर अनुराग बढ़ता है)।

(विशेष)—कोई आभूषण नहीं, केवल एक लोहेका छल्ला पहननेसे नायिका इतनी सुन्दर मालूम होती है कि नायक उसपर आशक्त होता है अतः विच्छित्ति हाव है, यथा—
(तनक बनक हीमें जहां तरुणि महा छवि देत।)

अलंकार—रूपक।

दो०—तरिवन कनक कपोल दुति बिच बिचहीं जु बिकान।
लाल, लाल चमकत चुनी चौका चींन्ह समान॥१२६॥

शब्दार्थ—तरिवन=कर्णफूल। बिचही जु बिकान=बीचही में बिकगया, ठगा गया (सुधबुध भूल गई)। लाल=नायक।

चुनी=माणिकके टुकड़े। चौका=आगे के चार दांत (दो नीचे के दो ऊपरके जो हँसते समय खुल जाते हैं)। चौंध=चकाचौंध।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली, लाल (नायक) तो तेरे सोनहले कर्णफूल और गालोंकी चमकके बीचमें पड़कर सब सुध बुध भूल गये (बीचहो बिकान) अर्थात् तेरे मुखकी शोभाको भली प्रकार देख न सके, क्योंकि कर्णफूलमें जड़ी हुई लाल चुन्नियां और चारो दाँत चकाचौंधके समानचमकते हैं(अर्थात् देखने वालेके नेत्रों में चकाचौंध सा डाल देते हैं)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—सारी डारी नीलकी ओट अचूक चुकैं न।
मो मन-मृग कर बर गहै अहे अहेरी नैन॥ १२७॥

शब्दार्थ—डारी=(डाल) वह टट्टी जिसकी आटसे शिकारी लोग शिकार करते हैं। अचूक=जिससे कभी धोखा न हो, जिसका निशाना कभी खाली न जाय। कर बर=(करबल) हाथके बल (हाथसे)। अहे=आश्चर्य सूचक अव्यय।

(वचन)—नायक वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे प्यारी तेरे नेत्र बड़े विलक्षण और अचूक शिकारी हैं। ये कभी अपने शिकार को चूकते नहीं। नीली सारीकी टट्टीकी ओटमें मेरे मन रूपी मृगको हाथ ही से पकड़ लेते हैं।

अलंकार—सम अभेद रूपक।

दो०—तन भूषन अंजन दृगनि पगन महावर रंग।
नहिं सोभा को साज ये कहिबे ही को अंग॥१२८॥

शब्दार्थ—साज=सामग्री।

(विशेष)--नायिका की सहज शोभाका वर्णन । सखी वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—तनके भूषण, आंखोंका काजल और पैरोंका महावर, ये सब उसके लिये शोभाकी सामग्री नहीं हैं; ये तो कहने मात्रके लिये शोभाके अंग समझे जाते हैं (वह सहज ही ऐसी रूपवती है कि उसे इनकी आवश्यकता नहीं । ये वस्तुएँ उसकी सहज शोभामें लोप हो जाती हैं) ।

अलंकार—मीलित ।

दो०—पाय तरुनिकुच उच्चपद चिरमि ठग्यो सब गाँव ।
छुटे ठौर रहि है वहै जु है मोल छबि नाँव ॥१२९॥

शब्दार्थ—चिरमि=गुंजा घुंघुची । ठग्यो = धोखा दे रक्खा है ।

भावार्थ—हे गुंजा तू ने स्त्री के ऊँचे कुचों पर स्थान पाकर सब गाँवको धोखेमें डाल दिया है (नायिकाके हृदय परकी गुंजमाला सबको रत्नमाला सी भासती है) पर जब तेरा स्थान छूटेगा (उतार डाली जायगी) तब तेरा मोल तेरी छवि और तेरा नाम वही रह जायगा जो वास्तविक है ।

अलंकार—उल्लाससे परिपुष्ट अन्योक्ति (अप्रस्तुत प्रशंसा)

उल्लास—(और वस्तुके गुणन ते और होत गुणवान)

दो०—उर मानिक की उरवसी डटत घटत दृग दाग ।
झलकत बाहिर भरि मनो तिय हिय को अनुराग ॥१३०॥

शब्दार्थ—उरवसी = चौकी (हमेलकी) । डटत = देखते ही घटत = कम हो जाता है । दृग दाग = आँखोंकी जलन । अनुराग = प्रेम ।

(वचन)--सखी वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—उस लाडिली के हृदयकी माणिकजटित चौकी



देखते ही आँखें ठंढी हो जाती हैं--ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारा अनुराग जो उसके हृदयमें भरा हुआ है वह बाहर होकर झलक रहा है ।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

दो०—जरीकोर गोरे बदन बरी खरी छवि देख ॥
लसति मनो बिजुरी किये सारद ससि परिवेष ॥१३१॥

शब्दार्थ—जरीकोर = जरीकी किनारी । बरी = प्रज्वलित । सारद ससि = शरदपूर्णिमाका चंद्रमा । परिवेष = (सं०) चंद्रमाके इर्दगिर्दका मंडल जो वर्षामें कभी कभी दिखाई पड़ता है (जिसे साधारण लोग अथाई बैठना कहते हैं) ।

(बचन)—सखी बचन नायक प्रति ।

भावार्थ—उस लाड़िली के गोरे चेहरेपर, सारीमें टँकीहुई ज़रीकी किनारीसे उसकी खरी छवि और भी प्रज्वलित हो उठी है । उसे तुम देखो । ऐसी जान पड़तीहै मानो शरदपूर्णिमाके चन्द्रमाके चारो ओर बिजलीने मंडल (घेरा) बनायाहै ।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

दो०—देखत सोनजुही फिरति सोनजुहीसे अंग ।
दुति लपटन पट सेत हू करत बनौटी रंग ॥१३२॥

शब्दार्थ—लपट=लौ । बनौटी=कपासी ।

(विशेष)—नायिका सोनजुहीकी वाटिकामें घूम रहीहै, सखी नायकको वहीं लेजाना चाहतीहै । सखी वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—वह सोनजुहीके से अंगवाली (नायिका) सोनजुहीकी वाटिका देखती फिरती है । अपने शरीरकी दुतिकी लपटोंसे सफेद सारीको भी कपासी रंगकी बनारही है ।

अलंकार—तद्गुण ।



दो०—तीज परब सौतिन सजे भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे मुहँ करी वहै मरगजे चीर ॥१३३॥

शब्दार्थ—तीजपरब=तीजका त्यौहार (अक्षय तृतीया वा हरतालिकातीज)। मरगज=मलीन। मरगजेचीर=मलगजी सारी (मैलीसाड़ी)।

भावार्थ—तीजके त्योहारमें सब सौतोंने भूषण वस्त्रोंसे अपने २ शरीरको सुसज्जित किया मगर उस नायिकाने मलगजी साड़ीही पहनकर सबका मुख मलीन करदिया (अर्थात् अपनी स्वाभाविक शोभासे सबको मात करदिया)।

विशेष—ईर्षा संचारी विच्छित्ति हाव और वैवर्ण्य अनुभाव।

अलंकार—(१) प्रथमअसंगति (मलीन साड़ी नायिकाने पहनी और सौतें मलीन मुख हुईं। यथाः—कारण कहुं कारज कहूं देश कालको बीच)।

(२) चौथी विभावना (सौतिकी मलगजी साड़ी सौतिके मलिन मुख होनेका कारण नहीं, सो हुआ)।

दो०—पचरँगनग बेंदी बनी उठी जागि मुख जोति।
पहिरे चीर चुनौटिया चटक चौगुनी होति ॥१३४॥

शब्दार्थ—चीर चुनौटिया=कई रंगोसे रंगीहुई लहरियादार चूनरी। चटक=दमक।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—पांचरंगके नगोंसे जटित बेंदी जिस समय भाल पर लगाई गई उस समय मुखकी छबि जगमगा उठी। उसपर जब चुनवटकी साड़ी पहनी जातीहै तब उससेभी चौगुनी दमक हो जातीहै।

अलंकार—अनुगुण—(पहिलेको गुण आपनो बढै आनके संग।

दो०—बेंदी भाल तंबोलमुख सीस सिलसिलेवार।
दृग आंजे राजै खरी एही सहज सिंगार॥१३५॥

शब्दार्थ—तंबोल=पान। सिलसिले = फुलेलसे चिकनायेहुए। राजैखरी = अति शोभित होतीहै।

(वचन)—सखी बचन नायिका प्रति—(अधिक बनाव सिंगार करनेकी जरूरत नहीं)।

भावार्थ—भालपर बेंदी लगाये, मुखमें पान खाये, सिरके बालोंमें फुलेल लगाये और आंखोमें काजल लगायेहुए, केवल इन्हीं सहज सिंगारोंसे तू अत्यन्त शोभावती मालूम होतीहै (अधिक बनाव सजावट करनेकी आवश्यकता नहींहै)।

विशेष—यदि सखीका वचन नायक प्रति मानै तो उत्तरार्द्ध का यह अर्थ होगा कि "येही दोचार मामूली सिंगारोंसे वह खड़ी खड़ी शोभा देरहीहै" अर्थात् खड़ी तुम्हारी बाट जोहती है। इस दोहामें विच्छित्ति हावहै।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

(छविवर्णन)

दो०—हौं रीझी लखि रीझिहौ छविहि छबीले लाल।
सोनजुहीसी होति दुति मिलति मालती माल॥१३६॥

शब्दार्थ—छबीले=सुन्दर। मालती=एक सफेद पुष्प।

(वचन)—दूती बचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे छबीले लाल, उस नायिकाकी छवि देखकर मैं तो रीझ गई हूं और तुम भी अवश्य रीझोगे। मालतीकी माला उसकी दुतिसे मिलकर सोनजुही की सी हो जाती है।

अलंकार—तद्गुण।

अलंकार—समुच्चयोपमा ।

दो०—रहि न सक्यो कसकरि रह्यो बस करलीन्हो मार ।
भेदि दुसार कियो हियो तन-दुति भेदीसार ॥१४३॥

शब्दार्थ—मार = काम । दुसार = (दो + शाल = दोनों ओर छेद किया हुआ) वार पार छेद किया हुआ। भेदीसार = बरमा (बढ़ईका वह औज़ार जिससे वह काठमें, छेद करता है) ।

भावार्थ – खिंचकर रुका तो, पर रह न सका, अंतमें कामने मेरे मनको वशमें कर लिया (मैं आशक्त हुआ), उसकी छवि बरमा है, उसी बरमासे उसने मेरे हृदयको छेदकर वारपार कर दिया ।

अलंकार—रूपक ।

दो०—पहिरत ही गोरे गरे यों दौरी दुति लाल ।
मनो परसि पुलकित भई मौलसिरीकी माल ॥ १४४ ॥

(विशेष)—नायकने मौलसिरीकी माला सखी द्वारा नायिका के पास भेजी है । सखी माला पहना कर आई है और नायक प्रति नायिकाकी दशा वर्णन करती है । ('इसमें हर्ष संचारी और रोमांच सात्विक भाव है)

भावार्थ—हे लाल, तुम्हारी भेजी हुई मौलसिरीकी माला को गोरे गलेमें धारण करते ही उसके शरीर पर (हर्ष के कारण) ऐसी कान्ति छागई कि मानो वह तुम्हीको स्पर्श करके (आलिंगन करके) रोमांचित हुई हो (अर्थात तुम्हारी मालाके स्पर्श को तुम्हारे ही स्पर्श के समान समझ कर पुलकित हो गई)।

अलंकार—असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा ।

दो०—कहा कुमुद कह कौमुदी कितक आरसी जोति ।
जाकी उजराई लखे आंखि ऊजरी होति ॥ १४५ ॥




शब्दार्थ—कौमुदी = चांदनी। उजराई = निर्मलता। ऊजरी = बिमल।

(विशेष)—कई एक प्रतियोंमें 'कुमुद' के स्थान पर 'कुसुम' पाठ है। परंतु 'कुसुम' पीला वा लाल माना गया है और यहाँ श्वेतता और निर्मलताका वर्णन है। अतः 'कुमुद' ही होना चाहिये।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—पंचम प्रतीप।

दो०—कंचन तन घन बरन वर रह्यो रंग मिलि रंग।
जानी जात सुबास ही केसरि लाई अंग ॥ १४६ ॥

शब्दार्थ—घन = घना। सुबास = (स्ववास) अपनी बाससे अर्थात केसर कीसी गंधसे (क्योंकि पद्मिनी नायिकाओंके शरीरसे कमलकी बास आती है)। लाई = लगाई हुई।

भावार्थ—कंचन ऐसे शरीरके घने और श्रेष्ठ रंगमें केसरका रंग मिल जाता है। अंगमें लगी हुई केसर केवल अपनी गंधसे ही जानी जाती है (रंगसे नहीं)।

अलंकार—उन्मीलित।

दो०—अंग अंग नग जगमग दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाये हू रहै बड़ो उजेरो गेह ॥ १४७ ॥

शब्दार्थ-दीपसिखा=चिरागकीलौ। बढ़ाये हू=बुझाने पर भी।

(वचन)-सखी वचन नायक प्रति। नायिकाके रूपकी प्रशंसा।

भावार्थ—उसके अंग अंगमें आभूषणोंके रत्न जगमगाते हैं क्योंकि उसका शरीर दीपशिखाके समान है। अतः दिया बुझा देने पर भी घरमें बहुत उजेला रहता है।

अलंकार—द्वितीय चरणमें धर्मलुप्ता उपमा। पूर्ण दोहामें दूसरा 'पूर्वरूप' अलंकार है।

दो०—ह्वै कपूरमणिमय रही मिलि तनद्युति मुकुतालि।
छिन छिन खरी विचच्छनौ लखति छ्वायतिनु आलि १४८

शब्दार्थ—कपूरमणि = कहरुबा (एक पदार्थ जो चमकीला और पीले रंगका होता है। यह तृण को आकर्षित करता है) मुकुतालि = मोतियोंकी माला। खरी बिचच्छन = बड़ी चतुरा। तिनु = तृण। आलि = (आली) सखी।

(वचन) सखी वचन नायक प्रति। नायिकाके रंगकी प्रशंसा।

भावार्थ—मोतियोंकी माला उसके शरीरकी कान्तिसे मिलकर कहरुबा कीसी (पीतरंगकी) माला हो जाती है। तब बड़ी चतुरा सखी भी (अपना भ्रम निवारण करनेके लिये) प्रतिक्षण उसमें तृण छुवा छुवा कर जांचती है कि यह मोती की है वा कहरुबाकी (यदि कहरुबाकी होगी तो तिनका उसमें चिपक जायगा, मोतीकी होगी तो न चिपकैगा)।

अलंकार—तद्गुण और भ्रम।

दो०—खरी लसति गोरी गर धसति पानकी पीक।
मनो गुलूबंद लालकी लाल लाल द्युति लीक ॥१४९॥

शब्दार्थ—गोरी = गौरांगी नायिका। पीक = पानका रस। गुलुबंद = गलेमें बांधनेका आभूषण विशेष जिसे कंठी कहते हैं। लालकी = माणिककी। लीक = रेखा।

भावार्थ—उस गौरांगी नायिकाके गलेमें धँसती हुई पान की पीक बड़ी शोभा देती है। (उस पीककी ललाई बाहर ऐसी झलकती है कि) उसकी द्युतिकी लाल लाल लकीर ऐसी जान पड़ती है मानो गलेमें माणिककी कंठी बंधी हो।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—बाल छबीली तियनमें बैठी आपु छिपाय।
अरगट ही फानूस सी परगट परै लखाय॥ १५०॥

शब्दार्थ—आपु छिपाय=अपनेको छिपाकर (घूंघटमें मुँह छिपाकर)। अरगट=(आड़+गात्र) परदा अर्थात् घूंघट। फानूस=कांचकी हांड़ीके अंदर रक्खा हुआ दीपक। परगट=प्रत्यक्ष, भली प्रकार।

भावार्थ—वह छबीली नायिका बहुत सी स्त्रियोंके मध्यमें अपने चेहरेको घूंघट से छिपाकर बैठी, तौभी घूंघटके भीतर ही से उसकी छबि फानूसके अंदरवाले दीपककी तरह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगी।

अलंकार—पूर्णोपमासे पुष्ट विशेषोक्ति।

नोट-इस दोहेके अर्थमें अन्य टीकाकारोंसे हमारा मत-भेद है। वे 'अरगट' का अर्थ 'अलग' लिखते हैं। समझदार पाठक जरा सोचें विचारेंगे तो हमारे अर्थमें विलक्षण चमत्कार दिखाई देगा।

दो०—दीठि न परत समान दुति कनक कनकसे गात।
भूषन कर करकस लगत परस पिछाने जात॥१५१॥

शब्दार्थ—कनक=सोना। करकस=कठोर। पिछाने जात=पहँचाने जाते हैं।

भावार्थ—सोने सरीखे शरीरमें सोनेके भूषण देख नहीं पड़ते क्योंकि दोनोंकी एक सी दुति है। छूनेसे जब हाथमें कठोर लगते हैं तब पहचाने जाते हैं कि ये भूषण हैं।

अलंकार—उन्मीलित।



दो०—करत मलिन आछी छबिहिं हरत जु सहज विकास।
अंगराग अंगन लग्यो ज्यों आरसी उसास ॥ १५२ ॥

शब्दार्थ—आछी = अच्छी। विकास = चमक। अंगराग = केसर चंदनादि लेपन। आरसी = दर्पण। उसास = मुखकी भाफ।

(वचन)—सखी बचन नायक प्रति। नयिकाकी कान्तिकी प्रशंसा।

भावार्थ—केसर चंदन कस्तूरी इत्यादिका अंगलेप उसकी (नायिकाकी) छविको मलीन करके स्वाभाविक कान्तिको नष्ट कर देता है जैसे दर्पण पर मुखकी भाफ पड़नेसे उसकी कान्ति मारी जाती है।

अलंकार—उदाहरण (देखो अलंकार मंजूषा पृष्ठ १०७, १०८)।

दो०—अंग अंग प्रतिबिंब परि दरपनसे सब गात।
दुहरे तिहरे चौहरे भूषन जाने जात ॥ १५३ ॥

शब्दार्थ—प्रतिबिंब = अक्स, छाया। गात = शरीर।

(वचन)—सखी बचन नायक प्रति। नायिकाके शरीरकी कान्तिकी प्रशंसा।

भावार्थ—उस नायिकाके सब अंग दर्पण समान स्वच्छ प्रकाशमान हैं अतः एक एक भूषणका कई एक अंगों पर प्रतिबिंब पड़नेसे एक एक भूषण दोहरा तिहरा और चौहरा तक मालूम पड़ता है।

अलंकार—धर्मलुप्ता उपमा (दर्पनसे गात)।

दो०—अंग अंग छबिकी लपट उपटति जाति अछेह।
खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह ॥ १५४ ॥

शब्दार्थ—लपट = प्रकाश, आभा। उपटतिजात = उभरती

जाती है। अछेह = अनन्त, बहुत। खरीपातरी = अति पतली, कृशांगी। भरी सी = पीनांगी (मोटी ताजी)।

(वचन) सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—उस नायिकाके प्रति अंगमें छबिकी आभा बहुत अधिक उभरती आती है (छबिके प्रकाशका भराव हो रहा है), इसी कारण अत्यंत पतली होने परभी उसकी देह मोटी ताजी जान पड़ती है।

अलंकार—(१) काव्यलिंग (२) तीसरी विभावना (३) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—रंच न लखियत पहिरिये कंचनसे तन बाल।
कुंभिलाने जानी परै उर चंपककी माल॥ १५५॥

शब्दार्थ तथा भावार्थ सरल हैं।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।

अलंकार—उन्मीलित।

(सुकुमारता वर्णन)

दो०—भूषन भार सँभारिहै क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पाय न परत धर सोभा ही के भार॥ १५६॥

शब्दार्थ—धर = (धरा) पृथ्वी। भार=बोझा।

(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली तेरा यह सुकुमार शरीर भूषणोंका भार कैसे सँभालेगा जब शोभा ही के भारसे तेरा पैर पृथ्वी पर सीधा नहीं पड़ता।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

दो०—न जक धरत हरि हिय धरत नाजुक कमला बाल।
भजत भार भयभीत ह्वै घन चंदन वनमाल॥ १५७॥

दो०—करत मलिन आछी छविहिं हरत जु सहज बिकास।
अंगराग अंगन लग्यो ज्यों आरसी उसास ॥ १५२॥

शब्दार्थ—आछी = अच्छी। विकास = चमक। अंगराग= केसर चंदनादि लेपन। आरसी=दर्पण। उसास=मुखकी भाफ।

(वचन)—सखी बचन नायक प्रति। नयिकाकी कान्ति की प्रशंसा।

भावार्थ—केसर चंदन कस्तूरी इत्यादिक अंगलेप उसकी (नायिकाकी) छविको मलीन करके स्वाभाविक कान्तिको नष्ट कर देता है जैसे दर्पण पर मुखकी भाफ पड़नेसे उसकी कान्ति मारी जाती है।

अलंकार—उदाहरण (देखो अलंकार मंजूषा पृष्ठ १०७, १०८)।

दो०—अंग अंग प्रतिबिंब परि दरपनसे सब गात।
दुहरे तिहरे चौहरे भूषन जाने जात ॥ १५३ ॥

शब्दार्थ—प्रतिबिंब = अक्स, छाया। गात=शरीर।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति। नायिकाके शरीरकी कान्तिकी प्रशंसा।

भावार्थ—उस नायिकाके सब अंग दर्पण समान स्वच्छ प्रकाशमान हैं अतः एक एक भूषणका कई एक अंगों पर प्रतिबिंब पड़नेसे एक एक भूषण दोहरा तिहरा और चौहरा तक मालूम पड़ता है।

अलंकार—धर्मलुप्ता उपमा (दर्पनसे गात)।

दो०—अंग अंग छविकी लपट उपटति जाति अछेह।
खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह ॥ १५४ ॥

शब्दार्थ—लपट = प्रकाश, आभा। उपटतिजात = उभरती

जाती है। अछेह = अनन्त, बहुत। खरीपातरी = अति पतली, कृशांगी। भरी सी = पीनांगी (मोटी ताजी)।

(वचन) सखी वचन नायक प्रति।

भावार्थ—उस नायिकाके प्रति अंगमें छविकी आभा बहुत अधिक उभरती आती है (छविके प्रकाशका भराव हो रहा है), इसी कारण अत्यंत पतली होने परभी उसकी देह मोटी ताजी जान पड़ती है।

अलकार—(१) काव्यलिंग (२) तीसरी विभावना (३) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—रंच न लखियत पहिरिये कंचनसे तन बाल।
कुंभिलाने जानी परै उर चंपकी माल॥ १५५॥

शब्दार्थ तथा भावार्थ सरल हैं।
(वचन)—सखी वचन नायक प्रति।
अलंकार—उन्मीलित।

(सुकुमारता वर्णन)

दो०—भूषन भार सँभारिहै क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पाय न परत धर सोभा ही के भार॥ १५६॥

शब्दार्थ—धर = (धरा) पृथ्वी। भार=बोझा।
(वचन)—सखी वचन नायिका प्रति।

भावार्थ— हे लाड़िली तेरा यह सुकुमार शरीर भूषणोंका भार कैसे सँभालेगा जब शोभा ही के भारसे तेरा पैर पृथ्वी पर सीधा नहीं पड़ता।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

दो०—न जक धरत हरि हिय धरत नाजुक कमला बाल।
भजत भार भयभीत ह्वै धन चंदन बनमाल॥ १५७॥

(विशेष)—इस दोहाके अनेक अर्थ हो सकते हैं, कारण यह है कि 'जक' शब्द अनेकार्थ वाची है और 'भजत' 'भार' 'घन' 'वन' शब्दभी द्व्यर्थक त्र्यर्थक हैं। पहला और मुख्य अर्थ वही है जिसमें नायिकाकी उत्कृष्ट सुकुमारता प्रमाणित हो।

पहला अर्थ

शब्दार्थ—जक=डर। भार=बोझा। घन=घनसार (कपूर)

(अन्वय)—हरि (कृष्ण) नाजुक कमलावत बाल हिय धरत जक न धरत। भार-भय भीत ह्वै घनसार, चंदन तथा बनमाल तें भजत (भागत)।

भावार्थ—(सखी वचन सखी प्रति। कृष्णके प्रेमकी प्रशंसा) हे सखी देख, श्रीकृष्ण उस सुकुमार लक्ष्मी सरीखी बालाको अपने हृदयमें बसानेसे जराभी नहीं डरते (कि ऐसा करनेसे सुख और शोभाकी सामग्री छूट जायगी) वरन् इस बातसे डरकर कि ऐसा न हो कि हृदयमें बसी हुई प्यारी पर बोझा पड़े वे (कृष्ण) कपूरचंदनादिके लेप तथा बनमाला धारण करनेसे भागते हैं (नही धारण करते)।

(विशेष)—नायक नायिकाको इतनी सुकुमार समझता है कि हृदयमें बसी हुई उसकी कल्पनामय मूर्ति पर चंदन मालादिका बोझ डालना उचित नहीं समझता। यह सुकुमारता की बहुत ऊंची कल्पना है। एक उर्दू शायरने भी ऐसा ही कहा है:-

देखिये तो किस तरह नीले हुए हैं उनके गाल।
हमने कल्ह बोसा लिया था ख्वाबमें तसवीरका॥

दूसरा अर्थ।

शब्दार्थ—जक=कल, चैन। घन=कपूर। वन=(जल)




गुलाबजल। माल=समूह। भार=भाड़ (अत्यंत गर्म वस्तु)

(अन्वय)—हे हरि, वह नाज़ुक कमला बाल जक न धरत। घन चंदन वनमाल हिये धरत भयभीत ह्वै भार सम भजत।

भावार्थ—(विरह निवेदन—सखी वचन नायक प्रति)—हे कृष्ण तुम्हारे विरहमें उसकी यह दशा है कि वह नाज़ुक कमला सी बाला चैन नहीं पाती। जब हम कपूर, चंदन वा गुलाबजलादिसे शीतल उपचार करना चाहती हैं तब वह इन वस्तुओंको भाड़ सम गर्म समझ कर इनसे भागती है (नहीं लगाने देती अर्थात सब सुखकर उपाय उसे दुखदायी प्रतीत होते हैं)।

तीसरा अर्थ।

दूसरे अर्थकी तरह थोड़े हेर फेरसे सखी द्वारा नायक विरह निवेदन नायिका प्रति भी हो सकता है। इस अर्थमें 'नाज़ुक कमलाबाल' सम्बोधन कारकमें होगा।

अलंकार—दूसरे और तीसरे अर्थमें 'तृतीय विषम' होगा

चौथा अर्थ।

(अन्वय)—जे लोग नाज़ुक कमलाबाल सहित हरि हिये धरत ते काहू तें जक न धरत, घन चंदन वनमालके भार तें भयभीत ह्वै भजत।

भावार्थ—जो लोग लक्ष्मी सहित नारायणको हृदयमें धारण करते हैं वे किसीसे डरते नहीं, क्योंकि वे कपूर चंदन मालादि (भोग सामग्री) को भारवत समझकर उससे भागते हैं (अर्थात उसकी परवाह नहीं करते)।

पांचवां अर्थ।

(अन्वय)—जे लोग हरि हियधरत ते नाज़ुक (नाज़ुक

मिज़ाज) कमलावाल (लक्ष्मी वाले अर्थात धनवान लोगों) तें जक न धरत। घनचंदन बनमाल तें भयभीत ह्वै भारहिं भजत।

भावार्थ--जो लोग हरिको अपने हृदयमें धारण करते हैं वे नाज़ुक मिज़ाज धनवानोंका डर नहीं मानते (उनको कुछ परवाह नहीं करते-उनकी प्रशंसा करके उनको खुश करनेकी आकांक्षा नहीं रखते), कपूर चंदन मालादि सुख और भोग की सामग्रीसे डरकर वे लोग भाड़को भजते हैं (अर्थात् पंचाग्नि तापते हैं)।

छठां अर्थ।

शब्दार्थ--जक=कंजूस, सूम (जो धन जोड़नेकी इच्छासे भोग न कर सके)।

भावार्थ--जो व्यक्ति नाजुक कमलावाल (लक्ष्मी, धन) को हृदयमें धारण करते हैं (अतिप्यार करते हैं) वे जक (अर्थात् सूम लोग) हरिको नहीं धरते (अर्थात् ईश्वरसे विमुख रहते हैं)। वे लोग भोग सामग्री से भयभीतसे रहते हैं (खापी नहीं सकते) केवल उसके भार ही को भजते हैं (अर्थात उसको भारके समान सदा सिरपर लादे रहते हैं)।

(नोट)-इस दोहामें धीराधीरा, अन्यसंभोगदुःखिता खंडिता, मानिनी इत्यादि नायिकायें मानकर विद्वान लोग अनेक प्रकारके अर्थ करते हैं। कोई २० प्रकारके अर्थ हमने इसके सुने हैं, पर विस्तार भयसे यहां केवल इतने ही लिखे हैं। इनसे लोग समझ सकेंगे कि हिन्दी भाषाके शब्दोंमें कितनी शक्ति है।

दो०-अरुन बरन तरुनी चरन अँगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरँग रँगसो मनो चपि बिछुअन के भार ॥१२८॥

शब्दार्थ—अरुन = लाल। वरन = रंग। सुरंगरंग = लालरंग

भावार्थ—नायिकाके चरणके तलवे लाल हैं और अँगुलियां अति कोमल हैं। मानो बिछियाओंके भारसे दबनेके कारण उन कोमल अंगुलियोंसे लालरंग निचुड़ता सा है-(बिछियाओं के भारसे दबना और दबनाभी इतना कि रंग निकल आवै सुकुमारताकी पराकाष्ठा है)।

अलकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा।

दो०—छाले परिबेंक डरनि सकै न हाथ छुवाय।
झिझकति हिये गुलाबके झँवां झँवावत पाय॥ १५९॥

शब्दार्थ—छाला = फफोला। झिझकना = डरना। झँवाँ = (झाँवाँ) मिट्टीकी बनी हुई एक वस्तु विशेष जिससे स्त्रियां पैरके तलवे साफ करती हैं। झँवाना = झाँवाँसे साफ कराना (दासी द्वारा)।

भावार्थ—सखी वचन नायक प्रति, सुकुमारताकी प्रशंसा) वह नायिका इतनी सुकुमार है कि उसके पैर धोते समय नाइन (वा दासी) फफोले पड़जानेके डरसे अपना हाथ तलवोंमें नहीं छुवा सकती। (हाथसे मलकर तलवा धोनेकी तो बात क्या) गुलाबके झाँवाँसे पैरका तलवा रगड़वाते समय वह हृदयमें शंकित होती है (कि कहीं क्षत न हो जायँ)

(विशेष)—जिस नायिकाके पैरके तलवे साफ करनेके लिये गुलाबपुष्प झाँवाँका कामदे और नायिका उसकी कठो-रता से भी शंकित हो, उसकी सुकुमारता कैसी होगी यह कल्पना की बात है।

अलकार—संबंधातिशयोक्ति।



वह प्यालेको ओठमें और नेत्रोंको प्रियाके मुखमें लगाये हुए ज्योंका त्यों रह गया।

(विशेष)—यहां अभिलाष संचारी, स्तंभ सात्विक भाव है। नायक नायिका प्रत्यक्ष आलंबन, रति स्थायी हैं। शृंगारकी पूर्ण सामग्री मौजूद है।

अलंकार—पहली तुल्ययोगिता।

दो०—दुसह सौति सालै सुहिय गनति न नाह बिवाह।
धरे रूप गुन को गरब फिरै अछेह उछाह ॥१६४॥

शब्दार्थ—सालै=दुख देगी। गनति न=ध्यान में नही लाती। अछेह=अनन्त, बहुत। उछाह = आनन्द।

(वचन)—सखी बचन सखी प्रति। नायक के दूसरे विवाह पर नायिका की बेपरवाही का वर्णन। नायिका रूप गुणगर्विता है।

भावार्थ—सवति सदा दुःसह होती है, हृदय में सालती है, परन्तु यह नायिका अपने रूप और गुण का गर्व किये हुए बड़े आनन्द से फिरती है और नायक के दूसरे विवाह की कुछ परवाह नहीं करती (क्योंकि यह जानती है कि मैं इतनी रूपवती और गुणवती हूं कि कोई दूसरी स्त्री मेरे मुकाबिले में पति को पसन्द ही न आवैगी)।

अलकार—तीसरी बिभावना।

दो०—लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे क्रूर ॥१६५॥

शब्दार्थ—सबी = (फा० शबीह) चित्र, तसवीर। गरूर= मगरूर, घमण्डी। चितेरा=चित्रकार। क्रूर = बेवकूफ।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति। नायिका के रूप की प्रशंसा।

भावार्थ—(मैं उस नायिका से आपका प्रेम कराना चाहती

हूं) जिसकी तसवीर बनाने के लिये अहंकार युक्त हो हो चित्रित करने बैठ कर संसार के कितने मगरूर चित्रकार बेवकूफ नही बने (बहुत चित्रकार बेवकूफ बन चुके हैं)।

(विशेष)–चित्रकारों से चित्र न बन सकने का कारण नायिका का रूपाधिक्य है। उसका रूप देखकर चित्रकारों में से किसी को स्तंभ होता, तो हाथ ही रुक जाता, किसी को कंप होता, तो चित्ररेखायें अंड बंड हो जातीं, किसी को स्वेद होता तो चित्र के रंगों पर टपक कर उन्हें फीका कर देता इत्यादि। अथवा बयसन्धि मुगधा नायिका है अतः उसका रूप प्रतिक्षण बदलता और बढ़ता है। चित्र बना कर सर्वतोभाव रूप ठीक करके पुनः असली नायिका से मिलान करने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में (दो चार मिनट में) चित्र और असली नायिका के रूपछटा, यौवनोत्थान प्रत्यंगपुष्टि इत्यादि में भेद पड़ जाता है। अतः चित्र ठीक नहीं होता।

अलंकार–वक्रोक्ति तथा विशेषोक्ति–(चतुर चितेरे होने पर भी चित्र न बना)।

सो०–तो तन अवधि अनूप, रूप लग्यो सब जगत को।
मो दृग लागे रूप, दृगन लगी अति चटपटी ॥१९९॥

शब्दार्थ–अवधि अनूप=अनूपता की सीमा। लग्यो = खर्च हुआ है, लगा है। लागे=आशक्त हैं। चटपटी=आकुलता, बेचैनी।

(वचन)—नायक वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे प्रिया, तेरा तन रूपकी अनूपता की सीमा है (अर्थात् अनुपम रूपकी हद है, इससे आगे रूपकी अनूपता है ई नहीं)। तेरे तन के बनाने में ब्रह्मा ने सब संसार भरका रूप लगा दिया है (खर्च कर डाला), अतः मेरे नेत्र तेरे रूप

पर लगे (आशक्त हुए) और बेचैनी ने आंखों में डेरा डाला।

(विशेष)—इस दोहे में "लगना" क्रिया तीन बार आई है। तीनों जगह अर्थ भिन्न है।

अलकार—माला दीपक।

(हाव वर्णन)

दो०—त्रिबली नाभि दिखाय कै सिर ढँकि सकुच समाहि।
अली अली की ओट ह्वै चली भली बिधि चाहि।१६७।

शब्दार्थ—त्रिबली = नाभि के ऊपर पड़नेवाली तीन रेखायें जिन्हें कहीं कहीं 'लोट' भी कहते हैं। सकुच समाहि= संकोच में समा कर (लज्जित होकर)। चाहि=देखकर।

(वचन)—सखी का वचन सखी प्रति। नायिका का दशा-वर्णन।

भावार्थ—त्रिबली सहित नाभि को दिखला कर, फिर बनावटी लज्जा में समा कर, सिर को ढँक कर, वह अली (नायिका) सखी की ओट में होकर नायक को भली प्रकार देख कर चल दी।

(हाव की परिभाषा)-

होहि जो काम बिकार ते दम्पति के तन आय।
चेष्टा विविध प्रकार की ते कहिये सब हाय॥

अलकार—अनुप्रास और स्वभावोक्ति।

दो०—देख्यो अनदेख्यो कियो अँग अँग सबै दिखाय।
पैठति सी तन में सकुचि बैठी चितहिं लजाय॥१६८॥

भावार्थ—नायक को देख कर भी अनदेखा सा करके, विविध चेष्टाओं द्वारा अपने सब अंग उसे दिखा दिये। फिर



तन में पैठती सी (नायक के मन में घुसती सी) चित्त में लज्जित होकर बैठ गई (अर्थात् उसका सकुच और लज्जा से बैठ जाना ही मानो नायक के मनमें पैठ जाना हो गया-ये अदायें देख कर नायक आशक्त हो गया)।

अलंकार-स्वभावोक्ति। चेष्टाओं के मिस से नायक के चित्त में अपना अनुराग पैदा कर देना कार्य साधन हुआ अतः पर्यायोक्ति भी।

दो०—बिहँसि बुलाय बिलोकि इत प्रौढ़ तिया रसघूमि।
पुलकि पसीजति पूत को पिय चूम्यो मुख चूमि१६९

शब्दार्थ—प्रौढ़=प्रौढ़ा (पूर्ण युवती)। रसघूमि=प्रेम में मस्त होकर।

भावार्थ—(सखी वचन सखी प्रति) वह प्रौढ़ा (मदान्धा प्रौढ़ा) अनुराग में मस्त होकर, हँस कर अपने निकट बोला कर और नायक की ओर देखकर, नायक का चूमा हुआ सवतिपुत्र का मुख चूम कर पुलकती और पसीजती है।

(विशेष)—विहंसना और नायक की ओर देखना कायिक अनुभाव। पुलकना, पसीजना, सात्विक भाव, हर्ष संचारी भाव, तिय, पिय आलंबन विभाव, पुत्र उद्दीपन विभाव: 'रस-घूमि' स्थायी भाव स्पष्ट हैं अतः इस दोहे में शृंगार रस की सामग्री लबालब भरी है।

अलंकार—दूसरी असंगति-(और ठौर करनीय जो करें और ही ठौर) चूमना चाहिये था पति का मुख, सो उस मुख से स्पर्शित पुत्र का मुख चूम कर उतना ही आनन्द माना।

दो०—रहौ गुही बेनी लख्यौ गुहिबे को त्यौनार।
लागे नीर चुचान ये नीठि सुखाये बार॥१७०॥

शब्दार्थ–रहौ=ठहरो। गुही वेनी=तुम वेणी गूंथ चुके (तुमसे न गुही जायगी)। त्यौनार=ढंग, चतुराई। चुचान=चुचुआन। नीठि=मुशकिल से।

(बचन)—स्वाधीन पतिका नायिकाका बचन नायक प्रति-(नायक बेणी गूंथ रहा है) ।

भावार्थ—ठहरो (रहने दो) आप वेणी गूंथ चुके (अर्थात् तुमसे वेणी न गुही जायगी) तुम्हारे गुंथनेका ढंग देख लिया। जिन बालों को मैंने मुशकिल से सुखाया था उनमें पानी चुचुआने लगा।

(विशेष)-स्पर्श से दम्पति को स्वेद सात्विक भाव हुआ है। गर्व संचारी भाव है।

अलकार—पंचम बिभावना-(सूखे बालों से पानी चुचुवाने लगा) "वर्णत हेतु विरुद्ध ते उपेजत है जहँ काज"। व्याजोक्ति।

(स्वकीया)

दो०-सेद सलिल रोमांच कुस गहि दुलही अरु नाथ।
हियो दियो सँग हाथ के हँथलेवा ही हाथ ॥ १७१ ॥

शब्दार्थ–स्वेद = पसीना। सलिल=पानी। नाथ=पति। हँथलेवा=बिवाह समय का पाणिग्रहण। सँग हाथ के=अपने हाथ के साथ। हाथ=दूसरे के हाथ में।

(विशेष)-विवाह के समय नायक नायिका दोनों को स्वेद और रोमांच भाव हुए हैं।

भावार्थ–पसीने का पानी और उठे हुए रोंगटों के कुश लेकर वर वधू दोनों ने पाणिग्रहण के समय अपने हाथ के साथ ही दूसरे हाथ से हृदय भी संकल्प कर दिया।

(विशेष)-हियो दियो स्थायी, दुलही और नाथ आलंबन,

स्वेद और रोमांच सात्विक भाव (अनुभाव), हर्ष संचारी, शृंगार रस की भरपूर सामग्री मौजूद है।

अलंकार—रूपक।

दो०—मानहु मुख दिखरावनी दुलहिनि करि अनुराग।
सासु सदन मन ललन हू सौतिन दियो सोहाग ॥१७२॥

शब्दार्थ—मुख दिखरावनी=वधू जब पतिगृह आती है तब एक रीति होती है। सब लोग उसका मुँह देखते हैं और उसे कुछ भेंट देते हैं। ललन=नायक। सौतिन=सवतें (सपत्नियां)। सोहाग =(सौभाग्य) नायक का प्रेम।

भावार्थ—मानो मुख दिखरावनी की रीति में नव वधू पर प्रेम करके सास ने घर, नायक ने निज मन और सौतियों ने अपना सोहाग उसे दे दिया।

अलंकार—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा। तुल्ययोगिता।

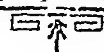
(नवोढ़ा)

दो०—निरखि नवोढा नारि तन छुटत लरिकई लेस।
भौ प्यारो पीतम तियन मनौ चलत परदेस ॥ १७३ ॥

शब्दार्थ—नवोढ़ा=नववयस्का, नवयुवती। लेस=संबन्ध, पौरा। भौ = हुआ। पीतम=नायक। तियन = सपत्नियों को।

भावार्थ—नववयस्का नायिका के शरीर से लड़कपन का अवशिष्ट भाग जाते हुए देखकर अन्य सपत्नियों के चित्त में नायक इतना प्यारा हो गया मानो वह विदेश-गमन किया चाहता है। (इसमें शंका संचारी भाव है)।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा।



(विश्रब्ध नवोढ़ा)

दो०—ढीठो दै बोलति हँसति प्रौढ़-बिलास अपौढ़ ।
त्यौं त्यौं चलत न पिय नयन छकये छकी नवोढ़॥१७४।

शब्दार्थ—ढीठो दै=ढिठाई करके। प्रौढ़-बिलास=प्रौढ़ा के बिलास कीसी बातें। अपौढ़=जो पूर्ण वयस्का नहीं है। छकये=मतवाले कर दिये हैं। छकी नवोढ़=मदमस्त नवोढ़ा नायिका।

(बचन)—सखी बचन सखी प्रति।

भावार्थ—ज्यों ज्यों वह अपौढ़ (नवोढ़ा) नायिका ढिठाई करके हँसती है और नायक से प्रौढ़ा के विलास कीसी बातें करती है, त्यों त्यों नायक के नेत्र उसकी ओर से चलायमान नहीं होते मानो उस मदमस्त नवोढ़ा ने नायक के नेत्रों को मद से छका दिया है।

(विशेष)—स्तंभ भाव, विलास हाव, हर्ष संचारी।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

(परकीया)

१ दो०—सनि कज्जल चख झख लगन उपज्यो सुदिन सनेह।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेस सब देह॥१७५॥

शब्दार्थ—सनि=(शनि) शनिश्चर ग्रह। चख=(चक्षु) नेत्र। झख लगन=मीनराशि। सुदिन=अच्छी साइत में। भोगवै=भोग करते हो। सुदेस=(१) सुन्दर (२) सुंदर देश।

(विशेष)—ज्योतिष शास्त्रानुसार मीन के शनिश्चर यदि दशम स्थान में पड़ें तो राज्य योग होता है।

वचन—दूती बचन नायिका प्रति। संघट्टन उद्देश्य।

भावार्थ—तेरे नेत्र रूपी मीन लग्न में कज्जल रूपी शनि पड़ा ही है और शुभ साइत में नायक से स्नेह पैदा ही हो गया है, तो अब समस्त देह रूपी सुन्दर देश को पाकर राजा की तरह क्यों नहीं भोगती।

अलंकार—सम अभेद रूपक।

दो०—चितई ललचौहैं चखनि डटि घूँघट पट माँह।
छल सों चली छुवाय कै छिनक छबीली छाँह ॥१७६॥

शब्दार्थ—ललचौहैं=लालच भरे। डटि=खूबअच्छीतरहसे।

(वचन)—नायक बचन सखी प्रति—नायिका क्रिया विदग्धा।

भावार्थ—(हे सखी वह नायिका बड़ी चतुरा है) पहले तो खूब अच्छी तरह से लालच भरे नेत्रों से उसने मुझे घूंघट के भीतर ही से देखा और फिर बड़े छल से एक क्षण मात्र के लिये मेरी छाया से अपनी छाया को छुला कर चली गई (यह इशारा करगई कि छाया की तरह आपका अंगस्पर्श चाहती हूं)।

अलंकार—युक्ति। यथाः—

मर्म छिपावन हेत वा मर्म जनावन हेत।
करैं क्रिया कछु युक्ति तेहिं भाषत सुकवि सचेत॥

(अनुराग वर्णन)

दो०—कीने हू कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौन।
भो मन मोहन रूप मिलि पानी में को लौन ॥१७७॥

शब्दार्थ—कहि=कहो। काढ़ै=निकालै।

(वचन)—नायिका बचन सखी प्रति।

भावार्थ—करोर यत्न करने पर भी, कहो, अब कौन उसे

निकाल सकता है। श्रीकृष्णके रूपमें मिलकर अब तो मेरा मन पानीका नमक हो गया (अर्थात् जैसे पानीमें घुला हुआ नमक निकल नहीं सकता)।

अलंकार-दृष्टान्त।

दो०—नेह न नैननि को कछू उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाय ॥१७८॥

शब्दार्थ—नेह = प्रेम। बलाय = रोग।

(वचन)-नायिका वचन सखी प्रति।

(विशेष)—वितर्क संचारी भाव है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—विशेषोक्ति से परिपुष्ट हेत्वपह्नुति।

दो०—छला छबीले लाल को नवल नेह लहि नारि।
चूमति चाहति लाय उर पहिरति धरति उतारि॥१७९॥

शब्दार्थ-नवलनेह=नवीन प्रेम में (प्रेमारंभ में)। लहि= पाकर। चाहति=देखती है।

भावार्थ-सरल है। (इसमें परकीया प्रेम गर्विता नायिका है)।

(वचन)-सखीका सखी प्रति-(नायिका की दशाका वर्णन)।

(विशेष)—चूमना, और पहिरना अनुभाव। लाल और नारि आलंबन। उतारि धरतिसे शंका संचारी भाव। नेह स्थायी। शृंगार रसकी पूर्ण सामग्री।

अलंकार—स्वभावोक्ति अथवा कारक दीपक।

दो०--थाकी जतन अनेक करि नेकु न छांड़ति गैल।
करी खरी दुबरी सुलगि तेरी चाह चुरैल ॥-१८०॥

भावार्थ—मैं अनेक यत्न करके थक गई मगर तेरी चाह

उसकी राहको तनक भी नहीं छोड़ती (अर्थात साथ ही लगी फिरती है)। तेरी चाहरूपी चुड़ैल ने उसके लगकर उसे अत्यंत दुबली बना डाला है।

(वचन)—नायिका की दूती का वचन नायक प्रति। संघट्टन उद्देश्य।

अलंकार—रूपक।

(प्रत्यक्ष दर्शन)

दो०—उन हरकी हँसिकै इतै इन सौंपी मुसकाय।
नैन मिलत मन मिलि गये दोऊ मिलवत गाय ॥१८१॥

(विशेष)—श्री कृष्ण गोधन लिये रहावन में हैं। राधिका जी अपनी गाय रहावन में छोड़ने गई हैं। उस समय का दृश्य इस दोहा में वर्णित है।

(वचन)—सखी प्रति सखी वचन—नायिका के हृदय में अनुराग उत्पन्न करानेवाली घटना का वर्णन।

शब्दार्थ—उन=श्री कृष्ण (नायक)। हरकी=हटकी, रहावन में मिलाने से रोका। इतै=इस ओर। इन=श्री राधिका जी। सौंपी=सिपुर्द की (चरा लाने के लिये)। मन मिलि गये दोऊ=दोनों के चित्त में परस्पर अनुराग पैदा हो गया। गाय मिलवत=गाय को रहावन में छोड़ते समय।

भावार्थ—उन्होंने हँसकर राधिका जी की गाय को रहावन में मिलाने से रोका (यह हमारी गाय नहीं है, हमारी रहावन में क्यों मिलाती हो), इधर इन्होंने (राधिका ने) मुसकुराकर गाय उन्हें सौंपी (यह गाय हमारी है, तुम चरा लाओ, हम चराई देंगी)। इस प्रकार नेत्र मिलते ही इस गो-सम्मिलनी में दोनों के मनभी मिल गये (प्रेम पैदा हो गया)।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति—नैन मिलते ही मन मिल गया।

दो०—फेरु कछुक करि पौंरि तें फिरि चितई मुसुक्याय।
आई जामन लेन तिय नेहै गई जमाय॥ १८२॥

शब्दार्थ—फेरु = मिस, बहाना। पौंरि=बरोठा, दहलीज़। जामन=वह थोड़ा सा खट्टा दही जिसे दूध में डालकर दही जमाया जाता है।

(वचन)—नायक वचन सखी वा दूती प्रति।

शब्दार्थ—कुछ मिस करके बरोठे से लौट कर मुसकुराकर मेरी ओर देखा। वह आई तो थी जामन लेने, परंतु इस चेष्टा से मेरे चित्त में अपना प्रेम स्थापित कर गई।

अलंकार—पर्यायोक्ति—(मिसकरि कार्य साधन)।
(अथवा) परिवृत्त—(जामन ले गई, नेह दे गई)

दो०—या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जल होय॥१८३॥

शब्दार्थ—अनुरागी=प्रेमी। गति=दशा। श्याम रंग=(१) काला रंग, (२) कृष्ण प्रेम। उज्जल=(१) निर्मल, स्वच्छ (२) शृंगारमय, प्रेममय।

(विशेष)—इस दोहे का अर्थ शृंगार के अलावा शान्त रस में भी लगता है।

शान्त का भावार्थ—इस अनुरागी चित्त की दशा को कोई समझता नहीं। यह ज्यों ज्यों कृष्ण के रंग में डूबता है (उनके श्याम रूप का ध्यान करता है) त्यों त्यों निर्मल होता है।

शृंगार का भावार्थ—(नायिका वचन सखी प्रति) हे सखी इस मेरे अनुरागी चित की दशा को कोई समझता नहीं।





ज्यों ज्यों यह चित्त कृष्ण के प्रेम में लीन होता है त्यों त्यों (व्याकुल न होकर) अधिकाधिक प्रेम-मग्न होता जाता है।

अलंकार-विषम (दूसरा)-कारण औरै रंग को कारज औरै रंग।

दो०—होमति सुख करि कामना तुमहिं मिलन की लाल।

ज्वालमुखी सी जरति लखि लगनि अगनि की ज्वाल।१८४।

शब्दार्थ—होमति=हवन करती है, आग में झोंकती है (त्यागती है)। कामना=अभिलाषा। ज्वालमुखी=ज्वालामुखी पर्वत। लखि=चलकर देखलो। लगनि=लगन (अनुराग)। अगनि=अग्नि। ज्वाल=लपट।

(वचन)—दूती वचन नायक प्रति। नायिका का विरह निवेदन। संघट्टन उद्देश्य।

भावार्थ—हे लाल, तुमसे मिलने की अभिलाषा में वह नायिका अपना सब सुख (सुख की सामग्री) हवन में छोड़ती है (त्यागन किये है)। चलकर देख लो वह प्रेमाग्नि की ज्वाला में ज्वालामुखी सी जलती है।

(अथवा)—तुम्हारे अनुराग की अग्नि की ज्वाला को ज्वालामुखी पर्वत के समान जलते देख कर, (अर्थात् तुम्हारा प्रचंड अनुराग देखकर), हे लाल, वह भी तुमसे मिलने की अभिलाषा में अपने सब सुखों का हवन कर रही है (जैसे तुम उसे चाहते हो वैसे ही वह तुम्हें चाहती है तुम्हारे लिये सर्वस्व त्यागने को तैयार है)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—मैं हो जान्यो लोयननि जुरत बाढ़िहै जोति।

को हो जानत डीठि को डीठि किरकिरी होति॥१८५॥

शब्दार्थ—मैं हो जान्यो=मैं जानती थी। लोयननि=नेत्रों

को हो जानत=कौन जानता था। किरकिटी=आँख में पड़ा हुआ तृण वा रजकण जिससे आँख को कष्ट हो।

(वचन)—नायिका बचन सखी प्रति।

भावार्थ—मैं तो जानती थी कि आँखों के मिलने से (प्रेम हो जाने से) नेत्रों की जोति बढ़ेगी (सुख होगा)। कौन जानता था कि दृष्टिके लिये दृष्टि ही किरकिटी (दुख दायिनी बस्तु) हो जाती है।

अलंकार—विषम (तीसरा)-और भलो उद्यम किये होत बुरो फल आय।

दो०—जो न जुगुति पिय मिलनकी धूरि मुकुति मुख दीन।
जो लहिये संग सजन तौ धरक नरक हू की न ॥१८६॥

शब्दार्थ—जुगुति=उपाय। धूरि मुकुति मुख दीन=किसीके मुख में धूल देना (तुच्छ समझना)। सजन=प्रियतम (प्रेमपात्र)। धरक=(धड़क) डर, भय।

वचन—नायिका वचन प्रिय सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, यदि मोक्ष में प्रियतम से मिलने का उपाय न हो तो ऐसी मुक्ति के मुखमें धूल डालना चाहिये (तुच्छ समझना चाहिये) और यदि नरकमें अपने प्रियतम का संग मिलता हो तो ऐसे नरकका भी कुछ भय न करना चाहिये।

अलकार—काव्यलिंगसे परिपुष्ट अनुज्ञा।

दो०—मोहू सों तजि मोह दृग चले लागि वहि गैल।
छिनक छ्वाय छवि गुरु-डरी छले छबीले छैल ॥१८७॥

शब्दार्थ—मोह=ममता। गुरुडरी=गुड़की डली।

(वचन)—नायिका वचन सखी प्रति। नायिका परकीय। पूर्वानुराग दशा।

भावार्थ—हे सखी, ये मेरे नेत्र मुझसे भी ममता छोड़कर उसी गली में चल पड़े हैं (सदा उसी मार्ग में चक्कर लगाया करते हैं जिस मार्ग से नायक आता जाता है)। उस छबीले छैलने इन्हें एक क्षण मात्रके खाने योग्य छवि रूपी गुड़की डली देकर छल लिया है।

(विशेष,–ठग लोग छोटे बच्चोंको गुड़की कोई मिठाई दे देकर भोराकर अपने साथ ले जाते हैं और उनका जेवर उतार कर उन्हें मार डालते हैं। इसी घटनाका रूपक इस दोहा में वर्णित है।

अलकार—रूपक।

दो०–को जानै ह्वै है कहा जग उपजी अति आगि।
मनलागै नैनन लगे, चलै न मग लगलागि॥ १८८॥

शब्दार्थ—आगि=(अग्नि)। अति आगि=विलक्षण प्रकार की अग्नि। चलै न मग लग लागि=उस रास्तेके निकट होकर भी मत चल।

(बचन)–सखी वचन नायिका प्रति। शिक्षण उद्देश्य।

भावार्थ—हे लाड़िली, संसार में विलक्षण अग्नि पैदा हुई है, न जाने क्या होने वाला है। वह अग्नि ऐसी है कि आंखों में छू जाने से मनमें लग जाती है, अत: तुझे शिक्षा देती हूं कि तू उस रास्ते के निकट होकर मत फटकना।

अलकार—असंगति (मन लागै नैनन लगे)।

दो०–तजत अठान न हठ पर्‌यौ सठमति आठौ जाम।
भयौ वाम वा वाम को रहै काम वे काम॥ १८९॥

शब्दार्थ—अठान=अनुचित कार्य। सठमति=मूर्ख। आठौ जाम=रातो दिन। वाम=प्रतिकूल। वेकाम–व्यर्थ।

(वचन)-दूती वचन नायक प्रति। बिरह निवेदन।

भावार्थ--काम व्यर्थ ही उस नायिका पर रातो दिन क्रुद्ध हुआ रहता है ऐसा सठमति है कि ज़िद पकड़ गया है, यह अनुचित कार्य छोड़ता ही नहीं—(वीर को न चाहिये कि वह स्त्रियों को सतावै)।

अलंकार—यमक।

दो०—लई सौंह सी सुनन की तजि मुरली धुनि आन।
किये रहति रति रात दिन कानन लाये कान।१९०।

शब्दार्थ--सौंह = शपथ। आन=अन्य। रति=रुचि। लाये=लगाये हुए।

(वचन)-नायिका की दशा। सखी वचन सखी प्रति।

भावार्थ—उसने तो मुरली ध्वनि छोड़ के और बात (शिक्षादि) सुनने की मानो शपथ सी ली है (कि सुनूंहीगी नहीं) बृन्दावन की ओर कान लगाये रात दिन मुरली ही की ध्वनि सुनने की रुचि रखती है।

अलकार—वाक्योत्प्रेक्षा।

दो०—भृकुटी मटकनि पीत पट चटक लटकती चाल।
चल चख चितवनि चोरि चित लियो बिहारीलाल १९१

शब्दार्थ—चटक = चमक। चल चख=चचल नेत्र।

(वचन)-नायिका वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, श्री कृष्ण ने भौहों की मटक, पीताम्बर की चमक, लटकती चाल और चंचल नेत्रों की चितवन से चित्त रा लिया है (उनकी इन चेष्टाओं पर मैं मोहित हो गई हूं)।

अलंकार—समुच्चय (द्वितीय)-एक काज के करन को हेतु अनेक।

दो०—दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हिये दई नई यह रीति ॥१९२॥

शब्दार्थ—टूटत कुटुम=कुल मर्यादा छूटती है, कुल से सम्बन्ध टूट जाता है। गांठ=द्वेष। दुरजन=दुष्टजन। दई=हे ईश्वर। नई=अद्भुत, अनोखी।

(वचन)-नायिका वचन स्वगत। वितर्क संचारी।

भावार्थ--हे ईश्वर प्रेम की यह कैसी अनोखी रीति है कि उलझती तो हैं आंखे और टूटता है कुटुम्ब, प्रीति जुड़ती है चतुरों के चित्त में और गाँठ पड़ती है दुर्जनों के हृदय में।

(विशेष)—जो चीज उलझती है वही टूटती है, जो टूटती है वही जुड़ती है, जो जुड़ती है उसी में गांठ पड़ती है, परन्तु यहां विलक्षणता है। यहां अद्भुत रस है, शृंगार उसका सहायक है।

अलंकार--प्रथम असङ्गति।

दो०—चलत घैरु घर घर तऊ घरी न घर ठहराय।
समुझि वहै घर को चलै भूलि वहै घर जाय ॥१९३॥

शब्दार्थ—घैरु=गुप्तनिन्दा। चलतघैरु=गुप्तरीति से निन्दा होती है।

(वचन)-सखी नायिकाकी दशा सखी प्रति कहती है।

भावार्थ—लोग घर घर चवाव करते हैं (गुप्तरीतिसे निन्दा करते है) तो भी वह (नायिका) एक घड़ी भी अपने घर में नही ठहरती (नायकके घरकी ओर आया जाया करती है) और वही निन्दा की वात समझ कर अपने घरको चलती है, परंतु तुरंत ही भूल कर फिर उसीके घर जाती है।

(विशेष)—उन्माद संचारी भाव है।

अलंकार—विशेषोक्ति।



दो०—डर न टरै नींद न परै हरै न काल बिपाक ।
छिनक छाकि उछकै न फिरि खरो विषम छवि छाक १९४।

शब्दार्थ—काल विपाक=समयका व्यतीत होना (एक नियत समयका गुज़र जाना)। उछकै=उतरै। खरो विषम= बड़ा कठिन । छाक=नशा, मद ।

(वचन)-सखी वचन सखी प्रति । पूर्वानुरागमें नायिकाकी दशाका वर्णन ।

भावार्थ—हे सखी, भंग, मदिरा इत्यादिकनशाओंकी अपेक्षा छबिका नशा (रूपकी आशक्ति) अति कठिन है, जो कोई तनक भी इसे पीता है, तो फिर यह नशा उतरता नहीं। यह नशा भयके कारण भी नहीं हटता, नींद भी नही आती (और नशे सोजानेसे उतर जाते हैं, पर इसमें नींद भी तो नही आती) और नियत समय व्यतीत होनेसे भी नहीं उतरता (जैसे और नशे एक रात दिन में उतर जाते हैं) ।

अलंकार—व्यतिरेक ।

दो०—झटकि चढ़ति उतरति अटा नेकु न थाकति देह ।
भई रहति नट को बटा अटकी नागर नेह ॥ १९५ ॥

शब्दार्थ—झटकि=(झटित) शीघ्रतापूर्वक । अटा=अट्टालिका। नेकु न=ज़रा भी नहीं । अटकी =उलझी हुई । नागर=चतुर ।

वचन—सखी वचन सखी प्रति । पूर्वानुरागमें नायिकाकी दशाका वर्णन ।

भावार्थ—हे सखी, चतुर नायकके नेहमें उलझी हुई वह नायिका नटका वट्टा बनी रहती है। शीघ्रतापूर्वक अटारी पर चढ़ा उतरा करती है, उसकी देह ज़रा भी नही थकती ।

अलंकार—पूर्वार्द्धमें विशेषोक्ति, उत्तरार्द्धमें रूपक ।

दो०—लोभ लगे हरि रूपके करी साँट जुरि जाइ।
हौं इन बेंची बीचही लोयन बड़ी बलाइ ॥ १९६ ॥

शब्दार्थ—साँट=सौदा बेंचनेकी बात चीत (दलालों की)। जुरिजाय=मिलकर। हौं=मुझे। बीचही=बिना मेरी मंजूरीके. बिना मुझसे पूछेही। लोयन=नेत्र।

(वचन)—नायिकाका वचन सखी प्रति। निज दशा वर्णन।

भावार्थ—हे सखी, ये नेत्र बड़ी बुरी बला है। कृष्णके रूपके लालचमें पड़कर (रुपयेके लालच से दलाल भी ऐसाही करते हैं) कृष्णके नेत्रों से मिलकर इन्होंने सौदाकी बात चीतकी और मुझे बिना मुझ से पूंछे ही बेंच डाला।

अलंकार—रूपक।

दो०—नई लगनि कुल की सकुच विकल भई अकुलाइ।
दुहूँ ओर ऐंची फिरति फिरकी लौं दिन जाइ ॥१९७॥

शब्दार्थ—फिरकी=चकरी (काठका एक खिलौना विशेष जिसे डोरासे बांधकर लोग नचाते हैं)।

(वचन)—नायिकाकी दशाका वर्णन। सखी वचन सखी प्रति।

भावार्थ—एक ओर नवीन प्रेम, दूसरी ओर कुलमर्यादाका संकोच, इस खींचातानीसे घबराकर बेचैन हो रही है। इसीमें दोनों ओर इँचे खिंचे फिरते हुए चकरीकी तरह वह अपना दिन बिताती है।

(विशेष)—व्रीड़ा, अभिलाषा, चपलता, उद्वेग इत्यादि संचारी भाव हैं।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—उत तें इत इत ते उतहिं छिनक न कहुँ ठहराति।
जक न परनि चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति ॥१९८॥

शब्दार्थ—उत=वहां। इत=यहां। जक=कल, चैन।

भावार्थ—सरल है (चपलता संचारी भाव है)।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

दो०—तजी संक सकुचति न चित बोलति बाक कुबाक।
दिन छनदा छाकी रहति छुटै न छिन छबिछाक॥१९९॥

शब्दार्थ—संक=शंका, भय। बाक कुबाक=अंडबंड वचन। छनदा=रात्रि। छाकी रहति=मस्त रहती है, नशेमें चूर रहती है। छबिछाक=रूपका नशा।

(वचन)—दूती बचन नायक प्रति। विरह निवेदन।

भावार्थ—हे कृष्ण तुम्हारे रूपका नशा उसे ऐसा चढ़ गया कि रातदिन वह उसीमे छकी रहती है, एक क्षण मात्रके लिये वह छविका नशा नहीं उतरता और उसी नशेके कारण उसने भय छोड़ दिया, चित्तमें लज्जित भी नहीं होती और अंडबंड निरर्थक वचन बोलती है।

(विशेष)—इसमें विरहकी प्रलाप दशाका वर्णन है।

अलंकार—व्यतिरेक (छबिछाक से रातोदिन छकी रहती —और नशासे इसमें अधिकता है)।

दो०—ढरे ढार त्योंही ढरत दूजे ढार ढरै न।
क्यौंहू आनन आन सों नैना लागत हैं न॥ २०० ॥

शब्दार्थ—ढार=बहावकी ओर। आनन=मुख। आन=अन्य।

विशेष—नायिका परपुरुष पर आशक्त है। सखीने शिक्षा दी कि पर पुरुष प्रेम छोड़ निज पति से प्रेम कर। इस पर नायिका कहती है।

भावार्थ—हे सखी, मेरे ये नेत्र जिस ढार की ओर ढर गये हैं, अब उसी ओर ढरते हैं दूसरी ओर नहीं ढरते। किसी



प्रकार भी अन्य मुख से अब ये नेत्र लगते ही नहीं (दूसरे की ओर देखनेकी इच्छा नहीं)।

(अथवा) कोई दूती किसी पतिव्रता को बहकाके किसी पर-पुरुष पर प्रेम करनेका आग्रह कर रही है। उसके उत्तर में उस दूतीसे नायिकाका कथन है।

अलकार—अनुप्रास ।



तृतीय शतक

दो०—चकी जकी सी ह्वै रही, बूझे बोलति नीठि।
कहूं डीठि लागी लगी कै काहू की डीठि॥ २०१॥

शब्दार्थ—चकी = चकृत। जकी = डरी हुई, स्तंभित। नीठि=कठिनतासे। डीठि लागी=किसीसे प्रेम लगा है। डीठि लगी = नज़र लगी है।

(वचन)—पूर्वानुराग में नायिकाकी दशाका वर्णन। सखीका वचन सखी प्रति। व्याधि संचारी भाव है।

भावार्थ—वह नायिका चकृत और भयसे स्तंभित सी हो रही है हाल पूंछने पर मुशकिलसे बोल सकती है। न जानें किसीसे प्रेम लगा है (आशक्त होगई है) वा किसीकी नज़र लग गई है।

अलंकार—संदेह।

दो०—पियके ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपुही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥२०२॥

शब्दाथ—गही=गृहीता। गही=ली। आपु आपुही= अपनेही आपको देखकर। पियके ध्यान गही = नायकके ध्यानसे ग्रसित अर्थात् नायकके ध्यानमें निमग्न होकर।

(पचन)—सखी बचन सखी प्रति।

भावार्थ—प्रीतमके ध्यानमें लिमग्न होकर जब उसने (नायिकाने) दर्पण लिया (दर्पणमें मुख देखने लगी) तब वह स्वयं नायकही होरही (अर्थात् अपनेको नायक समझ कर और आरसीमें पड़े हुए बिंबको नायिका समझ कर)




दर्पण देख देख कर आप अपनेही प्रतिबिंब पर रीझती है- ऐसी अनोखी रिझवार है।

(विशेष)—इसमें जड़ता संचारी भाव है।

अलंकार—सामान्य।

दो०—ह्यां ते ह्वां ह्वां ते इहां नेकौं धरति न धीर।
निस दिन ढाढ़ी सी फिरति बाढ़ी गाढ़ी पीर॥२०३॥

शब्दार्थ—ढाढ़ी=एक जाति जिसके व्यक्ति बधाई इत्यादि गानेका व्यवसाय करते हैं। इस जातिके व्यक्ति प्रायःइतस्ततः घूमाही करते हैं।

भावार्थ—सरल है। (चपलता संचारी भाव है)

अलंकार--पूर्णोपमा और छेकानुप्रास।

(मध्या)

दो०—समरस समर सकोच बस बिबस न ठिकु ठहराय।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि झमकति जाय।२०४।

शब्दार्थ—समरस=समान। समर=(स्मर) काम। सकोच= लज्जा। बिबस=अपने सँभार में नहीं। उझकति=सिर उठा उठा कर देखती हुई। दुरति = छिपती है।

(विशेष ;—मध्या नायिका। आवेग, अवहित्था, व्रीड़ा, चपलता चार संचारी हैं। विलास हाव है। (सखी का कथन सखी प्रति)।

भावार्थ—काम और लज्जा दोनों बराबर है। इनके वस में विवस हुई है, अतः कोई ठीक नहीं पड़ता (एक दशा में स्थित नहीं रहती) बार बार मुँह उठा उठा कर देखती है

(नायक को), फिर छिपजाती है, और छिप छिप कर उठ उठ कर देखती ही जाती है।

अलंकार—यमक, अनुप्रास, कारक दीपक।

दो०—उर उरझ्यो चितचोर सों गुरु गुरुजन की लाज।
चढ़े हिंडोरे से हिये किये बनै गृह काज॥ २०५॥

शब्दार्थ—गुरु = भारी। गुरुजन = जेठे लोग (सास, जेठानी इत्यादि)।

भावार्थ—चित तो नायक से उलझा हुआ है और इधर गुरु जनों की भारी लज्जा है। अतः हिंडोले के समान डोलते हुए हृदय से कैसे घर का काम ठीक करते बनै।

(वचन)—सखी का बचन सखी प्रति।

अलंकार—उपमा। काकुवक्रोक्ति।

दो०—सखी सिखावति मान विधि सैनन बरजति बाल।
हरे कहै मो हीय मो बसत बिहारीलाल॥ २०६॥

शब्दार्थ—मान बिधि = मान करने का ढंग। हरे = धीरेधीरे।

शब्दार्थ—सखी मान करने का ढंग सिखाती है तब वह नायिका इशारे से मना करती है कि यह बात धीरे से कह, क्योंकि मेरे हृदय में बिहारी लाल (नायक) बसते हैं ऐसा न हो कि वे सुन लें।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—उर लीने अति चटपटी सुनि मुरली धुनि धाय।
हौं हुलसी निकसी सु तौ गयो हूल सी लाय॥२०७॥

शब्दार्थ—चटपटी = आतुरता। हुलसी = हुलास सहित। तौ = (सो तो) वह तो। हूल = तलवार वा बरछी की घोंप।

(वचन)—नायिका वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मुरली-ध्वनि सुनकर हृदय में अत्यंत आतुरता लिये हुए मैं बड़े हुलास से उसके देखने को घर से बाहर निकली (कि ऐसी मधुर मुरली बजानेवाला बड़ा आनन्द-दायक होगा) परन्तु उसने तो हूल सी मार दी (उसको देखकर कलेजे में हूल सी लगी अर्थात् देखते ही आशक्त होकर व्याकुल हो गई)।

अलंकार—यमक-(हुलसी, हूल सी), बिषम (तीसरा)।

दो०—जो तब होत दिखादिखी भई अमी इक आँक।
लगै तिरीछी डीठि अब ह्वै बीछी को डाँक ॥ २०८ ॥

शब्दार्थ—तब=पूर्वानुराग समय में। इक आँक=निश्चित रूप से। अब=वियोग में।

भावार्थ—हे सखी जो तिरछी दृष्टि उस समय अर्थात् अनुरागारंभ में देखा देखी (परस्पर अवलोकन) होते समय निश्चयरूप अमृत तुल्य हुई थी, वही दृष्टि अब (वियोग में स्मरण करने से, बिच्छू का डंक होकर लगती है (दुःख देती है)।

(वचन)—नायक वा नायिका का वचन सखी प्रति।

(विशेष)—वियोग शृंगार, स्मृति संचारी,

अलंकार—पर्याय—(एक वस्तु क्रम सों जहाँ आश्रय लेय अनेक; पहले वही दृष्टि अमृत थी, फिर वही बीछी डंक हुई।

दो०—लाल तिहारे रूप की कहौ रीति यह कौन।
जासों लागैं पलक दृग लागै पलक पलौ न ॥ २०९ ॥

शब्दार्थ—पलक=एक पल मात्र के लिये। लागै पलक न=नींद नहीं आती। पलौ=एक पल मात्र के लिये।

(वचन)-दूती वचन नायक प्रति । नायिका विरह निवेदन।

भावार्थ—हे लाल, तुम्हारे रूप की यह कौन सी रीति है कि जिससे एक क्षणमात्र के लिये भी किसी के नेत्र लगते हैं (एक दृष्टि देखने मात्र से) फिर उन नेत्रों में एक क्षण के लिये भी नींद नहीं आती ।

अलंकार—व्याज स्तुति । बिरोधाभास ।

दो०—अपनी गरजनि बोलियत कहा निहोरो तोहि ।
तू प्यारो मो जीव को मो जिय प्यारो मोहिं ॥ २१० ॥

शब्दार्थ—गरज=चाह, मतलब । निहोरो=एहसान, थराई ।

(बचन)—कलहातरिता नायिका का वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—अपनी गरज़ से तुमसे बोलती हूं तुम पर मेरा कोई एहसान नहीं है, क्योंकि तुम मेरे जीव को प्यारे हो और अपना जीव मुझे प्यारा है ।

अलंकार—एकावली ।

(स्वप्न)

दो०—सुख सों बीती सब निसा मनु सोये मिलि साथ ।
मूका मेलि गहे जु छन हाथ न छोड़ हाथ ॥२११॥

शब्दार्थ—मूका = मोखा (दीवार का छेद) ।

(विशेष)—स्वप्न की बात का वर्णन । नायिका परकीया । नायिका का बचन सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, मैंने आज स्वप्न में देखा कि मोखे में हाथ डाल कर जो मेरा हाथ पकड़ा तो फिर छोड़ा नहीं । इसी धरा पकड़ी के स्वप्न में सारी रात्रि ऐसे सुख से व्यतीत हुई कि मानो हम दोनों साथ ही सोये रहे ।

अलंकार-अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०-देखौं जागि त वैसिये सांकर लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जाति भजि को जानै केहि बाट॥२१२॥

शब्दार्थ-सांकर=जञ्जीर। कपाट=किवाड़। बाट=रास्ता।

(वचन)—नायिका वचन सखी प्रति। स्वप्न-दशा वर्णन।

भावार्थ—(हे सखी, मैं रातको रोज़ कृष्णको स्वप्न में देखती हूं कि वे मेरे पास आते हैं) और जब मैं जग कर देखती हूं तो देखती हूं कि किवाड़ों में वैसी ही जञ्जीर लगी है जैसी मैंने सोने से पहले बन्द की थी, न ज़ाने उनकी वह मूर्ति किस रास्ते से आती है और जगने पर किस रास्ते से भग जाती है।

(विशेष)—स्वप्न अनुभव। वितर्क संचारी भाव।

अलकार-तीसरी विभावना।

दो०-गुड़ी उड़ी लखि लाल की अँगना अँगना मांह।
बौरी लौं दौरी फिरति छुवति छबीली छांह॥२१३॥

शब्दार्थ-गुड़ी=पतंग। अँगना=नायिका। अंगना=आँगन।

(विशेष)—चपलता संचारी भाव। (नायक की पतंग की छाया को छूकर नायिका मिलन का सा सुख मानती है)।

(वचन)—सखी वचन सखी प्रति। नायिका की उन्माद-दशा का वर्णन।

भावार्थ-नायक की पतंग उड़ी हुई देख कर और उसकी छाया अपने आंगन में पड़ती हुई जान कर वह नायिका अपने आंगन में बौरी सी दौड़ती है और पतंग की छाया को छूती फिरती है।

अलंकार—गुड़ी उड़ी में छेकानुप्रास। अंगना अंगना में यमक। बौरी लौं दौरी फिरति में पूर्णोपमा। छुवति छबीली छांह में वृत्यनुप्रास।

दो०—उनको हित उनहीं बनै कोऊ करौ अनेक।
फिरत काग गोलक भयो दुहूं देह ज्यौ एक॥२१४॥

शब्दार्थ—हित=प्रेम। बनै=करते बनता है। काग गोलक=कौवा के नेत्रों के गड्ढे। ज्यौ=जीव।

(विशेष)-ऐसा कहा जाता है कि कौवा के नेत्र-गोलक तो दो होते हैं, परन्तु आंख एक ही होती है। बारी बारी से दोनों गोलकों में फिरा करती है।

(वचन)-सखी वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, दम्पति का ऐसा प्रेम है कि उन्हीं से करते बनता है, अन्य कोई अनेक उपाय करे तो भी वैसा प्रेम न बनेगा। दोनों के शरीर तो दो हैं, पर जीव एक ही है और दोनों शरीरों में इस प्रकार संचरण करता है जैसे कौवा के दोनों गोलकों में एक नेत्र।

अलंकार-पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति। उत्तरार्द्ध में उपमा।

दो०—करत जात जेती कटनि बढ़ि रस सरिता सोत।
आलवाल उर प्रेम तरु तितो तितो दृढ़ होत॥२१५॥

शब्दार्थ—कटनि=कटाव। रस=(१) शृंगार रस (प्रेम) (२) पानी। आलवाल=थाल्हा। तितो तितो=उतना ही अधिक।

(वचन)—नायक किंवा नायिका की उक्ति।

भावार्थ-शृंगार रस (प्रेम) की नदी का स्रोता बढ़कर जितना ही अधिक कटाव करता जाता है, हृदय के थाल्हे में लगा हुआ

प्रेम रूपी पेड़ उतना ही अधिक मज़बूत होता जाता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—खल बढ़ई बल करि थके कटै न कुवत-कुठार।
आलवाल उर झालरी खरी प्रेम तरु डार ॥२१६॥

शब्दार्थ—कुवत-कुठार=कुवार्ता रूपी कुठार (निंदारूपी कुल्हारी)। आलवाल=थाल्हा। झालरी=फैलती है, पत्र पुष्प युक्त होती है। खरी=और अधिक।

(वचन)-नायक किंवा नायिका का वचन सखी प्रति।

भावार्थ—निंदक रूपी बढ़ई बल करके थक गये परन्तु निंदा रूपी कुल्हाड़ी से कटी नहीं किन्तु (उसके विपरीत) हृदय रूपी थाल्हे में प्रेम रूपी पेड़ की शाखा और भी बढ़ती ही गई।

अलंकार—रूपक।

दो०—छुटन न पैयत छिनकु बसि नेह-नगर यह चाल।
मार्‍यौ फिरि फिरि मारिये खूनी फिरत खुस्याल॥२१७॥

शब्दार्थ—खूनी=घातक। खुस्याल=आनन्द युक्त।

(वचन)—नायक अथवा नायिका की उक्ति।

भावार्थ—नेह-नगर की यह विलक्षण रीति है कि यहां एक क्षणमात्र भी बस कर फिर कोई यहां से छुटकारा नहीं पाता। और मारा हुआ ही वार वार मारा जाता है और घातक आनन्द युक्त घूमता फिरता है (उसे कोई दण्ड नहीं देता)।

(विशेष)—मार्‍यौ (आशिक) और खूनी (माशूक) में साध्यवसाना लक्षणा है (जहां उपमान से ही उपमेय का बोध होता है)।

अलंकार—रूपक—(नेहनगर)। रूपकातिशयोक्ति-(उपमान से उपमेय का ज्ञान)।

दो०—निरदय नेह नयो निरखि भयो जगत भयभीत।
यह अबलौं न कहूँ सुनी मरि मारिये जु मीत ॥२१८॥

(विशेष)—मानी नायक प्रति नायिकाकी सखी का बचन।

भावार्थ—हे लाल, यह तुम्हारा नवीन प्रकारका दया रहित प्रेम देखकर संसार डर गया है। अबतक यह बात कभी न सुनी थी कि संसारमें ऐसे भी प्रेमी होते हैं जो स्वयं कष्ट उठा कर मित्रको भी कष्ट देते हैं (अर्थात् स्वयं कष्ट उठाकर मित्र-को सुख पहुंचाना यह प्रेमका खास लक्षण है, परन्तु तुम मान कर बैठे हो, इससे तुम्हें भी कष्ट है और हमारी सखी को भी कष्ट हो रहा है, अतः मान त्यागो)।

अलकार—काव्यलिंग—("निर्दय नयो नेह" को युक्ति से प्रमाणित किया है)।

(विशेष)—श्रृंगार रस में 'मरण' का वर्णन रस विरुद्ध है। किसी कवि ने कहा नहीं। यह बिहारी ही की विलक्षण प्रतिभा का काम है जो "मरना, मारना" शब्द का पर्यायवाची अर्थ में प्रयोग करके, इस दशा का भी दिग्दर्शन कराया है। उपरोक्त दोनों दोहों में यही विशेष खूबी है।

दो०—क्यौं बसिये क्यौं निबहिये नीति नेह-पुर नाहिं।
लगालगी लोयन करैं नाहक मन बँधि जाहिं ॥२१९॥

शब्दार्थ—लगालगी = परस्पर लागडांट। लोयन = (लोचन) नेत्र। नाहक=बेकसूर, बिना अपराध।

(वचन)—नायक किंवा नायिका वचन सखी प्रति।

भावार्थ—नेह-पुर में कैसे बसें और कैसे निर्वाह करें, यहां तो कोई नीति ही (कानून) नहीं है। देखो न, लाग डांट तो नेत्र करते हैं और बेकसूर बेचारे मन कैद किये जाते हैं।

अलंकार—असंगति (प्रथम)।

दो०--देह लग्यौ ढिग गेह पति तऊ नेह निरवाहि ।
ढीली अँखियन ही इतै गई कनखियन चाहि ॥२२०॥

शब्दार्थ—गेहपति=खाविन्द । इतै=मेरी ओर । कनखियन=आँख के कोने से। चाहि गई=देख गई ।

(वचन)—उपपति नायक का वचन सखी प्रति ।

भावार्थ—अत्यन्त निकट उसका पति मौजूद था, तब भी प्रेम के निर्वाह के लिये, वह नायिका ढीली ही आँखों के कोनों से मेरी ओर देख गई ।

अलंकार—तीसरी विभावना ।

दो०—हौं हिय रहति हई छई, नई जुगुति जग जोय ।
आंखिन आंखि लगे खरी देह दूबरी होय ॥ २२१ ॥

शब्दार्थ—हौं = मैं । हई = आश्चर्य । जोय=देखकर ।

(वचन)—नायिका वचन सखी प्रति पूर्वानुराग दशा ।

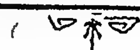
भावार्थ—हे सखी (संसार की यह नई युक्ति देखकर) मैं तो हृदय में आश्चर्य से छाई रहती हूं (मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम होता है) कि आँख से आँख लगने से (अर्थात् भिड़ती तो है आँख से आँख परन्तु) देह अति दुर्बल होती है। (लगती है आंख, दुर्बल होती है देह)

(विशेष)—वितर्क संचारी भाव है ।

अलंकार—असंगति ।

दो०—प्रेम अडोल डुलै नहीं मुख बोलै अनखाय ।
चित उनकी मूरति बसी चितवनि माहिं लखाय ॥२२२॥

शब्दार्थ—अडोल=अचल । अनखाय =क्रुद्ध होकर

(वचन)—नायिका का पक्का पूर्वानुराग देखकर सखीका वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे सखी तेरा प्रेम अचल है, वह चलायमान नहीं होता, परंतु (छिपानेकी गरज़से) उनकी वार्ता करने से तू क्रुद्ध होकर बोलती है। तेरे चित्त में उनकी मूर्ति बसती है वह तेरी चितवन में ही दिखलाई पडती है।

अलंकार—प्रमाणान्तर्गत अनुमान अलंकार (चिन्हहि लखि अनुमान बल-बस्तुहि लीजै जानि)।

दो०—चित तरसत मिलत न बनत बसि परोसके बास।
छाती फाटी जाति सुनि टाटी ओट उसास ॥२२३॥

शब्दार्थ—बास = घर। उसास = ऊंची साँस, निश्वास।

(वचन)—परोसिन दूतीका वचन नायक प्रति। निकट निवासिनी पूर्वानुरागिनी नायिकाका विरह निवेदन करती है।

भावार्थ—हे लाल, उसका चित्त तुमसे मिलनेको तरसता है। पड़ोसके घरमें रहकर भी (अति निकट होने पर भी) मिलते नहीं बनता। टट्टीकी ओटमें (अर्थात् उसके और मेरे वास स्थानके बीचमें केवल एक टट्टी मात्र है) जो वह विरहके कारण निश्वास लेती है उसे सुन सुन कर मेरी तो छाती फटती है अर्थात बड़ा दुःख होता है।

अलंकार—विशेषोक्ति-(निकट रहकर भी मिलते नहीं बनता)।

दो०—जालरंध्र मग अगनि को कछु उजास सो पाय।
पीठि दिये जग त्यों रहै डीठि झरोखनि लाय ॥२२४॥

शब्दार्थ—जालरंध्र=जाली के छेद। अगनि=अग्नि (नायिका के शरीर की दीप्ति)। उजास=प्रकाश। जग त्यों = (जग तन) संसार की तरफ। त्यों=(तन) तरफ।



(वचन)—नायक की दशा नायिका से दूती कहती है। नायक और नायिका के निवासस्थान के बीच में एक जाली है।

भावार्थ—जाली के छेदों के रास्ते से कुछ अग्नि का सा उजाला देखकर (तुम्हारी अंगदीप्ति देख कर), उन्हीं झरोखों में दृष्टि लगा कर संसार को पीठ दे दी है अर्थात् अन्य सब सांसारिक वस्तुओं को छोड़ कर तुम्हारी ही देहदीप्ति को झरोखे से देखा करता है।

अलंकार—परिसंख्या (दृष्टि को जगत से रोक केवल झरोखे में रक्खी)।

दो०—जद्यपि सुन्दर सुघट पुनि सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितौ भरिये जितौ सनेह ॥२२५॥

शब्दार्थ—सुघट=अच्छी तरह से बनाया हुआ। सगुनो=(१) गुणयुक्त (२) डोरा अर्थात् बत्ती सहित। सनेह=(१) प्रेम (२) तैल।

(वचन)—दूती वचन नायिका प्रति (अनुराग दृढ़ीकरण)।

भावार्थ—यद्यपि तुम्हारा दीपकरूपी शरीर (दीप शिखा-वत् देह) सुन्दर, अच्छा बना हुआ, और गुणयुक्त (बत्ती सहित) है, तो भी दीपक उतना प्रकाश करता है जितना उसमें तैल (प्रेम) भरा जाता है।

अलंकार—श्लेष से परिपुष्ट रूपक।

दो०—दुचिते चित चलति न हलति हँसति न झुकति विचारि।
लिखत चित्र पिय लखि चितै रही चित्र सी नारि॥२२६॥

शब्दार्थ—दुचिते चित=संदिग्ध चित्त से। झुकति=क्रुद्ध होती है, खीझती है।

(विशेष)—नायक किसी स्त्री का चित्र बना रहा है। नायिका

छुपके देख रही है कि देखें किसका चित्र बना रहा है। मेरा चित्र बनाता है या किसी अन्य स्त्री का, इसलिये दुचित्ती है। इसमें स्तंभ सात्विक भाव और वितर्क संचारी। (पूर्ण सामग्री है)।

(वचन)—सखी का सखी प्रति। नायिका की उपर्युक्त दशा का वर्णन।

भावार्थ—दुचित्ती होकर रह गई, न हिलती है न वहां से टलती है और कुछ सोच विचार कर न हँसती है न क्रुद्ध होती है। इस प्रकार नायक को चित्र बनाते हुए देखकर तसवीर सी (अचल) होकर उस चित्र को देख रही है। (नायिका स्वकीया)।

अलंकार—उपमा (पूर्ण) अथवा उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—नैन लगे तिहिं लगनि सों छुटैं न छूटे प्रान।
काम न आवत एकहू तेरे सौक सयान॥ २२७॥

शब्दार्थ—लगनि = प्रीति। सौक = (सौ + एक) एक सौ (अनेक)। सयान = चतुराई वा सुन्दर शिक्षा।

(वचन)—प्रौढ़ा परकीया-वचन शिक्षा देने वाली सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मेरे नेत्र ऐसी दृढ़ प्रीति के साथ उस नायक से लग गये हैं कि वे प्राण छूटने पर भी अब नहीं छूट सकते। अब तेरी सौ चतुराईयां (अथवा सौ प्रकार का समझाना बुझाना) एक भी काम न आवेंगी (अर्थात् अब समझाना व्यर्थ है, अब मैं उस नायक से प्रीति न छोड़ूंगी)।

(विशेष)—इसमें धृति संचारी भाव है।

अलंकार—अत्युक्ति (प्रेमात्युक्ति)। देखो अलंकार मंजूषा पृष्ठ २२३।

दो०—साजे मोहन मोह को मोहीं करत कुचैन।
कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन॥२२८॥




शब्दार्थ—मोहन = श्रीकृष्ण (नायक) । मोह को = मोहित करने के लिये । कुचैन=दुखित । टोना = टोटका (यंत्र, मंत्र, जादू इत्यादि) । लोने = सुन्दर ।

(वचन)-परकीया नायिका का वचन सखी प्रति ।

(विशेष)-इसमें विषाद संचारी भाव है ।

भावार्थ—हे सखी, मैंने तो अपने ये नेत्र काजल इत्यादि लगाकर श्रीकृष्ण (नायक) को मोहित करने के लिये सजाये थे, पर जब से उसे (नायक को) देखा है, तब से मेरे नेत्र मुझे ही बेचैन कर रहे हैं (अर्थात् अब उसको देखे बिना चैन नहीं पड़ती) । हे सखी, क्या करूं मेरे सुन्दर नेत्रों का टोना उलट कर मेरे ही ऊपर पड़ा ।

अलंकार-'मोहन' शब्द में परिकरांकुर । मोहन, मोह में यमक । टोने लोने में छेकानुप्रास । और समस्त दोहा में तीसरा विषम ।

दो०—अलि इन लोयन सरनि को खरो विषम संचार ।
लगे लगाये एक से दुहु अनि करत सुमार ॥ २२९ ॥

शब्दार्थ—खरो विषम = बड़ा अद्भुत । संचार=गति । दुहु अनि=दोनों अनी से । सुमार = अच्छी मार ।

(अन्वय)-लगे दुहु अनी मार करत, लगाये दुहु अनी मार करत, अतः लगे लगाये दुहु एकसे ।

(विशेष)—तीर में दो अनी होती है । एक में गांसी लगी होती है जो निशाने पर लगती है । दूसरी अनी (अर्थात् दूसरा छोर) प्रत्यंचासे सटती है । कविका तात्पर्य है कि नैनबाण दोनों ओर से अच्छी मार करते हैं अर्थात् जिसके लगते हैं वह भी घायल होता है और जो लगाता है अर्थात् घालता है वह भी ।

(वचन)—नायिका बचन सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, इन नैन बाणों की बड़ी अद्भुत गति (मार) है। दूसरे के नेत्र मुझसे लगे अथवा मैंने अपने नेत्र दूसरेसे लगाये (दोनों दशाओंमें) फल एक ही सा होता है अर्थात् जिसके लगते हैं और जो लगाता है दोनों घायल होते हैं (अर्थात् नैनबाण दोनो अनीसे मार करते हैं)

(विशेष)—अन्य हथियार चलाने वालेको नही घायल करता नैनबाण चलाने वालेको भी घायल करता है यह अद्भुतता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—चखरुचि चूरन डारिकै ठग लगाय निज साथ।
रह्यौ राखि हठ, लैगयो हथाहथी मन हाथ ॥ २३० ॥

शब्दार्थ—चखरुचि=नेत्रोंकी सुन्दरता । चूरन=मंत्रित भभूत । ठग=(नायक)। रह्यौ राखि=रोकता रहा। हथाहथी= हाथोंहाथ (अति शीघ्र)।

(वचन)—नायिका का वचन सखी प्रति।

भावार्थ—आंखोंके सौन्दर्यका चूरन ऊपर डालकर (सुन्दर नेत्र दिखलाकर) वह ठग (अर्थात् नायक) अतिशीघ्र मेरे मनको अपने कावूमें करके अपने साथ लगा ले गया, मेरा हठ (धैर्य) रोकता ही रह गया (परंतु उसका किया कुछ न हो सका)।

(विशेष)—"जिसपर बशीकरणकी मंत्रित भभूत डाली जाती है वह स्वयं डालनेवालेके साथ चल देता है," यह तांत्रिक सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्तके अनुसार यहां रूपक बांधा गया है।

अलंकार—रूपक।



दो०–जौलौं लखो न कुलकथा तौलौं ठिक ठहराय।
देखे आवत देखिबो क्योंहू रह्यो न जाय ॥२३१॥

शब्दार्थ—कुलकथा = कुलवती ललनाओंके आचार (लज्जा, सुशील इत्यादि)। ठिक ठहराय = ठीक जान पड़ती है। देखे आवत देखिबो=देखने पर देखना ही अच्छा लगता है।

(वचन)—सखीने शिक्षा दी है कि नायक की ओर टकटकी लगाकर न देखाकर। इसपर नायिका सखीसे कहती है।

भावार्थ—हे सखी जबतक मैं उसको (नायकको) देखती नहीं, तबतक तो लज्जा शीलादिकी बातें मुझे ठीक जान पड़ती हैं, पर जब देख लेती हूं (सामने आजाता है) तब एक टक देखना ही सोहाता है, फिर किसी तरह रहा नहीं जाता।

अलंकार—अत्युक्ति (सुन्दरताकी)

दो०–बनतनको निकसत लसत हँसत हँसत इत आय।
दृग खंजन गहि लै गयो चितवनि चेंपु लगाय ॥२३२॥

शब्दार्थ-बन तनको = बन की ओर को। चेंपु=लासा।

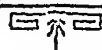
(वचन)—नायिका वचन सखी प्रति।

भावार्थ—बनकी ओरको निकलते समय (गोचारन हेत जाते समय) उस कृष्ण का गोपाल वेष बहुत शोभा देता है। हँसते २ यहां (मेरे द्वारपर) आकर मेरे नेत्र खंजनों को चितवनि रूपी लासा लगाकर (अपनी चितवन पर मेरे नेत्रों को आशक्त करके) पकड़ ले गया।

अलंकार—रूपक

दो०–चित-बित बचन न हरत हठि लालन दृग बरजोर।
सावधानके बटपरा ये जागनके चोर ॥ २३३ ॥

शब्दार्थ—चितबित = मनरूपीधन। बरजोर = जबरदस्त।



सावधान=सजग, सचेत, होशियार । बटपरा=(बट=बाट, परा=पारनेवाला) बटमार, राहजन, डांकू ।

(वचन)—नायिका बचन सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, कृष्णके जबरदस्त नेत्रोंसे मनरूपी धन बचने नहीं पाता, हठ पूर्वक छीन लेते हैं । ये नेत्र होशियारके लिये डाकू हैं और जागते हुए (दिन दहाड़े) भी चोरी करले जाते हैं ।

अलकार—तीसरी विभावना ।

दो०—सुरति न ताल रु तानकी उठ्यो न सुर ठहराय ।
येरी राग बिगारि गो बैरी बोल सुनाय ॥ २३४ ॥

शब्दार्थ—सुरति=सुधि । रु=और । उठ्या=अलापा हुआ ।

(विशेष)—'बैरी' में साध्यवसाना लक्षणा । नायिकाको स्वरभंग सात्विक भाव हुआ है ।

(बचन)—गानमें रत परकीया नायिकाका वचन सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, अब मुझे ताल और तानकी सुध नहीं रही, अलापा हुआ स्वर भी ठहरता नहीं । वह वैरी (नायक) अपना बोल सुनाकर मेरा राग (गान) बिगाड़ गया ।

अलंकार—काव्यलिंग ।

दो०—*ए कांटे मो पांय गड़ि लीन्हीं मरत जिवाय ।
प्रीति जतावति नीति सों, मीत जु काढ्यो आय २३५॥

(विशेष)—नायिकाके पैरमें काँटा गड़ा, नायकने उसे दुखित देख निकट आ अपने हाथसे काँटा निकाला । इस

* नोट—इस दोहेके अनेक पाठान्तर और अर्थान्तर हैं । हमने यह पाठ लिया है, क्योंकि इसके अर्थ में कुछ भी क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी पड़ती । पाठान्तर और क्लिष्ट अर्थान्तर देना हम अच्छा नहीं समझते ।

प्रकार नायकके हाथोंका प्रथम कर-स्पर्श पाकर नायिका प्रसन्न हुई और उस काँटे को प्रथम मिलनका कारण समझ कर नीति पूर्वक उससे प्रीति जताती हुई वह नायिका वार बार उस कांटे से दोहेका पूर्वार्द्ध वाक्य कहती है। नायिकाकी यह दशा कोई सखी अन्य सखी प्रति कहती है।

भावार्थ—हे सखी उसकी तो यह दशा है कि—प्रथमवार निकट आकर जिस कांटे को नायक ने निकाला है उस कांटे से नीति पूर्वक (अपने उपकारीसे प्रीति करना नीति की वात है) प्रीति जनाती है और वार वार उस कांटेसे यह कहती है कि—हे कांटे तूने मेरे पैर में गड़कर मुझे जिला लिया क्योंकि बहुत दिनोंसे नायकके करस्पर्शको तरस रही थी

अलंकार—अनुज्ञा।

दो०—जात सयान अयान ह्वै वे ठग काहि ठगै न।
को ललचाय न लालके लखि ललचौहै नैन ॥२३६॥

शब्दार्थ—सयान=(सयानपना) चतुराई। अयान=अज्ञान, मूर्खता। ललचौं हैं=लालच भरे (प्रेम भरे)।

(वचन)—नायिकाका वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, उन नेत्रोंके सामने सब चतुराई मूर्खता हो जाती है। वे ऐसे ठग हैं कि किसे नहीं ठग लेते। लालके प्रेमपूर्ण नेत्रोंको देखकर कौन नहीं ललचाता।

अलंकार—काकु वक्रोक्ति।

दो०—जस अपजस देखत नहीं देखत साँवल गात।
कहा करौं लालच भरे चपल नैन चलि जात ॥२३७॥

शब्दार्थ—साँवल गात=श्याम शरीर। चपल=चंचल।

भावार्थ—सरल है।

(विशेष)—वितर्क संचारी भाव (कहा करौं)।

अलंकार—अत्युक्ति (सुन्दरता की)।

दो०—नख सिख रूप भरे खरे तऊ माँगत मुसुकानि।
तजत न लोचन लालची ये ललचौंही बानि ॥२३८॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी मेरे नेत्र यद्यपि श्री कृष्ण की नख-सिख-की शोभा से परिपूर्ण हैं (सब अंगों का शोभा पूर्णतया देख चुके हैं) तो भी उनकी मुसुकान को चाहते हैं (उनका हास्य युक्त मुख देखना चाहते हैं)। ये मेरे लालची लोचन अपनी लोभी आदत नहीं छोड़ते।

अलंकार—विशेषोक्ति। (नख-शिख की शोभा से परिपूर्ण हैं तब भी भिक्षुक ही बने हैं)।

दो०—छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत अति दीनता दिखाय।
बलि बामन को ब्यौंत सुनि को बलि तुम्है पत्याय ॥२३९॥

शब्दार्थ—ब्यौंत=छलमयढंग। बलि=बलिहारी जाऊँ। पत्याय=प्रतीति करे।

भावार्थ—नायक फूल वगैरा तोड़वा देने के बहाने से नायिका को कुंज में चलने का अनुरोध करता है। इस पर नायिका परिहास करती है।

(विशेष)—बलि और वामन की कथा (वामन रूप से बलि के साथ जो छल तुमने किया है कि थोड़ा माँग कर सर्वस्व हरण किया) सुन कर मैं तुम पर बलिहार होती हूँ, तुम्हारा विश्वास कौन कर सकता है। तुम्हारी बानि है कि पहले खुशामद करके केवल छिगुनी छूने की प्रार्थना करते हो, पुनः छिगुनी छूपाते ही पहुँचा पकड़ लेते हो।

अलंकार—लोकोक्ति। (सं० अंगुलिदाने भुजं गिलसि)

दो०—नैना नेकु न मानहीं कितो कहौं समझाय।
तन मन हारे हू हँसे तिनसों कहा बसाय ॥२४०॥

(वचन)—पूर्वानुराग में सखी की शिक्षा सुनकर नायिका कहती है।

भावार्थ—मैंने बहुत कुछ समझा कर कहा, मगर मेरे नेत्र कुछ भी सीख नहीं मानते। तन और मन हारने पर भी ये नेत्र हँसते ही हैं (आनन्दित हैं, कुछ परवाह नहीं) तो इन पर क्या जोर चल सकता है।

अलंकार—विशेषोक्ति। (कितना समझाया पर मानते नहीं)।

दो०—लटकि लटकि लटकत चलत डटत मुकुट की छाँह।
चटक भस्यो नट मिलि गयो अटक भटक वट माँह ॥

शब्दार्थ—लटकना=झुकझुक कर चलना। डटना=देखना। चटक भस्यो=(१) फुर्तीला (२) कान्तिमान। नट=नटवर-वेष-धारी कृष्ण। वट=बाट (रास्ता)।

(वचन)-अनुरागिनी नायिका प्रथम प्रत्यक्ष दर्शन का हाल सखी से कहती है।

भावार्थ—झुक झुक कर चलता हुआ, और अपने मुकुट, की छाया देखता हुआ, वह फुर्तीला नट मुझ से रास्ते में मिल, अटकता चला गया।

(विशेष)—उपनागरिका वृत्ति में 'ट' का प्रयोग यहाँ सराहनीय है। अटकना, भटकना अनुभाव, अभिलाष संचारी भाव है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—फिरि फिरि बूझति कहि कहा कह्यो साँवरे गात।
कहा करत देखे कहाँ अली चली क्यों बात ॥२४२॥

(वचन)—"दूती प्रति नायिका का उत्सुकता पूर्वक पूछना" इस उत्सुकता की दशा का वर्णन सखी का सखी प्रति।

भावार्थ—बार बार पूछती है कि बतला तो उस साँवले शरीर वाले नायक ने क्या कहा है। कौन काम करते हुए तू ने उन्हें देखा, कहाँ देखा और मेरे बारे की वार्ता कैसे चली।

(विशेष)-उत्सुकता संचारी भाव है।(बिरह की प्रलाप दशा)

अलंकार—अत्युक्ति (प्रेम की)।

दो०-तो ही निरमोही लग्यो मो ही यहै सुभाव।
अनआये आवै नहीं आये आवत आव ॥२४३॥

शब्दार्थ—ही=मन। निरमोही=निर्दय।

(वचन)नायिका की पत्री नायक प्रति।

भावार्थ—तेरा मन निर्दय है, (संगति से) मेरे मन का भी यही स्वभाव हो गया है (मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है)। बिना तेरे आये वह (मेरा मन) आता नही, तेरे आने के साथ ही आता है, अतः अवश्य आओ।

अलकार-यमक (निरमोही और मोही में) लाटानुप्रास-(आवै, आये में)। प्रर्यायोक्ति(मन के बहाने नायक को बोलाना)

दो०-दुखहाइनि चरचा नहीं आनन आनन आन।
लगी फिरति ढूँका दिये कानन कानन कान ॥२४४॥

शब्दार्थ—दुखहाइनि=दुख देने वालीं। आनन=मुख। आनन=अन्यजनों की। आन=शपथ करके कहती हूं। ढूंका दिये फिरना=छिपकर सुनते फिरना।

(वचन)-सखी प्रति नायिका का वचन।

भावार्थ-हे सखी, मैं शपथ पूर्वक कहती हूं कि इन दुख देने वाली चवाइनोंके मुखमें अन्य जनोंकी चरचा ही नहीं आती

(सदैव मेरे ही प्रेम की चर्चा किया करती हैं) और हमारे विहार के वनों में छिप छिप कर कान लगाकर हमारी गोप्य वार्ता सुनने की चाह में लगी फिरती हैं ।

अलंकार—यमक ।

दो०—बहके सब जिय की कहत ठौर कुठौर लखे न ।
छिन औरै छिन और हैं ये छविछाके नैन ॥२४५॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, मेरे ये छवि का नशा पिये हुए नेत्र ऐसे बहक गये हैं (भ्रममें पड़ गये हैं) कि ठौर कुठौर नहीं देखते मनकी बात प्रगट कर देते हैं । इनकी दशा क्षण में कुछ और क्षण में कुछ और हो रही है ।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति ।

दो०—कहत सबै कवि कमल से मो मति नैन पषानु ।
नतरकु इन विय लगत कत उपजत बिरह कृशानु ॥२४६॥

शब्दार्थ—नतरकु = नहीं तो । विय=(सं० द्वि) दोनों । कत= क्यों । कृशानु=अग्नि ।

(वचन)—विरहमें नायिका-वचन सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, सब कवि लोग नेत्रोंको कमलकी समता देते हैं, परन्तु मेरे मत से तो ये पत्थर है । नहीं तो दो व्यक्तियों के नेत्र परस्पर टकराने से बिरह रूपी अग्नि क्यों पैदा होती है।

अलंकार—हेत्वपह्नुति ।

दो०—लाज लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिं ।
ये मुहँजोर तुरंग लौं ऐंचत हू चलि जाहिं ॥२४७॥

भावार्थ—हे सखी, ये मेरे नेत्र लाज रूपी लगाम को नहीं मानते, ये मेरे वश में नहीं हैं । ये मुँहजोर घोड़े की तरह

(वचन)—"दूती प्रति नायिका का उत्सुकता पूर्वक पूछना" इस उत्सुकता की दशा का वर्णन सखी का सखी प्रति।

भावार्थ—बार बार पूछती है कि बतला तो उस साँवले शरीर वाले नायक ने क्या कहा है। कौन काम करते हुए तू ने उन्हें देखा, कहाँ देखा और मेरे बारे की वार्ता कैसे चली।

(विशेष)-उत्सुकता संचारी भाव है।(बिरह की प्रलाप दशा)

अलंकार—अत्युक्ति (प्रेम की)।

दो०-तो ही निरमोही लग्यो मो ही यहै सुभाव।
अन आये आवै नहीं आये आवत आव ॥२४३॥

शब्दार्थ—ही=मन। निरमोही=निर्दय।

(वचन)नायिका की पत्री नायक प्रति।

भावार्थ—तेरा मन निर्दय है, (संगति से) मेरे मन का भी यही स्वभाव हो गया है (मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है)। बिना तेरे आये वह (मेरा मन) आता नहीं, तेरे आने के साथ ही आता है, अतः अवश्य आओ।

अलकार-यमक (निरमोही और मोही में) लाटानुप्रास-(आवै, आये में)। प्रर्यायोक्ति(मन के बहाने नायक को बोलाना)

दो०-दुखहाइनि चरचा नहीं आनन आनन आन।
लगी फिरति ढूँका दिये कानन कानन कान ॥२४४॥

शब्दार्थ—दुखहाइनि=दुख देने वाली। आनन=मुख। आनन=अन्यजनों की। आन=शपथ करके कहती हूं। ढूंका दिये फिरना=छिपकर सुनते फिरना।

(वचन)-सखी प्रति नायिका का वचन।

भावार्थ-हे सखी, मैं शपथ पूर्वक कहती हूं कि इन दुख देने वाली चवाइनोंके मुखमें अन्य जनोंकी चरचा ही नहीं आती

(सदैव मेरे ही प्रेम की चर्चा किया करती हैं।) और हमारे विहार के वनों में छिप छिप कर कान लगाकर हमारी गोप्य वार्ता सुनने की चाह में लगी फिरती हैं।

अलंकार—यमक।

दो०—बहके सब जिय की कहत ठौर कुठौर लखै न।
छिन औरै छिन और हैं ये छविछाके नैन ॥२४५॥

(वचन)–नायिका–वचन सखी प्रति।

भावार्थ–हे सखी, मेरे ये छवि का नशा पिये हुए नेत्र ऐसे बहक गये हैं (भ्रममें पड़ गये हैं) कि ठौर कुठौर नहीं देखते मनकी बात प्रगट कर देते हैं। इनकी दशा क्षण में कुछ और क्षण में कुछ और हो रही है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

दो०—कहत सबै कवि कमल से मो मति नैन पषानु।
नतरकु इन बिय लगत कत उपजत बिरह कृशानु ॥२४६॥

शब्दार्थ–नतरकु = नहीं तो। बिय=(सं० द्वि) दोनों। कत= क्यों। कृशानु=अग्नि।

(वचन)—विरहमें नायिका–वचन सखी प्रति।

भावार्थ–हे सखी, सब कवि लोग नेत्रोंको कमलकी समता देते हैं, परन्तु मेरे मत से तो ये पत्थर है। नहीं तो दो व्यक्तियों के नेत्र परस्पर टकराने से विरह रूपी अग्नि क्यों पैदा होती है।

अलंकार—हेत्वपह्नुति।

दो०—लाज लगाम न मानही नैना मो बस नाहिं।
ये मुहँजोर तुरंग लौं ऐंचत हू चलि जाहिं ॥२४७॥

भावार्थ—हे सखी, ये मेरे नेत्र लाज रूपी लगाम को नहीं मानते, ये मेरे बश में नहीं हैं। ये मुँहजोर घोड़े की तरह



लगाम खींचते रहने पर भी जिधर चाहते हैं चले जाते हैं।

अलंकार—रूपक और तीसरी विभावना से परिपुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—इन दुखियाँ अँखियान को सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते बिन देखे अकुलाहि ॥ २४८ ॥

(वचन)-मध्या परकीया नायिका। विरहकी उद्वेग दशा।

भावार्थ—हे सखी, इन मेरी दुखिया आँखोंके लिये सुख बनाया ही नहीं गया। क्योंकि जब नायक सामने मौजूद होता है और देखने का मौका होता है तब इन आखोंसे इच्छा भर देखते नही बनता (लज्जावश) और जब वह ओट में हो जाता है तब बिना देखे व्याकुल होती हैं (प्रेमके आधिक्य से)

अलकार—काव्यलिंग।

दो०—लरिका लैबेके मिसहिं लंगर मोढिग आय।
गयो अचानक आँगुरी छाती छैल छुवाय ॥ २४९ ॥

शब्दार्थ—लंगर=ढीठ।

भावार्थ—सरल है।

अलकार—पर्यायोक्ति (मिसकर कारज साधना)।

दो०—डगकु डगति सी चलि ठटकि चितई चली सँभारि।
लिये जाति चित चोरटी वहै गोरटी नारि ॥ २५० ॥

शब्दार्थ—डगकु=(डग+एक) एकडग, एकफाल। डगतिसी=डगमगातीसी। ठटकि=कुछ डरती सी। चोरटी=चोट्टी, चोरानेवाली। गोरटी=गौरांगी।

भावार्थ—(नायक बचन सखी प्रति) एक फाल डगमडाती हुई सी चलकर मेरी ओर कुछ ठिटककर देखा और फिर सँभल कर चलदी। देखो वही गौरांगी चोट्टी नायिका मेरा चित्त चोराये लिये जाती है।

अलंकार—छेकानुप्रास (चोरटी, गोरटी में)। सम्पूर्ण दोहा में स्वभावोक्ति।

दो०—चिलक चिकनई चटक स्यों लफति सटक लौं आय।
नारि सलोनी साँवरी नागिनि लौं डसि जाय ॥२५१॥

शब्दार्थ—चिलक=चमक। चिकनई=चिकनापन। चटक=तेजी, फुर्ती, चंचलता। स्यों=सहित। लफति=नवती है। सटक=बेंत वा बांस की मुलायम छड़ी।

(विशेष)-चिलक, चिकनाई, चटक और लफना गुण नागिन और नायिका दोनों में होते हैं। सांवरी शब्द इस कारण लिखा कि नागिन काली ही अच्छी होती है। गौरांगो नायिका की समता नागिनसे न बनती।

भावार्थ—चमक, स्निग्धता, और फुर्तीलेपन सहित बेत की तरह लफती हुई निकट आकर वह सलोनी और सांवली नायिका मेरे मनको नागिन की तरह डस जाती है।

अलंकार—पूर्णोपमा (समुच्चयोपमा—देखो अलंकार मंजूषा पृष्ठ ४६)।

दो०—रह्यौ मोह मिलनो रह्यो यों कहि गही मरोर।
उत दै सखिहिं उराहनो इत चितई मो ओर॥ २५२ ॥

शब्दार्थ—मोह=छोह, प्रेम। मरोर गही=मानसूचक मुद्रा बनाई। उराहनो=उपालंभ।

(विशेष)—नायक ने वचन विदग्धा और क्रिया विदग्धा नायिकाकी जिस चेष्टाको देखा है उसे स्मरण करके सखासे कह रहा है।

भावार्थ—हे सखा, उधर तो ये शब्द कहके कि "मोह छोह भी गया और मिलना भी एक ओर रहा" सखी को ओलहना दिया और इधर मानसूचक मुद्रा से मेरी ओर नज़र फेंकी,

(बस वह चेष्टा मुझे नहीं भूलती)।

(विशेष)—यहां स्मृति संचारी भाव है।

अलकार—गूढ़ोक्ति (औरै प्रति उद्देश्य कै कहै और सो बैन)

दो—नहिं नचाय चितवति चखन नहिं बोलति मुसुकाय।
ज्यों ज्यों रूखो रुख करति त्यौं त्यौं चित चिकनाय ॥२५३

(वचन)—सखी का कथन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली आज तू चंचल नेत्रों से नहीं देखती, न मुसकुराकर बोलती है (जैसे अन्य समय देखती बोलती थी) ज्यौं ज्यौं तू मेरे प्रति रुखाई प्रकट करती है त्यों त्यों तेरा चित्त किसी के प्रेम से चिकना होता जाता है।

अलंकार—पांचवीं बिभावना (बिरुद्ध कारण से कार्य-रुखाई से चिकनाहट)।

दो०—सहित सनेह सकोच सुख स्वेद कंप मुसुकानि।
प्रान पानि करि आपने पान धरे मो पानि ॥२५४॥

शब्दार्थ—सुख=हर्ष। पानि = हाथ।

(बचन)—नायक बचन सखी प्रति। (पान देते समय की नायिका की दशा)।

भावार्थ—हे सखी, प्रेम और संकोच सहित, हर्ष तथा स्वेद, कंप इत्यादि सात्विक भावों सहित, मुसकाकर, मेरे प्राण अपने हाथ में करके, उस (नायिका) ने मेरे हाथ में पान दिये।

(विशेष)—इसमें श्रृंगार रस की पूर्ण सामग्री देखने योग्य है। 'स्नेह' स्थायी भाव 'नायक नायिका' विभाव 'मुसकानि' कायिक अनुभाव, 'स्वेद, कंप' सात्विक अनुभाव, 'हर्ष' और व्रीड़ा संचारी भाव।

अलंकार—परिवृत (बिनिमय)। जहां अधिक औ न्यून को लीबो दीबो होय)।

दो०—चितवनि भोरे भाय की गोरे मुख मुसकानि।
लगनि लटकि आली गरे चित खटकति नित आनि॥२५५॥

शब्दार्थ—भोरे भाय की=भोलेपन की। खटकति=सालती है. दुःख देती है।

(वचन)—नायक वचन सखी प्रति (स्मरण दशा)।

भावार्थ—(उस नायिका की) वह भोलेपन की चितवन, वह गोरे मुख की हँसी और वह लटक लटक कर सखी के गले से लगना, ये चेष्टायें नित्य मेरे चित्त में खटका करती हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—छिन छिन में खटकति सुहिय खरी भीर में जात।
कहि जु चली अनही चितै ओठन ही विच बात॥२५६॥

शब्दार्थ—अनही चितै=विना देखे ही (मेरी ओर न देखकर)।

भावार्थ—हे सखी, उस दिन जो बड़ी भीड़ में जाते समय विना मेरी ओर देखे हुए ही अपने ओठों ही में कुछ बात कह कर चली गई थी वह बात प्रतिछिन मेरे हृदय मे खटकती है (कि वह कौनसी बात थी जो ओठों ही में कहकर चली गई)।

अलंकार—स्मरण।

दो०—चुनरी श्याम सतार नभ मुख ससि की अनुहारि।
नेह दबावत नींद लौं निरखि निसा सी नारि॥२५७॥

शब्दार्थ—सतार=तारों सहित। अनुहारि=समान।

भावार्थ—स्याम चूनरी तारों से भरा आकाश है और मुख चंद्रमा के समान है ही, रात्रि के समान इस नायिका को देख कर प्रेम नीद की तरह दबाता है (इसे देखकर इस पर आ-शक्ति पैदा होती है)।

अलंकार—पहले चरण में रूपक दूसरे में धर्मलुप्ता, तीसरे

में पूर्णोपमा, चौथे में धर्मलुप्ता (अलंकारों की इतनी भरमार करना बिहारी ही का काम है)।

दो०—मैं लै दयो लयो सु कर छुवत छनकि गो नीर।
लाल तिहारो अरगजा उर ह्वै लग्यो अबीर ॥२५८॥

शब्दार्थ—छनकि गो=भाफ बनकर उड़ गया (सूख गया)। अरगजा=कपूर, चंदन, कस्तूरी इत्यादि से बना हुआ लेप।

(वचन)—सखी बचन नायक प्रति, नायिका-विरह-वर्णन।

भावार्थ—हे लाल, तुम्हारा भेजा हुआ अरगजा मैं लेकर उसके पास गई और उसे दिया। उसने ज्यों ही उसे हाथ से छुवा कि तुरन्त ही उसका पानी सूख गया और वह अरगजा उसके शरीर में अबीर होकर लगा। (बिरह से इतनी गर्मी उसके शरीर में है)।

अलंकार—अत्युक्ति (बिरह की)।

दो०—तोपर बारों उरबसी सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वै उरबसी समान ॥२५९॥

शब्दार्थ—उरबसी=(१)अप्सरा विशेष। (२) धुकधुकी,

(वचन)—सखी बचन नायक की ओर से मानमनावन।

भावार्थ—हे राधिका, तू ऐसी चतुरा है कि जी चाहता है कि तुझ पर उरबसी को निछावर कर दूं, क्योंकि तू श्री कृष्णके हृदय में धुकधुकीके समान बसती है।

अलंकार—यमक (वहै शब्द फिरि फिरि परै अर्थ औरई और)

दो०—हँसि उतारि हिय तें दई तुम जु वाहि दिन लाल।
राखति प्रान कपूर ज्यों वहै चुहटनी माल ॥ २६० ॥

शब्दार्थ—चुहटनी=गुंजा, घुँघची।

(वचन)—दूती-वचन नायक प्रति। नायिका की ओर से विरह निवेदन।

भावार्थ—हे लाल, उस दिन जो तुमने हँसकर गुंजा की माला अपने हृदय से उतार कर उसे दी थी, वही गुंजमाला उसके कपूर रूपी प्राणों की रक्षा कर रही है (अर्थात् उसका सहारा न होता तो उसके प्राण कपूर की तरह उड़ गये होते)।

(विशेष)-कपूर को जब किसी अन्य वस्तु यथा लौंग, मिर्च, गुंजा इत्यादि का संग मिल जाता है तब वह नहीं उड़ता, अन्यथा शीघ्र ही उड़जाता है।

अलंकार-काव्यलिंग (गुंजमालमें प्राण रखनेकी सामर्थ्य प्राणोंको 'कपूर' कहकर आरोपितकी यही युक्ति से अर्थ-समर्थन है)।

दो०—रही लटू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप।
कितो मिठास दयो दई इते सलोने रूप ॥ २६१ ॥

शब्दार्थ—लट्टू होना = आशक्त होना। मिठास=माधुर्य। सलोना=सुन्दर (नमकीन)।

(वचन)—दूती-वचन नायक प्रति। नायिकाके रूपकी प्रशंसा करके प्रेम उत्पन्न कराती है।

भावार्थ—हे लाल, मैं तो उस अनुपम बाला को देख लट्टू हो रही हूँ। ईश्वर ने न जाने इतने सलोने रूप में कितता माधुर्य दिया है। (तात्पर्य यह है कि जब मैं स्त्री होकर उसके रूप पर लट्टू हो गई तो आप तो पुरुष हैं, न जाने देखने-पर तुम उसे कितना चाहोगे)।

अलंकार-पुर्वार्द्धमें संबंधातिशयोक्ति। उत्तरार्द्धमें विरोधाभास।

दो०—सोहति धोती सेत में कनक वरन तन बाल।
सारद-बारद-बीजुरी-भा रद कीजत लाल ॥२६२॥

शब्दार्थ—सारद-बारद = शरद ऋतुका बादल। बीजुरी-

भा=बिजलीकी आभा। रद कीजत=बेकाम कर देती है, मात कर देती है।

(वचन)-दूती-वचन नायक प्रति। नायिकाका सौन्दर्य वर्णन।

भावार्थ—हे लाल, वह सोने के से रंग वाली बाला जब सफेद धोती पहनती है, तब शरद ऋतु के बादल की बिजली की आभा को मात कर देती है।

अलंकार—प्रतीप और वृत्यनुप्रास

दो०—वारों बलि तो दृगनि पै अलि खंजन मृग मीन।
आधी डीठि चितौनि जिन किये लाल आधीन।२६३।

शब्दार्थ—वारों=निछावर करदूं। आधीन=वशीभूत।

भावार्थ—मैं बलिजाऊँ, तेरे उन नेत्रों पर भँवर, खंजन, मृग और मछली निछावर कर दूँ, जिन नेत्रों की आधी दृष्टि से तूने नायक को अपने वश में कर लिया है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में दूसरी तुल्ययोगिता। उत्तरार्द्ध में दूसरी विभावना (आधी दृष्टि से पूर्ण कार्य)।

दो०—देखत चूर कपूर ज्यौं उपै जाय जनि लाल।
छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल॥२६४।

शब्दार्थ—चूर=चूर्ण। उपैजाय=उड़जाय, बिलाय जाय।

(वचन)-दूती-वचन नायक प्रति। विरह निवेदन।

भावार्थ—हे लाल, ऐसा न हो कि देखते ही देखते कपूर के चूर्ण के समान विलीन हो जाय। वह छबीली बाल तुम्हारे विरह में प्रतिक्षण अति दुर्बल होती जाती है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में पूर्णोपमा। उत्तरार्द्ध में वीप्सा और छेकानुप्रास।

दो०—छिनकु छबीले लाल वह जौ लगि नहिं बतराय।
ऊख मयूख पियूष की तौ लगि भूख न जाय॥२६५॥

शब्दार्थ—मयूख=चंद्रकिरण । पियूष=अमृत ।

(वचन)—दूती नायिका की बोली की मिठास का वर्णन करके नायक का प्रेम उत्तेजित करती है ।

भावार्थ—हे लाल, जब तक वह नायिका एक क्षणमात्र बात नहीं कर लेती, तब तक ऊख, चंद्रकिरण और अमृत की भूख ही नहीं जाती (अर्थात् ऊख मयूख और अमृत भी उससे वार्ता करने के भूखे रहते है और वार्ता करते समय उसी के वचनों से मिठास ग्रहण करते हैं) ।

(विशेष)—जब ऊख, पियूष इत्यादि उससे वार्ता करने के भूखे रहते हैं और उसी की वाणी से मधुरता पाते हैं तब उसकी वाणी कितनी मीठी होगी अनुमान करने की बात है ।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति (ऊख, मयूख, पियूष के संबंध से वाणी में अतिशय माधुर्य जताया गया है) । उत्तरार्द्ध में वृत्त्यनुप्रास ।

दो०—नागरि विविध विलास तजि, बसी गँवेलिन माहिं ।
मूढ़नि में गनिबी कि तौ हूठ्यौ दै अठिलाहिं ॥२६६॥

शब्दार्थ—नागरि=कोई नगर निवासिनी चतुरा नायिका । गँवेली=(जैसे वन से बनैली, वैसेही गाँव से गँवेली) ग्राम निवासिनी स्त्रियां, गँवारिनैं । मूढ़नि में गनिबी=गाँववाली स्त्रियाँ तुझे मूर्खा ही समझैंगी । हूठ्यौ दै=गँवारनपना करके । अठिलाहिं=हँसती हैं, हँसी उड़ाती हैं ।

(नोट) देखो नोट दोहा नंबर ६९३ ।

(विशेष)—कवि एक सच्चा अनुभव वर्णन करता है । (जिस समाज में रहो वैसाही आचरण रक्खो) ।

भावार्थ—कोई चतुरा नागरी स्त्री नगर के अनेक प्रकार के

भोग विलास छोड़ कर किसी देहातमें गँवारिनोंमें जा बसी। वे गवारिनें उसे मूर्खा ही समझती हैं और गँवारपन से अठिलाती हैं अर्थात् उसकी हँसी उड़ाती हैं, अतः कवि कहता है कि तू मूर्खाओं में गिनी जायगी नहीं तो तू भी इन्हीं की तरह गँवारपन से अठिलाया कर।

अलंकार--विकल्प।

दो०—पियमन रुचि ह्वैबो कठिन तनरुचि होत सिंगार।
लाख करौ आँखि न बढ़ै बढ़ै बढाये बार॥ २६७॥

शब्दार्थ--तनरुचि=शरीरकी शोभा।

(विशेष)-सवति को शृंगार करते देख नायिका घबराई है कि कहीं ऐसा न हो कि नायक की रुचि इसकी ओर हो जाय। इस पर सखी समाधान करती है।

भावार्थ--नायकके मन में रुचि पैदा होना कठिन है। क्योंकि नायक तो प्रेम से वशीभूत होता है (शृंगार से नहीं) हां शृंगार से तनकी शोभा बढ़ जाती है। लाख उपाय करे आँख तो बढ़ेगी नहीं, बढ़ानेसे बाल बढ़ सकते हैं-(अर्थात स्वाभाविक सौंदर्य और नेत्र द्वारा प्रकट किया जाने वाला प्रेम तो बढ़ेगा नहीं और केवल सिंगार से नायक मोहित हो नहीं सकता, तू क्यों घबराती है)।

अलंकार--अर्थान्तरन्यास।

दो०—नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहिकाल।
अली कली ही सों बध्यो आगे कौन हवाल॥ २६८॥

शब्दार्थ--पराग=पुष्परज। मधु=मकरंद। विकास=प्रफुल्लता। अली=भौंरा। हवाल=दशा।

भावार्थ--न पराग है न मधुर मकरंद है, न इस समय




विकासही पूर्ण है और हे भ्रमर तू कली ही से बँध रहा है तो आगे (जब इस कली में पराग और मकरंद और पूर्ण विकास होगा) तब तेरी क्या दशा होगी।

अलंकार--अन्योक्ति।

(नोट)–यही दोहा इस ग्रंथ का मूल कारण माना जाता है।

दो०–टुनहाई सब टोल में रही जु सौति कहाय।
सु तैं ऐंचि प्यौ आपु त्यौं करी अदोखिल आय॥२६९॥

शब्दार्थ--टुनहाई=टोना करनेवाली। टोल=टोला, मोहल्ला। त्यौं=तरफ। अदोखिल=दोषरहित, निःकलंक।

(वचन)–नव वधू प्रति सखी–वचन। रूपकी प्रशंसा। (स्वाधीन पतिकी नायिका)।

भावार्थ--तेरी सवत समस्त मोहल्ला में जादूगरनी कहला रही थी (सबको अपने रूप पर मोहित कर लेती थी) सो तूने आकर और अपने पतिको अपनी ओर खींच कर (अपने रूपगुण पर आशक्त कराके) उसे कलंक रहित कर दिया।

अलंकार--उल्लास (अपने रूपगुण से सवतिको कलंक रहित कर दिया)।

दो०–देखत कछु कौतुक इतै देखौ नेकु निहारि।
कबकी इकटक डटि रही टटिया अँगुरिन फारि २७०

शब्दार्थ--कौतुक = तमाशा। डटि रही=देख रही है।

(विशेष)–पूर्वानुराग में परकीया नायिका नायक को देख रही है। यह दशा सखी नायकको दिखला रही है।

भावार्थ--हे लाल, यदि कुछ तमाशा देखना चाहते हो तो इधर नजर फैलाकर देख लो। अँगुलियोंसे टट्टीको फाड़कर बड़ी देरसे वह नायिका तुमको टकटकी लगाकर देख रही है।

अलंकार--स्वभावोक्ति।

दो०-लखि लोयन लोयननि को को इन होइ न आज।
कौन गरीब निवाजिबो कित तूठ्यौ रतिराज ।२७१॥

शब्दार्थ--लोयन=(लावण्यमय) सुन्दर । लोयननि= नेत्रों । को इन होय न=कौन इनका न हो जायगा। तूठ्यौ= तुष्ट हुआ है । रतिराज=कामदेव।

विशेष)—नायिका ने आंखों में काजल लगाया है।

भवार्थ—तेरे इन नेत्रों का लावण्य देखकर आज कौन इनके वशीभूत न होगा। कहिये आज किस गरीब पर कृपा होने वाली है और किस ओर कामदेव प्रसन्न हुआ है।

नोट—कोई कोई इस दोहा में कुलटा वा गणिका नायिका मानते हैं, पर हमारी सम्मति में यहां केवल सखी का परिहास है। नायिका स्वकीया ही है।

अलंकार—प्रथम चरण में यमक, द्वितीय में काकु और उत्तरार्द्ध में पर्यायोक्ति-("कछुरचना सों बात"-यहां वचन रचना से अति सौन्दर्य लक्षित है)।

दो०—मन न धरति मेरा कह्यो तू आपने सयान।
अहै परनि पर प्रेम की परहथ पारनि प्रान ॥ २७२॥

शब्दार्थ—सयान=चतुराई। परनि=पड़ना। परहथ=पराये हाथ में। पारनि=डालना, देना।

(वचन)—सखी की शिक्षा नवल वधू प्रति।

भावार्थ-अपनी चतुराईके वलपर तू मेरा कहना नहीं मानती (मैं मना करती हूँ कि पर पुरुषपर प्रेम न कर क्योंकि) पर पुरुषके प्रेममें पड़ना, अपने प्राण पराये हाथमें देना ही है।

अन्वय-पर प्रेम की परनि, परहथ प्रान-पारनि अहै।




अलंकार-हेतु (द्वितीय)

दो०-बचिकि न इहि बहिनापने जब तब बीर विनासु ।
बचै न बड़ी सबील हू चील्ह-घोंसुआ मांसु ॥ २७३ ॥

शब्दार्थ—बीर=मित्र (सखी) । सबील=यत्न, युक्ति। घोंसुआ=घोंसला ।

(विशेष)—किसी परकीया नायिका ने नायक की विवाहिता स्त्री से बहिनापा जोड़ा। इस संबंध पर विश्वास करके विवाहिता स्त्री नायक को उस परकीया के घर आने जाने से नही रोकती। इस पर विवाहिता की सखी कहती है।

भावार्थ-इस बहिनापा से धोखा मत खा, हे सखी, इससे कभी न कभी हानि हो जायगी। बहुत यत्न से भी चील्ह के घोंसले में मांस रक्षित नहीं रह सकता।

अलंकार—दृष्टान्त ।

दो०-मै तोसों कैवा कह्यौ तू जिनि इन्हैं पत्याय ।
लगालगी करि लोयननि उर मैं लाई लाय ॥२७४॥

शब्दार्थ--कैवा=कितने बार । पत्याय=विश्वास कर। लगालगी=रगड़, मिलन (यहां प्रेम की लगन)। लाई=लगाई। लाय=अग्नि।

(वचन)-पूर्वानुराग में परकीया नायिका प्रति सखी-वचन।

भावार्थ-मैं ने तुमसे कै बार कहा कि तू इन (नेत्रों) का विश्वास न करना। तू ने माना नहीं, देख आज वही नतीजा हुआ कि रगड़ तो खाई लोचनो ने (देखा देखी हुई आंखों से) और आग लगी हृदय में।

अलकार-असंगति (प्रथम)

दो०-तन सूको सांत्यो बनो ऊखौ लई उखारि।

अरी हरी अरहरि अजौं धर धरहरि हिय नारि ॥२७५॥

शब्दार्थ-सूको=सूख गया। बीत्यो=हो चुका, नष्ट हो चुका। बन=कपास के पेड़। धरहरि=धैर्य।

(बचन)-अनुशयाना नायिका प्रति सखी-बचन (नायिका ग्रामीण), सन, कपास और ऊखके खेतोंको कटतेहुए देख संकेत नष्ट होने का शोच करने वाली नायिकाको समाधान करती है।

भावार्थ—सन का खेत सूख गया, कपास का खेत भी नष्ट हो चुका और ऊख भी काट ली गई तो क्या हुआ, अरहर तो अब भी हरी है, अतः जी में धीरज धर (घबरा मत)।

अलंकार-काव्यलिंग। धीरज धरने का कारण युक्ति से बतलाती है)।

(विशेष)-कोई कोई इस दोहे में मानिनी नायिका मानते हैं। उस दशा में दूती का बचन नायिका प्रति है। सारी रात मनाते मनाते भोर हो गया है, उषःकाल हो आया है, दूती कहती है कि अब भी हठ छोड़ कर कृष्ण को हृदय से लगा ले। इस अर्थ के लिये शब्दार्थ यों है:—

सन=शनि। सूको=शुक्र भी। बीत्यो=अस्त हो गये। बनौ=श्रृंगार साजो। ऊखौ लई उखारि=उषःकाल भी प्रकाशित होने लगा। अरी=हे (संबोधन)। हरी अर=ताजीहठ। हरि=छोड़कर। अजौं=अब भी, इस समय भी। धर धर=(विप्सा से) धारण कर। हरि=कृष्ण को।

भावार्थ-शनि और शुक्र अस्त हो चुके (सारी रात तो बीत चुकी) उषःकाल भी प्रकाशित हो आया। अब श्रृंगार करो और ताजी हठ छोड़ कर हे सखी अब भी श्रीकृष्ण को हृदय में धारण कर अर्थात् हृदय से लगा ले।

अलंकार-छेकानुप्रास।




दो०—जौ वाके तन की दशा देखो चाहत आप ।
नौ चलि नेकु बिलोकिये चलि अचकां चुपचाप ॥२७६॥

शब्दार्थ—अचकां=अचानक ।

(वचन)-दूती-वचन नायक प्रति । विरह निवेदन ।

भावार्थ—सरल ।

(विशेष)-चुपचाप से तात्पर्य यह कि वह तुम्हारा आगमन न जानने पावै नहीं तो हर्ष से फूल उठैगी और उसकी दुर्बलता का तुमको अनुभव न होगा ।

अलंकार-संभावना । (जो, तो शब्दों से स्पष्ट है) ।

दो०—कहा कहौं वाकी दसा हरि प्रानन के ईस ।
विरह ज्वाल जरिबो लखे मरिबो भयो असीस ॥२७७॥

भावार्थ-हे प्राणेश कृष्ण, उसकी दशा मैं क्या कहूं । उसे विरहकी ज्वालासे जलतेहुए देख, मरना आशीर्वादसा होगया है ।

अलंकार-लेश-(बुराई को भलाई जानती है, मरने को असीस मानती है) ।

दो०—नेकु न जानी परति यों पर्यौ विरह तन छाम ।
उठति दिया लौं नादि हरि लिये तिहारो नाम ॥२७८॥

शब्दार्थ-छाम = दुबला । नादि उठति=चैतन्य हो जाती है ।

भावार्थ—हे कृष्ण, राधिका का शरीर विरह में इतना दुर्बल हो गया है कि बिछौने पर पड़ी हुई मालूम ही नहीं होती कि वह है, केवल तुम्हारा नाम लेने से बुझते दिया की तरह प्रकाशित (चैतन्य) हो उठती है ।

अलंकार—पूर्णोपमा ।

दो०—दियो सो सीस चढ़ाय लै आछी भांति अएरि ।
जापै सुख चाहत लियो ताके दुखहिं न फेरि ॥२७९॥

शब्दार्थ—अपरना=अंगीकार करना।

भावार्थ—जो कुछ ईश्वर ने दिया है (कष्ट वा विपद) उसे अच्छी तरह से अंगीकार करके अपने शीश पर चढ़ाले जिससे सुख चाहते हो उसके दिये हुए दुःख को लौटा मत।

(वशेप)—इसका अर्थ शृंगार रस में भी लग सकता है- सखी-वचन विरहिनी नायिका प्रति।

अलंकार—विचित्र (जहां करत उद्यम कछू फल चाहत विपरीत) सुख चाहते हो तो पहले दुःख सहो।

दो०—कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट कहूँ मुकुट बनमाल ॥ २८०॥

शब्दार्थ—लड़ैते=लाड़िले। लाल=कृष्ण। बेहाल=व्याकुल।

(वचन)—दूती-बचन नायिका प्रति। नायक का विरह निवेदन।

(विशेष)—दम्पति आलंबन, सखी उद्दीपन, (मूर्च्छा दशा) जड़ता संचारी। बेहाल पड़े अनुभाव। रति स्थायी। वियोग शृंगार की पूर्ण सामग्री।

भावार्थ—तूने अपने नेत्रों को कैसा लाड़िला कर दिया है। तेरे नेत्रों के मारे (नेत्रों की सुन्दरता देख) कृष्ण बेहाल पड़े हैं। मुरली, पीताम्बर, मुकुट और बनमाल किसी की सुध नहीं कि कहां हैं।

अलंकार—व्याजस्तुति।

दो०—तू मोहन मन गड़ि रही गाढी गड़नि गुवालि।
उठै सदां नटसाल लौं सौतिन के उर सालि ॥२८१॥

शब्दार्थ—मोहन=जो सब को मोहता है अर्थात् श्रीकृष्ण। गडि रही=बसती है। गाढ़ी गड़नि=सुदृढ़ता से। गुवालि=ग्वा

लिन। नटसाल = तीर की नोक का वह भाग जो कटकर घाव के भीतर रह जाता है। सालि उठै=पीड़ा देती है।

(वचन)—सखी नायिका की प्रशंसा करती है।

भावार्थ—हे ग्वालिन तू कृष्ण के मन में ऐसी गाढ़ी गड़नि से गड़ी है, कि सौतियों के हृदय में टूटी गाँसी की तरह पीड़ा दे उठती है।

अलंकार—पूर्णोपमा से पुष्ट की गई असंगति।

दो०—बड़े कहावत आप को गरुवे गोपीनाथ।
तौ बदिहौं जो राखिहौ हाथन लखि मन हाथ ॥२८२॥

शब्दार्थ—बदिहौं=तुम्हारा बड़प्पन मान लूंगी।

भावार्थ—हे गोपीनाथ आप अपने को सब से बड़े और भारी वजन वाले (प्रतिष्ठित) कहलवाते हो। जब उसके हाथों को देखकर तुम अपना मन अपने हाथ में रख लोगे तब मैं तुम्हारा बड़प्पन मानूंगी।

(वचन)—दूती नायिका के हाथों की प्रशंसा करके नायक को प्रेम के लिये उत्तेजित करती है।

अलंकार—संभावना।

दो०—रही दहेड़ी ढिग धरी भरी मथनिया बारि।
फेरति करि उलटी रई नई बिलोवनिहारि ॥२८३॥

शब्दार्थ—मथनिया = वह मटकी जिसमें दही डाल कर मथते हैं। रई=मथानी, जिससे दही मथा जाता है।

(विशेष)-नवीन अनुराग में नायिका को 'विभ्रम' हाव हुआ है। नायक कहीं निकट ही है। उसे देखकर नायिका की जो दशा हुई है वही दशा कोई सखी अन्य सखी प्रति कहती है। दम्पति आलंबन भाव, विभ्रम हाव अनुभाव, मोह संचारी-



भाव, रतिस्थायी। वियोग शृंगार की पूर्ण सामग्री। अथवा नायिका प्रति ही किसी सखी का वचन हो सकता है)।

भावार्थ—हे सखी, उस अनोखी दही मथनेवाली का हाल सुन। दही की भरी मटकी तो निकट ही रक्खी रही। मथनी में पानी भरा और उलटी मथनी से उसी को मथती रही-(नायकको देख देखकर उसे ऐसा बिभ्रम हुआ)।

अलकार—भ्रान्ति।

दो०—कोरि जतन करिये तऊ नागरि नेहु दुरै न
कहे देत चित चीकनो नई रुखाई नैन ॥२८४॥

शब्दार्थ—कोरि=करोड़। चीकनो=स्नेह युक्त। रुखाई=अनखान, क्रुद्ध होना।

(वचन)—सखी-वचन नायिका प्रति अथवा खंडिता नायिका का बचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे नागरी (चतुर) करोड़ यत्न करो तो भी प्रेम छिपता नहीं। यह नई अर्थात् बनावटी रुखाई ही कहे देती है कि तुम्हारा चित्त स्नेह से स्निग्ध है।

अलकार—पूर्वार्द्ध में तीसरी विभावना, उत्तरार्द्ध में पांचवीं बिभावना।

दो०—पूछे क्यौं रूखी परति सगिबगि रही सनेह ॥
मन मोहन छवि पर कटी कहै कँटयानी देह ॥२८५॥

शब्दार्थ—रूखी परति=क्रुद्ध होती है। सगिबगि रही=शराबोर हो रही है। कटी=रीझी है। कट्यानी देह=कंटकित (रोमांचित) शरीर।

(वचन)—सखी का नायिका प्रति।

भावार्थ—पूंछने पर क्रुद्ध क्यों होती है, प्रेम में तो शराबोर



हो रहा है। तू कृष्ण की छवि पर रीझी है, यह बात तो तेरा रोमांचित शरीर ही कहे देता है।

अलंकार—अनुमान प्रमाण।

दो०—तूमति मानै मुकुतई किये कपट बत कोटि।
जौ गुनही तौ राखिये आंखिन माहि अँगोटि ॥२८६॥

शब्दार्थ—मुकुतई = छुटकारा, जुदाई। बत=बात। गुनही= गुनहगार, दोषी। अँगोटि राखिये = बंद कर रखिये, कैद कर रखिये।

(वचन)—शठ नायक का बचन मानिनी नायिका प्रति।

भावार्थ—हे प्रिया, तू ऐसा मत जान कि मैंने तुझसे प्रेम छोड़ दिया है, लोगोंने तुझसे अनेक कपटकी बातेंकी है (लोगोंकी कपट मय बातोंसे मेरी ओरसे तुझे शंका पैदा हो गई है) इतने पर भी यदि तू मुझे गुनहगार ही समझती है तो अपनी आँखों में मुझे बंद कर रख (नजर बंद रक्खो)

अलंकार—पर्यायोक्ति (कछु रचना सों बात)।

(नोट)—इस दोहे का अर्थ "ज्यों गुनही त्यों" पाठान्तर करनेसे शान्त रस में भी लग सकता है। कोई सगुण ब्रह्मका उपासक हेतुवादी विद्वानसे कहता है कि:—

भावार्थ—चातुर्यमय (कपटमय) करोड़ बातों के करनेसे भी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती (तुम ऐसा मत मानो कि चतुराई की बातों से मुक्ति हो जायगी) ईश्वरके सगुण रूप को गुनहगार की तरह आंखोंमें कैद करना चाहिये, तब मुक्ति होगी (अर्थात् सगुण रूप परमेश्वर—रामकृष्ण इत्यादि की छवि को सदा आखों में रखना चाहिये)।

अलंकार—उपमेय लुप्ता।

दो०—बाल बेलि सूखी सुखद यहि रूखे रुख घाम।

फेरि डहडही कीजिये सुरस सींचि घनस्याम ॥२८७॥

शब्दार्थ–डहडही=हरी। सुरस=(१) प्रेम (२) सुष्टु जल। घनश्याम=(१) कृष्ण (२) काला मेघ।

(वचन)—मानी नायक प्रति नायिका की दूती का वचन।

भावार्थ–हे सुखद (सुखदायक नायक) वह बेलि रूपी बाला तुम्हारे इस मान रूपी घामसे सूख रही है। सो हे घनश्याम अपने प्रेमरूपी जलसे सींच कर उसे फिर हरी (सरसब्ज) कीजिये।

अलंकार–'बाल बेलि और रूखे रुख घाम' में रूपक। रस और घनश्याम' में श्लेष। 'घनश्याम' को मुख्यता देने से यहां परिकुरांकुर मानना चाहिये।

दो०—हरि हरि बरिबरि करि उठत करि करि थकी उपाय।
वाको जुर बलि वैद्य जू तो रस जाय तु जाय ॥२८८॥

शब्दार्थ–बरिबरि करि उठति=बड़बड़ा उठती है। जुर=ज्वर, बोखार। रस=(१) ओषध (२) प्रेम (संयोग)। तु=तो।

(वचन)--बिरहकी व्याधिदशाका वर्णन, दूतीवचन नायक प्रति।

भावार्थ–हरि हरि शब्द कह कर बड़बड़ा उठती है, मैं तो उपाय कर कर हार गई। मैं बलिजाऊँ हे वैद्यजी उसका ज्वर तुम्हारे रस (प्रेम) से शायद शान्त हो जाय।

अलंकार–पूर्वार्द्धमें विप्सा और अनुप्रास, उत्तरार्द्धमें संभावना।

दो०—तू रहि सखि हौं ही लखौं चढ़ि न अटा बलि बाल।
सब ही बिनु ससि ही उदै दै हैं अरघु अकाल ॥२८९॥

शब्दार्थ–अरघु=अर्घ्यपाद। अकाल=बेवक्त, समय से पहले।

(वचन)–सखी-वचन नायिका प्रति। रूपकी प्रशंसा व्यंग्य।

भावार्थ—मैं बलि जाऊँ हे बाला तू अटारी पर मत चढ़,




तू यही रह, हे सखी मैं ही चढ़कर देखती हूं (कि चंद्रमा उदय हुआ कि नहीं ,' तेरे चढ़ने से सब स्त्रियां यही जानेंगी कि चद्रमा उदय हो आया और)' विना चन्द्रोदय हुए ही असमय सब अर्घ देने लगेंगी (अतः उनका व्रत भंग हो जायगा ।

(विशेष)–माघ वदी ४ को संकठचौथ का व्रत स्त्रियाँ करती हैं और चंद्रोदय होने पर अर्घ देकर गणेश का पूजन करके फलाहार करती हैं।

अलङ्कार—पर्यायोक्ति (कछु रचना सों वात—व्यंग से रूप की अधिकाई)।

दो०–दियो अरघ नीचे चलौ संकट भानैं जाय।
सुचिती ह्वै औरो सबै ससिहिं विलोकैं आय ॥२९०॥

शब्दार्थ—संकट भानै जाय = जाकर संकठ चौथ का व्रत तोड़ें अर्थात् जाकर फलाहार करें (भूखसे सब व्याकुलहोंगी)। भानना=भंग करना,(तोड़ना,रोजा तोड़ना इत्यादि)। सुचित्ती= सावधान। औरौ सबै = अन्य स्त्रियाँ भी।

(वचन)—सखी का नायिका प्रति। रूप की प्रशंसा।

भावार्थ–हे सखी हम अर्घ दे चुकीं अब अटारी से नीचे चलो, चलकर फलाहार करें, और अन्य स्त्रियाँ भी सावधान होकर चंद्रमा को आकर देखें और पूजन करें (अर्थात् तुम्हारे मुख चंद्र को देख कर सबको संदेह होता है कि चौथ के दिन यह पूर्ण चन्द्र कहाँ से उदय हुआ, अतः सब दुचित्ती हैं)।

अलंकार–पर्यायोक्ति (कछु रचना सों बात)।

दो०–वे ठाढे उमदाहु उत जल न बुझै बड़वागि।
जाही सों लाग्यों हियो ताही के हिय लागि ॥२९१॥

शब्दार्थ—उमदाहु=उन्मत्तकी सी चेष्टा करो। लाग्योहियो= प्रेम लगा है।



भावार्थ—देख, वे (नायक) वह खड़े हैं, उसीओर उन्मत्त की सी चेष्टा कर, (मुझसे क्यों लपटाती है) जलसे बड़वाग्नि नहीं बुझती (मैं तेरी अभिलाषा पूर्ण न कर सकूंगी), जिससे मन लगा है, उसी की छाती से लग (तो कामना पूर्ण हो)।

दो०—अहे कहे न कहा कह्यो तो सों नन्दकिसोर।
बड़बोली कत होत बलि बडे दृगनिके जोर॥२९२॥

शब्दार्थ—बड़बोली = बड़ी बात कहने वाली, ऐसी बात कहने वाली जो उचित नहीं है।

(विशेष)—कोई कलहान्तरिता नायिका खेद युक्त चुपचाप वैठी है। सखी उससे पूछती है।

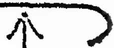
भावार्थ—हे सखी बतलाती क्यों नहीं तुझसे कृष्ण ने क्या कहा है जिससे तू खेदित हो रही है। अपने बड़े बड़े नेत्रों के बल पर, मैं बलिहारी जाऊँ, तू क्यों इतनी बड़बोली होती जाती है कि कृष्ण को अनुचित बात कह कर रुठा देती है और फिर पछताती है।

(अथवा)

प्रेम गर्विता नायिका है। कृष्ण से बात चीत करने का सौभाग्य प्राप्त होने पर घमंड हुआ है। किसीसे सीधे बोलती ही नहीं इसपर सखी का कथन है कि कृष्ण ने ऐसी कौनसी बात तुझसे कही है कि तू इतना घमंड करती है कि किसी से सीधे बात नहीं करती। बड़ो आंखों (सौन्दर्य) के बल पर इतनी बड़बोली क्यों होती है?

अलंकार—लोकोक्ति।

दो०—मैं यह तोही में लखी भगति अपूरब बाल।
लहि प्रसादमाला जु भौ तन कदम्ब की माल।२९३।




शब्दार्थ—भगति = भक्ति। अपूरव=(अपूर्व) जो पहले देखी न गई हो। तन कदम्ब की माल भो=शरीर रोमांचित हो उठा।

(विशेष)—किसी अन्तरंगा सखी ने नायक की भेजी हुई माला बहिरंगा सखियों के सामने ठाकुर जी की प्रसादमाला कह कर नायिका को दी है। नायक की माला पाकर नायिका को रोमांच हुआ। रोमांच देख मर्म समझ कर कोई बहिरंगा सखी परिहास करती है। नायिका लज्जिता।

भावार्थ – हे बाला मैंने ऐसी अपूर्व भक्ति तुझी में देखी कि ठाकुर जी की प्रसादमाला पाकर तुझे रोमांच हो आया (अर्थात् कम उम्र स्त्रियों में ठाकुर जी की ऐसी भक्ति होना अपूर्व ही है, हां वृद्धा स्त्रियों में हो सकती है)।

अलंकार—धर्म वाचक लुप्तोपमा।

दो०—ढोरी लाई सुनन की कहि गोरी मुसुकात।
थोरी थोरी सकुच सों भोरी भोरी बात ॥२९४॥

शब्दार्थ—ढोरी=बानि, आदत। लाई=लगाली है। सकुच=लज्जा।

(अन्वय)—सकुच सों थोरी थोरी भोरी भोरी बात कहि गोरी मुसुकात, ताहि सुनन की मैं ढोरी लाई।

(वचन)—दूती का नायक प्रति। मुग्धा की प्रशंसा करके प्रेम कराना चाहती है।

भावार्थ—लज्जा युक्त होकर थोड़ी सी भोली बातें जो वह गोरी नायिका कहती और मुसुकाती है (उसकी इस चेष्टा में मुझे ऐसा मजा आता है कि) मैने उसकी बातें सुनने की बानि लगा ली है (अर्थात् मैं स्त्री होकर जब उसकी इस चेष्टा से इतनी आनन्दित होती हूं, तो आप तो पुरुष हैं, आप न जाने कितना मजा पा सकते हैं)।

अलंकार—छेकानुप्रास और विप्सा।



दो०—चित दै चितै चकोर त्यों तीजे भजै न भूख।
चिनगी चुगै अँगार की चुगै कि चन्द मयूख ॥२९५॥

शब्दार्थ—चितै = देख। त्यों = तरफ। तीजे भजै न भूख = भूख में भी तीसरी वस्तु पर मन नहीं चलाता। मयूख=किरण।

(वचन)—मानिनी नायिका प्रति नायक की सखी का बचन। मानमोचन उद्देश।

भावार्थ—हे लाड़िली! चित्त देकर चकोर की ओर देखो (तुम्हारे मुखचन्द्र का चकोर तुम्हारे सामने खड़ा है और उसकी दशा ठीक चकोर की सी ही है) कि वह भूख के समय भी तीसरे को नहीं भजता। या तो अंगार की चिनगी ही चुगता है या चन्द्र की किरणों को ही चूसता है (अर्थात् या तो तुम्हरी विरहाग्नि से दग्ध ही हो जायगा या तुम्हारे मुखचन्द्र के दर्शन से परितृप्ति ही प्राप्त करेगा)।

(विशेष)—अन्योक्ति अलंकार मान कर भी इसका अर्थ हो सकता है।

अलंकार—अनुप्रास, पदार्थवृत्त दीपक और विकल्प।

दो०—कब की ध्यान लगी लखौ यह घर लगिहै काहि।
डरियत भृंगी कीट लौं जिन वहई ह्वै जाहि ॥२९६॥

शब्दार्थ—यह घर लगिहै काहि=इस घरकी संभार कौन करेगा। इस तरह की चाल से तो यह घर ही बरबाद हो जायगा। भृङ्गी=एक पंखदार कीड़ा जो अन्य छोटे २ कीड़ों को पकड़ कर अपनी गुफा में रखता है और उस पर इतना भनभनाता है कि उसके भय से वह छोटा कीड़ा उसीके ध्यान में तल्लीन होकर वही रूप धारण कर भृङ्गी ही हो जाता है। इसका वर्णन योग और साहित्य में बहुधा आया है (भइ गति

कीट भृङ्गि की नाईं। जहँ तहँ मैं देखे रघुराई—तुलसी)

(वचन)—पूर्वानुराग में नायिका की दशा का वर्णन, सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—देख सखी यह नायिका कब से नायक के ध्यान में निमग्न है और घरके काम काज का कुछ ध्यान ही नहीं है। यदि ऐसी ही दशा रही तो इसके घरको संभार कौन करैगा। मुझे तो डर है कि कीटभृङ्गी-न्याय से यह नायिका कहीं नायक ही न हो जाय।

अलकार—लोकोक्ति।

दो०—रही अचल सी है मनो लिखी चित्र की आहि।
तजे लाज डर लोक को कहौ विलोकति काहि।२९७।

शब्दार्थ—अचल=जड़वत्। चित्र=तसवीर। लोक=घरकेलोग।

(वचन)—सखी-वचन। पूर्वानुरागिनी नायिका प्रति, चित्र दर्शन समय।

भावार्थ—हे सखी तू जड़वत् हो रही है (न हिलती है न डोलती है) लोगों का डर और संसार की लज्जा छोड़ कर कहो तो किसको देख रही हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो०—ठाढी मन्दिर पै लखै मोहन दुति सुकुमारि।
तन थाके हू ना थके चख चित चतुरि निहारि २९८

शब्दार्थ—दुति=छवि। सुकुमारि=नायिका। चख=नेत्र।

(वचन)—पूर्वानुराग में नायिका की दशा का वर्णन। सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे चतुर सखी देख, यह सुकुमारी नायिका (जो नज़ाकत के कारण बहुत देर तक खड़ी नहीं रह सकती)



आज मकान की अटारी पर खड़ी अपने मनमोहन की छबि देख रही है और शरीर के थक जाने पर भी उसके नेत्र और मन नहीं थकते।

नोट—इस दोहे में शृंगार की पूर्ण सामग्री मौजूद है और रूप छवि की सच्ची परिभाषा भी है। रूप छबि वही है जिस को देखते हुए नेत्रों और मन को कभी भी तृप्ति न हो।

अलंकार—विशेषोक्ति।

दो०—पल न चलै जकि सी रही थकि सी रही उसास।
अबही तन रितयो कहा मन पठयो केहि पास॥२९९॥

शब्दार्थ—पल न चलै=पलक नहीं हिलती, अनिमेष हो रही है। जकिसी रही=भय भीत सी हो गई है। उसास=प्रश्वास। रितयो=खाली कर दिया।

(वचन)—परकीया नायिका नायक को टकटकी लगाकर देख रही है, इस पर सखी मज़ाक करती है।

भावार्थ—तेरी पलकें नहीं चलतीं, तू अनिमेष हो रही है, और सांस भी थक सी गई है, (प्रश्वास नहीं चलती) अभी इतने ही में (केवल देखने मात्र से) शरीर को चेतनता से खाली कर दिया (धीरज और सावधानी छोड़ दी) कहो मन को किसके पास भेज दिया है।

अलंकार—अनुक्तास्पद वस्तूत्प्रेक्षा (जकिसी, थकिसी इत्यादि में)

दो०—नाक मोरि सीवी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै पिय कँकरीली गैल॥३००॥

शब्दार्थ—नाक मोरि=नाक मोड़ मोड़ कर, नाक सिकोड़ कर। सीवी=सीत्कार, सी सी का शब्द। जितै=जितना ही।




छबीली छैल = (छैल छबीली) बनी ठनी, सजी बजी स्त्री। पिय = नायक।

(विशेष)—स्वकीया नायिका का अपने पति पर इतना अधिक प्रेम है कि नायक के पैर में कंकड़ी गड़ने से उसे पीड़ा का अनुभव होता है और वह नाक मरोड़ कर सी सी करती है, पर उसकी यह चेष्टा (नाक मरोड़ना और सीत्कार) नायक को अति प्रिय लगती है। इसी भाव का प्रदर्शन इस दोहे में है।

नोट—नायिका और नायक सजे बजे, परन्तु नंगे पैर देव-पूजन हेत जा रहे हैं। रास्ते का कुछ हिस्सा कँकरीला है कुछ अच्छा। प्रेम वश नायक नायिका को अच्छे भाग से चलाकर आप कँकरीले रास्ते से चलता है। कंकड़ी गड़ने से नायक अच्छी तरह चल नहीं सकता, कष्ट के अनुभव से डगमगाता है। इससे प्रेमपूर्णा नायिका को कष्ट होता है और वह नाक सिकोड़ २ कर सीत्कार करती है। नायक को नायिका की यह चेष्टा पसन्द आती है और वह उस चेष्टा पर विमुग्ध होकर भूल भूल कर कँकरीली ही गैलसे चलता है।

भावार्थ—नाक मरोड़ कर वह सजी बजी बांकी छैल छबीली नायिका जितना ही सीत्कार शब्द करती है उतना ही नायक विमुग्ध होकर रास्ता भूल भूल कर बार बार कंकरीला रास्ता ही ग्रहण करता है (क्योंकि वह चेष्टा उसे अच्छी लगती है)।

अलंकार—असंगति (चोट लगे नायक के पैर में, कष्ट का अनुभव हो नायिका के हृदय में)।



चौथा शतक ।

दो०—हित करि तुम पठयो लगे वा बिजना की बाय ।

टरी नपनि तनकी तऊ चली पसीने न्हाय ॥३०१॥

शब्दार्थ—हित = प्रेम । बिजना = पंखा । बाय = हवा ।

भावार्थ—प्रेम पूर्वक जो पंखा तुमने भेजा था, उसकी हवा लगने से उसके तनकी विरह-जनित ताप मिट गई, पर तो भी वह पसीने से शराबोर हो गई ।

(विशेष)—प्यारे का पंखा है, इससे हर्ष संचारी, स्वेद सात्विक भाव ।

अलकार—पंचम विभावना ।

दो०—नाम सुनत ही ह्वै गयो तन औरै मन और ।

दबै नहीं चित चढि रह्यौ अबै चढ़ाये त्यौर ॥३०२॥

शब्दार्थ—दबै नहीं=छिपता नही है । त्यौर चढ़ाना=भौंह चढ़ाना, क्रुद्ध होना ।

(वचन)—सखी-वचन नायिका प्रति ।

भावार्थ—हे लाड़िली, नायक का नाम सुनते ही तेरा तन पुलकित और मन हर्षित हो उठा, इससे मैं जान गई कि वह नायक तेरे चित्तमें चढ़ा है, अब त्यौरी चढ़ानेसे यह बात छिपेगी नहीं।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति ।

दो०—नैंकौ उहि न जुदी करी हरषि जु दी तुम माल ।

उरतें बास छुट्यो नहीं बास छुटे हू लाल ॥ ३०३ ॥

शब्दार्थ—जुदी=अलग, पृथक् । बास=निवास, बसेरा बास = सुगंध ।

(वचन)–सखी–वचन नायक प्रति।

भावार्थ–हे लाल, तुमने प्रसन्न होकर जो माला उसको दी थी, उसको उसने अपने गले से थोड़ी देर के लिए भी अलग नहीं किया। सुगंध जाते रहने पर भी अब तक उस सूखी और गंध रहित माला का स्थान हृदय से नहीं छूटा (अब तक पहने है)।

अलंकार—यमक और विरोधाभास।

दो०–सरसत पोंछत लखि रहत लगि कपोल के ध्यान।
कर लै प्यौ पाटल विमल प्यारी पठये पान ॥३०४॥

शब्दार्थ—सरसत = रसयुक्त अर्थात् प्रेमयुक्त हो जाता है, अनुराग प्रकट करता है। लगि कपोल के ध्यान=गालों के ध्यान में लगकर (गालों का स्मरण करके)। पाटल विमल= गुलाब–पुष्प की पत्ती की तरह गुलाबी और निर्मल। (किसी प्रति में 'सरसत' के स्थान में 'परसत' भी पाठ है)।

(वचन)—सखी का वचन सखी प्रति नायक की दशा वर्णन

भावार्थ—हे सखी, प्यारी ने जो सुन्दर गुलाबी और निर्मल पान भेजे हैं, उनको नायक हाथ में लेकर अनुराग से परिपूर्ण हो जाता है। उन पानों को देखकर उसे नायिका के कपोलों का स्मरण हो आता है तो कभी उन्हें पोंछता है कभी टकटकी लगा कर उन्हें देखता है।

अलंकार—स्मरण। श्रुत्यनुप्रास।

दो०–मन मोहन सों मोह करि तू घनश्याम निहारि।
कुंजबिहारी सों विहरि गिरिधारी उर धारि ॥३०५॥

(वचन)—(निज मन प्रति किसी भक्त का वचन)।

भावार्थ—हे मन तू मोहन (कृष्ण) से प्रेम कर उन

सुन्दर घनवत् श्याम शरीर की छवि को (ध्यानमें) देखाकर। (तू चंचल है और चंचलता ही करता है तो) वे कुंजों में विहार करने वाले हैं, उन्ही के साथ साथ विचरा कर, (तू अपने को बड़ा वली समझता है और भारी वोझ उठाने का साहसी है तो) वे गिरिधारी हैं, उन्हीं को हृदय में धारण कर।

(विशेष)--कोई कोई इसका अर्थ शृंगार रस में भी लगाते हैं। इस अर्थ में दूती का वचन मानवती नायिका प्रति होगा। अर्थ यह होगाः—

हे लाड़िली, तू काले बादलों को देख (अर्थात् वर्षा ऋतु आ गई, अब काम अधिक सतावैगा, अत:) अब तो मनमोहन (नायक) से प्रेम कर (मान छोड़ कर)। कुंजविहारी के साथ कुंजों में विहार कर और उनको अपने गिरिवत उन्नत कुचधारण करनेवाले उर (छाती) पर धारण कर अर्थात् छाती से लगाले।

अलकार—परिकरांकुर।

दो०—मोहि भरोसो रीझि है उझकि झांकि इकबार।
रूप रिझावनहार वह ये नैना रिझवार ॥ ३०६ ॥

शब्दार्थ--उझकि=उचककर, ज़रा उठकर।

(वचन)—दूती-वचन परकीया प्रति।

भावार्थ—मुझे भरोसा है कि तू नायक का रूप देखकर रीझैगी, एकवार जरा खिड़की से झांककर देख तो ले, क्योंकि तेरे नेत्र रिझवार है (अर्थात् रूप के क़द्रदां हैं) और वह रूप रिझानेवाला है (अत्यंन्त सुन्दर है)।

अलकार--सम, और प्रमाणान्तर्गत 'आत्मतुष्टि'।

दो०—कालबूत दूती विना जुरै न आन उपाय।
फिरि ताके टारे वनै पाके प्रेम लदाय ॥ ३०७ ॥

शब्दार्थ—कालबूत=मेहराब का भराव।

(वचन)—दूती-माहात्म्य-कवि की उक्ति।

भावार्थ—कालबूत-रूपी दूती बिना प्रेमकी लदाऊ छत और किसी उपाय से जुड़ नहीं सकती। परंतु जब प्रेम का लदाव पक्का हो जाय तब उसे टाल देने से ही बात बनती है (अन्यथा नहीं)।

अलंकार—रूपक (सम अभेद)।

(अभिसारिका वर्णन)

दो०—गोप अथाइन तें उठे गोरज छाई गैल।
चलि बलि अलि अभिसारिके भली सँझौखी सैल॥३०८॥

शब्दार्थ-अथाई=बैठक। सँझौखी=संध्या समय की। सैल=सैर, गश्त।

(वचन)-सखी-वचन परकीया नायिका प्रति। अभिसार हेत प्रार्थना।

भावार्थ-गोपलोग बैठकों से उठकर अपने अपने संध्या कृत्य में लग गये, गोधूलि से रास्ते आच्छादित हैं, हे सखी अभिसारिके! मैं बलिहारी हूं, तू नायक से मिलने के लिये चल क्योंकि संध्याटन की अच्छी बेला है।

अलंकार-काव्यलिंग।

दो०—सघन कुंज घन घनतिमिर अधिक अँधेरी रात।
तऊ न दुरि है स्याम यह दीप-सिखा सी जात ३०९

(विशेष)—नायक नायिका को अपने साथ ले जाना चाहता है, सखी बरज कर रुचि बढ़ाती है।

भावार्थ-कुंज सघन हैं, बादलों का अँधेरा घना है, इसी से रात भी अधिक अँधेरी है, यह सब कुछ है, पर हे श्याम यह



नायिका तो भी चलने में दीप-शिखा के समान छिपैगी नहीं।

अलंकार–धर्मलुप्तोपमा से परिपुष्ट की हुई विशेषोक्ति।

दो०–फूली फाली फूल सी फिरति जु विमल विकास।
भोरतरैयां होंहिगी चलत तोहिं पिय पास ॥३१०॥

(वचन)–सखी-बचन नायिका प्रति। अभिसार उद्देश्य।

भावार्थ–हे लाड़िली, तेरी सवतें जो अभी निर्मल प्रकाश युक्त होकर फूल सी विकसित और प्रफुल्लित फिरती हैं वे जिस समय तू प्रियतम के पास चलैगी सब प्रातःकाल की तारकाओं के समान प्रभाहीन हो जयेंगी।

अलंकार–उपमा।

दो०–उयो सरद राका ससी करति न क्यौं चित चेत।
मनो मदन छितिपाल को छाँहगीर छवि देत ॥३११॥

शब्दार्थ—राका ससी=पूर्णमासीका चंद्रमा। छितिपाल=राजा। छाँहगीर=छत्र।

(वचन)–सखी बचन नायिका प्रति। अभिसार उद्देश्य।

भावार्थ–हे सखी, शरदपूर्णिमा का चंद्रमा उदय हो आया, मनमें स्मरण क्यों नही करती (नायकसे आजकी रात्रिमें मिलने का वादा किया था)। यह चंद्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेव पृथ्वीपति का छत्र शोभा दे रहा है (अर्थात् कामोद्दीपक हो रहा है)।

(विशेष)–यह दोहा मानिनी नायिका पर भी लग सकता है।

अलंकार–उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०–निसि अँधियारी नील पट पहिरि चली पिय गेह।
कहो दुराई क्यौं दुरै दीप-सिखा सी देह ॥३१२॥

भावार्थ—सरल है।

अलंकार--पूर्णोपमा से पुष्ट विशेषोक्ति।

दो०—छप्पो छपाकर छिति छयो तम ससिहरि न सँभारि।
हँसति हँसति चलि ससिमुखी मुखते घूँघट टारि ।३१३।

शब्दार्थ—छपाकर = चंद्रमा। ससिहरि न=डर मत, भय मत कर। सँभारि = अपने चित्त को सँभाल।

(विशेष)—शुक्लाभिसारिका नायिका नायकके पास जा रही है। मार्ग में चंद्रास्त हो गया। नायिका कुछ डरी। इस पर सखी का वचन है।

भावार्थ—चंद्रमा छिप गया, पृथ्वी पर अन्धकार छा गया तो क्या हुआ, तू डर मत, सँभल जा। हे चंद्रमुखी मुख से घूंघट हटाकर हँसते हँसते चल (ऐसा करने से चाँदनी का सा प्रकाश हो जायगा)।

नोट--किसी प्रति में 'घूंघट' की जगह 'आँचर' पाठ है, परन्तु हमें 'घूंघट' पाठ अच्छा जँचता है।

अलंकार--'शशिमुखी' में वाचक-धर्मलुप्ता। सम्पूर्ण दोहा में काव्यलिंग।

दो०—अरी खरी सटपट परी विधु आधे मग हेरि।
संग लगे मधुपनि लई भागन गली अँधेरि ॥३१४॥

शब्दार्थ—खरी सटपट परी=बड़ी घबराहट हुई। भागन= भाग्य से। गली अँधेरि लई=गली अँधेरी कर दी।

(विशेष)--कोई कृष्णाभिसारिका नायिका किसी पूर्व रात्रि के अभिसारका हाल निज सखी से कहती है। नायकके पास से लौटते समय ऐसी घटना हुई थी।

भावार्थ—हे सखी, आधे मार्गमें चंद्रोदय देखकर मुझे बड़ी घबराहट हुई। परन्तु सौभाग्यसे साथमें लगे हुए भौरोंने

गली अँधेरी कर दो (अर्थात् मेरे अंगके गंधके कारण जो भौंरे मेरे साथ लगे थे उनकी अधिकतासे गली अँधेरी हो गई)।

शंका-रात्रिमें भौंरे कहां से आये? (समाधान)-नायिका पद्मिनी है। पद्मिनीके साथ रात्रिमें भी भौंरोंका रहना कवियों ने कहा है। माघ और कादम्बरी में और मतिराम और देवकी कवितामें भी ऐसे वर्णन हैं।

अलंकार—समाधि। प्रहर्षण भी।

दो०—जुवति जौन्ह में मिलिगई नेकु न परति लखाय।
सोंधे के डोरन लगी अली चली सँग जाय ॥३१५॥

शब्दार्थ—जोन्ह=(सं० ज्योत्स्ना) चांदनी। सोंधा=सुगंध। सोंधेके डोरन=नायिकाके अंगकी सुगंधके आश्रयसे।

(बचन)-नायिकाके रूपकी प्रशंसा। सखीका वचन सखी प्रति।

भावार्थ—वह युवती (नायिका) तो चांदनी में ऐसी मिल गई कि ज़रा भी देख न पड़ती थी। उसके अंगकी सुगन्धके आश्रय से सखी उसके साथ चली जाती थी।

अलंकार—उन्मीलित।

(पियमिलन-उछाह वर्णन)

दो०—ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि त्यौं त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहँचटे बाल ॥३१६॥

शब्दार्थ-उताल=उकताई हुई। झमकि झमकि=शीघ्रतासे। टहल=गृहकार्य। रहँचटा=प्रबल अभिलाषा।

(वचन)-सखी प्रति सखी-वचन। नायक परदेशसे आया है-स्वकीया)।

भावार्थ-ज्यों ज्यों रात्रि निकट आती जाती है त्यों त्यों उसे बड़ी उतावली लगी है। प्रियतम से मिलनेकी प्रबल अभि-

लाघासे जल्दी जल्दी घर का कामधंधा कर रही है।

अलंकार-स्वभावोक्ति (सहज) ।

दो०—झुकि झुकि झपकौंहैं पलनि फिरि फिरि मुरि जमुहाय।
बीदि पियागम नींद मिस दीं सब सखी उठाय ॥३१७॥

शब्दार्थ-झपकौंहे=मुँदती हुई। मुरि = मुँह फेर कर। बीदि= (सं० विद् = जानना) जानकर।

(वचन)-सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ-झुकझुक कर, मुँदती हुई पलकोंसे बार बार मुँह मोर कर, जमुहाई ले लेकर, उसने प्रियतमके आगमनका समय, जान निद्रा आनेके बहानेसे सब सखियों को उठा दिया।

अलंकार-पर्यायोक्ति।

दो०—अँगुरिन उचि भरु भीति दै उलमि चितै चख लोल।
रुचि सों दुहूं दुहून के चूमे चारु कपोल ॥ ३१८ ॥

शब्दार्थ-उचि = उठकर । भरु=भार। भीति = दीवार । उलमि=दूसरी ओर लटक कर। लोल=चंचल।

(वचन)—सखी--वचन सखी प्रति। नायक-नायिका का परस्पर चुम्बन वर्णन।

(विशेष)-दोनोंकी अटारियोंके बीचमें डँड़वारेकी दीवार है। नायक उस ओर नायिका इस ओर। दोनों ने पैर की उँगलियों के बल उठकर, दूसरी ओर झुक कर चुम्बन लिया दिया है। उसी का वर्णन है।

भावार्थ—पैर की उँगलियों पर उठकर, शरीर का भार दीवार पर डाल कर दूसरी ओर झुक कर, और चंचल नेत्रों से यह देखकर कि कोई देखता तो नहीं, दोनों ने दोनों के सुन्दर कपोल बड़े प्रेम से चूमे।



अलंकार-अन्योन्य-(जो जासों जैसो करै सो तासों तस कीन्ह)।

दो०-चाले की बातें चलीं सुनत सखिन के टोल।
गोयेऊ लोयन हँसत विकसत जात कपोल ॥३१९॥

शब्दार्थ—चाला=चलौवा, द्विरागमन (गौना)। टोल=टुकड़ी, समूह।

भावार्थ—गौने की बातचीत हो रही है, यह बात सखियों के समूह में सुन कर, नायिका के नेत्र, छिपाने पर भी हँसते हैं और कपोल विकसित होते जाते हैं (अर्थात् छिपाने की चेष्टा करने पर भी उसके नेत्रों और कपोलों से प्रसन्नता प्रकट होती है)।

(विशेष)--कोई कोई 'चली' शब्द का अर्थ-"चलविचल हुई अर्थात् ठीक निश्चित न हुई" लेते हैं। इस अर्थ में यह मानना पड़ता है कि नायिका का प्रेम गौने से पहले ही नैहर में किसी से हो गया है। गौने की साइत अभी नहीं बनती यह सुनकर उसे आनन्द हुआ कि प्रेमी से बिछोह न होगा। प्रथम अर्थ में स्वकीया मुग्धा और दूसरे अर्थ में परकीया मुदिता नायिका होगी। हमें पहला अर्थ अच्छा जँचता है।

अलंकार—प्रहर्षण (तीसरी विभावना से परिपुष्ट)।

दो०-मिस ही मिस आतप दुसह दई औरि बहकाय।
चले ललन मनभावती तन की छांह छपाय ॥३२०॥

शब्दार्थ—आतप दुसह=धूप बड़ी कड़ी है। औरि=अन्य सखियों को। ललन=नायक।

(वचन)—सखी प्रति सखी-वाक्य।

भावार्थ—"धूप बड़ी कड़ी है अभी इस वक्त हम न जायगे" इसी बहाने से अन्य नायिकाओं को तो बहका दिया और जब




सब अपने २ घर चली गईं तब लाल अपनी मनभावती लाड़िली को अपने शरीर की छाया में छिपाकर चले।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

दो०—ल्याई लाल विलोकिये जिय की जीवनमूलि।
रही भौन के कोन में सोनजुही सी फूलि ॥३२१॥

भावार्थ—हे लाल आप के जी की जीवनमूल (अति प्यारी प्रेयसी) को मैं ले आई, देखो वह इस घर के कोने में सोनजुही सी फूल रही है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—नहिं हरि लौं हियरे धरो नहिं हर लौं अरधंग।
एकतही करि राखिये अंग अंग प्रति अंग ॥३२२॥

भावार्थ—न तो इसको इस तरह केवल हृदय ही से लगा कर रक्खो जैसे विष्णु लक्ष्मी को रखते हैं और न शिव की तरह केवल इसका आधा अङ्ग अपने आधे अंग में रक्खो, वरन् इससे इस प्रकार मिलो कि इसके प्रति अंग को अपने प्रति अंग में पूर्णतया मिला लो।

(विशेष)—यह दूती का वचन नायक प्रति है। "अंग अंग प्रति अंग" से स्पष्ट व्यंजित होता है कि दूती कहती है कि यह नायिका केवल आलिंगन चुंबन ही नहीं चाहती वरन् रति की भी इच्छुक है।

अलंकार—उपमा।

दो०—रही पैज कीन्ही जु मैं दीन्ही तुम्हैं मिलाय।
राखौ चम्पकमाल ज्यौं लाल गरे लपटाय ॥३२३॥

शब्दार्थ—पैज=प्रतिज्ञा। (दूती-वचन नायक प्रति)।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार-उपमा।

दो०—रही फेरि मुंह हेरि इत हित समुहैं चित नारि।
डीठि परत उठि पीठि की पुलकै कहैं पुकारि ॥३२४॥

शब्दार्थ—पुलकै = रोमांच।

(वचन)—दूती-वचन नायिका प्रति। संघट्टन उद्देश्य।

भावार्थ—हे नारि चित्त तो तेरा मित्र की ओर है, पर मुंह फेर कर तू इधर मेरी ओर देख रही है (अर्थात् जहाँ चित्त है उधर ही देख और नायक से प्रेमालाप कर) दृष्टि पड़ते ही पीठ में रोमांच उठकर यह बात पुकार २ कर कह रहे हैं (कि तू नायक से प्रेम करती है)।

अलंकार—अनुमान।

(प्रथम मिलन वर्णन)

दो०—दोऊ चाह भरे कछू चाहत कह्यौ कहैं न।
नहिं जाचक सुनि सूम लौं बाहर निकसत बैन ॥३२५॥

(वचन)—सखी प्रति सखी-वाक्य।

भावार्थ—दोनों चाह से भरे हैं, कुछ कहना चाहते हैं, पर कहते नहीं हैं। "दरवाजे पर भिक्षुक आया हुआ है" यह सुन कर जैसे सूम घर से बाहर नहीं निकलता उसी प्रकार उनके वचन मुख से नहीं निकलते।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—लहि सूने घर कर गह्यौ दिखादिखी की ईठि।
गड़ी सु चित नाहीं करनि करि ललचौंही डीठि ॥३२६

शब्दार्थ—ईठि = मित्रता, प्रेम।

(वचन)—नायक-वचन सखा-प्रति।

भावार्थ—हे सखा! उससे मेरी देखादेखी की प्रीति थी, सो

एक दिन मैंने सूने घर में पाकर उसका हाथ पकड़ा। हाथ पकड़ते ही उसने अभिलाषाभरी दृष्टि से नाहीं की। वही उसकी नाहीं करने की चेष्टा उस दिन से मेरे चित्त में गड़ रही है।

अलंकार—स्मरण। वाचकोपमानलुप्ता (नाही करनि उपमेय, गाँसी उपमान लुप्त, वाचक लुप्त, 'गड़ी' साधारण धर्म)।

दो०—गली अँधेरी साँकरी भौ भटभेरा आनि।
पर पिछाने परसपर दोऊ परस पिछानि ॥३२७॥

शब्दार्थ—भटभेरा=मुठभेड़, भिड़न्त, टक्कर। परसपिछानि =स्पर्श की पहिचान से (शरीर में रोमांच हो आने से)।

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—हे सखी! साँकरी और अँधेरी गली में दम्पति के शरीर परस्पर टकरा गये, तब दुनों ने एक दूसरे को स्पर्श-ज्ञान से पहचाना।

अलंकार—उन्मीलित।

दो०—हरखि न बोली लखि ललन निरखि अमिल सब साथ।
आंखिन ही में हँसि धस्यो सीस हिये धरि हाथ ३२८

शब्दार्थ—अमिल=अजनबी (जिनसे मेल नहीं है)।

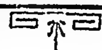
(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति।

(नोट) क्रिया विदग्धा में सर्वत्र बोधक हाव होता है।

भावार्थ—नायक को देखकर हर्षित तो हुई परन्तु सब अजनबी सखाओं को साथ में देख कर कुछ बोली नहीं। (मिलने का संकेत इस तरह बताया कि) आँखों ही मे हँस कर छाती पर हाथ रख कर फिर सीस पर रक्खा।

(विशेष)—क्रिया विदग्धा की चतुराई के भावः—

१-हृदय में वसते हो प्रणाम करती हूं।



२-शिव की शपथ अर्द्धरात्रि को मिलूंगी।

३-दोनों पर्वतों के बीच वाली कुंजमें कृष्ण पक्षकी द्वितीया को मिलूंगी।

४-यमुना तट पर शिवालय में मिलूंगी।

५-प्रतिज्ञा स्मरण है, सूर्यास्त बाद मिलूंगी।

अलंकार—सूक्ष्म।

दो०—भेंटत बनत न भावतो चित तरसत अति प्यार।
धरति लगाय लगाय उर भूषण बसन हथ्यार॥३२९॥

शब्दार्थ—भावतो=नायक। तरसत=उत्कंठित है।

(बचन)—आगतपतिका नायिका की दशा का वर्णन नायिका मध्या, सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—प्रत्यनीक।

दो०—कोरि जतन कोऊ करौ तन की तपनि न जाय।
जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाय॥३३०॥

शब्दार्थ—कोरि=(कोटि) करोड़। प्यौ=नायक।

(बचन)-सखी-बचन सखी प्रति। बिरहिनीकी दशाका वर्णन।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(नाहीं वर्णन)

दो०—'तनक झूँठ निसवादिली' कौन बात पर जाय।
तिय मुख रति आरम्भ की 'नहिं' झूठिये मिठाय।३३१।

शब्दार्थ-निसवादिली=स्वाद रहित, बेमजा। जाय=व्यर्थ, झूंठ।

(विशेष)—पूर्वार्द्ध में नायिका का प्रश्न है। उत्तरार्द्ध में नायक का उत्तर है।



भावार्थ—' थोड़ी झूँठ भी वेमज़ा होती है ' यह लोकोक्ति कौन सी बात पर व्यर्थ प्रमाणित होती है? (उत्तर) तिय के मुख से निकली हुई समागमारंभ की झूठी "नाहीं" मीठी (मधुर स्वादयुक्त) मालूम होती है (अर्थात् यह झूठी नाहीं स्वादरहित नहीं होती वरन् मीठी होती है)।

अलंकार—गूढ़ोत्तर—(अभिप्राय युत ज्वाब जहँ कहि गूढ़ोत्तर सोय)।

(सुरतारंभ वर्णन)

दो०—भौंहनि त्रासति मुख नटति आंखिन सों लपटाति ।
ऐंचि छुड़ावति कर इँची आगे आवति जाति ॥३३२॥

शब्दार्थ—नटति = नाही करती है।

(वचन)-सखीवचन सखी प्रति । प्रथम समागम-समय की चेष्टाओं का वर्णन ।

भावार्थ—भौंहें तान कर डरवाती है, मुख से नाहीं करती है, और दृष्टि से लपटाती है । खीचकर हाथ छोड़ाती हुई भी आगे ही खिंची आती है।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

दो०—दीप उजरेहू पतिहिं हरत वसन रतिकाज ।
रही लपटि छवि की छटनि नेकौ छुटी न लाज ३३३

(विशेष)—नायिका मध्या । सखी-बचन सखी प्रति ।

भावार्थ—पति को रति हेत वस्त्र हरण करते हुए जान कर वह नायिका पति से लिपट गई, अतः दीपक का उजेला रहते हुए भी छवि के चाकचक्य से लाज न गई-अर्थात् छवि की चकाचौंध से नायक ने नायिका को नग्न न देख पाया-(दीपक का उजेला रहते भी छवि की छटा के कारण नग्नता



की लज्जा न उठानी पड़ी)।

अलंकार—विशेषोक्ति ।

दो०—लखि दौरत पिय कर कटक बास छुड़ावन काज।
वरुनी बन दृग गढ़नि में रही गुढ़ौ करि लाज॥३३४॥

शब्दार्थ—बास = वस्त्र । गुढ़ौकरि=छिपकर।

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति ।

भावार्थ—वस्त्र छोड़ाने के लिये जब नायिका ने पतिके कर रूपी कटक को आक्रमण करते देखा तब लज्जा वरुणी रूपी बन के नेत्र रूपी किले में छिपकर रह गई (अर्थात् जब नायक रति हेत वस्त्र-हरण करने लगा तब लज्जावती मध्या नायिका ने आखें मूद कर अपनी लज्जा रक्खी)।

अलकार—रूपक ।

दो०—सकुचि सरकि पिय निकट तें मुलकि कछुक तन तोरि।
कर आंचर की ओट करि जमुहानी मुख मोरि ॥३३५

शब्दार्थ—मुलकि=नेत्रोंसे मुसकुराकर । तन तोरि=अंगड़ाई लेकर ।

(वचन)—प्रौढ़ा नायिका की रतोच्छा का वर्णन । सखी बचन सखी प्रति ।

भावार्थ—सकुच सहित नायक के निकट से कुछ खिसक कर, कुछ मुसकुराकर और अँगड़ाई लेकर हाथ और अंचल की ओट करके मुख फेर कर जँभाई ली ।

अलकार—स्वभावोक्ति ।

दो०-सकुच सुरति आरंभ ही बिछुरी लाज लजाय ।
ढरकि ढार ढरि ढिग भई ढीठ ढिठाई आय ॥३३६॥

शब्दार्थ—सकुच = कुच-स्पर्श सहित । ढरकि ढार ढरि= राजी होने के साधारण ढंग से राजी होकर । ढिग भई=नजदीक

आ गई, शरीर से लिपट गई ।

(वचन)-सखी-वचन सखी प्रति ।

भावार्थ--कुच स्पर्श करके सुरति आरंभ करते ही लज्जा लजाकर चली गई (नायिका की लज्जा जाती रही) और धृष्टता आजाने से साधारण ढंग से राजी होकर वह नायिका नायक से लिपट गई ।

अलंकार-वृत्यनुप्रास ।

दो०—पति रति की बतियाँ कही सखी लखी मुसुकाय ।
कै कै सबै टलाटली अलीं चलीं सुख पाय ॥३३७॥

(विशेष)—प्रौढ़ा स्वकीया नायिका ।

भावार्थ-पति ने रति की चर्चा चलाई, नायिका ने सखियों की ओर मुसकुराकर देखा । सखियाँ आनंदित हो होकर कुछ मिस बना बना कर चल दीं ।

अलंकार-पर्यायोक्ति ।

(रति वर्णन)

दो०-चमक तमक हासी सिसक मसक झपट लपटानि ।
ये जिहि रति सो रति मुकुति और मुकुति अति हानि ३३८

शब्दार्थ--चमक=चिहुँकना, चौंकना । तमक = उत्तेजित होना । सिसक=सिसकी भरना । मसक=दबाना, मर्दन । झपट लपटानि=झपट कर लपट जाना । मुकुति = दुःखसे निवृत्ति ।

(वचन)—नायक-बचन नायिका प्रति ।

भावार्थ-चिहुँकना, उत्तेजित होना, हँसना, सीत्कार भरना, गाढ़ालिंगन और झपट कर लिपट जाना ये षट चेष्टा युक्त जो रति हो वह मुक्तिके समान आनन्द-दायिनी होती है (इसी मुक्तिको प्राप्त करना प्रत्येक दम्पति का मुख्य कर्तव्य है)




और अन्य प्रकार की मुक्ति की प्राप्ति से तो बड़ी हानि है (वेदान्तिक वा धार्मिक मुक्तियों में दाम्पत्य सुख कहां)।

अलंकार—व्यतिरेक (उपमा ते उपमेय में अधिक कछू गुण होय)।

दो०—जदपि नाहिं नाहीं नहीं बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हांसी भरिनु हाँ सीयै ठहराति ॥३३९॥

शब्दार्थ—जक=रटन। बदन=मुख। ठहराति=निश्चित होती है (जान पड़ती है)।

(वचन)—सखी प्रति नायक-बचन।

भावार्थ—यद्यपि उस लाड़िली के मुख में नाहीं नाहीं की रटनि लगी रहती है, तौभी हँसी भरी भौंहों के कारण वह 'नाहीं' भी 'हां' सी जान पड़ती है (अर्थात् इन्कार भी स्वीकार सा मालूम होता है)।

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

(विपरीत रति वर्णन)

दो०—परयो जोर बिपरीत रति रुपी सुरति-रन धीर।
करत कोलाहल किंकिनी गह्यौ मौन मंजीर ॥३४०॥

शब्दार्थ—रुपी=डटी हुई है। धीर=धैर्य से। कोलाहल=शोर। मंजीर=नूपुर।

(वचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, सुन, खूब जोर शोर से विपरीत रति हो रही है, हमारी लाड़िली सखी आज बड़े धीरज से सुरति-रण में डटी है, इसी से किंकिणी शोर कर रही है और नूपुर चुप है।

(विशेष)—किंकिणी के शोर और नूपुर की चुपकी से सखी ने अनुमान कर लिया कि इस समय दम्पति विपरीत रति में लगे हुए हैं।




अलंकार--रूपक से परिपुष्ट अनुमान अलंकार।

दो०—बिनती रति बिपरीत की करी परसि पिय पाय।
हँसि अनबोले ही दियो ऊतर दियो बुताय ॥३४१॥

शब्दार्थ—ऊतर=उत्तर, जवाब। बुताय=बुझाकर।

(वचन)--सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—नायक ने नायिका के पैरों को छूकर बिपरीत रति करने की प्रार्थना की (पैरों को छूना ही मानो बिपरीत रति की प्रार्थना थी)। तब नायिका ने हँसकर बिना बोले ही चिराग बुझाकर उत्तर दे दिया (अर्थात् हँसना, कुछ न कहना और चिराग को भी बुझा देना इन्हीं कामों से सूचित कर दिया कि प्रार्थना मंजूर है—मौनं सम्मति लक्षणं)।

(विशेष)---इससे बोधक हाव अनुभाव और हर्ष संचारी भाव है। स्थायी और आलंबन विभाव स्पष्ट ही है। शृंगार रस की पूर्ण सामग्री है।

अलंकार—सूक्ष्म (सूक्ष्म कृति लखि आनकी करै क्रिया कछु भाय)

दो०—मेरे बूझत बात तू कत बहरावति बाल।
जग जानी बिपरीत रति लखि बिंदुली पिय भाल ॥३४२॥

शब्दार्थ—बिंदुली = बिंदी, टिकुली।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार--अनुमान।

दो०—राधा हरि हरि राधिका बनि आये संकेत।
दंपति रति बिपरीत सुख सहज सुरत हूँ लेत ॥३४३॥

शब्दार्थ—संकेत = मिलन स्थान।

भावार्थ—सरल है। (इसमें लीला हाव जानना)

अलंकार—विभावना (प्रथम)—बिना विपरीत रति किये ही उसका सुख प्राप्त करते हैं।

दो०—रमन कह्यौ हठि रमनिसों रति विपरीत बिलास।
चितई करि लोचन सतर सलज सरोष सहास ॥३४४॥

शब्दार्थ—रमण=नायक। सतर=वंक, तिरछे।

(विशेष)—किलकिंचित हाव।

भावार्थ-नायक ने हठ करके नायिकासे बिपरीत रति करने को कहा, तब नायिकाने लज्जा, क्रोध और हँसी सहित तिरछे नेत्रों से नायककी ओर देखा (अर्थात् हँसकर प्रार्थना मंजूर की)।

अलकार—स्वभावोक्ति।

(सुरतान्त वर्णन)

दो–रँगी सुरत रँग पिय हिये लगी जगी सब राति।
पैंड़ पैंड़ पर ठठकि कै ऐंड़ भरी ऐंड़ाति ॥३४५॥

शब्दार्थ-रँगी सुरत रँग=समागमके सुखमें लीन है। पैंड़ पैंड़ पर=डग डग पर। ठठकि कै=रुक रुक कर। ऐंड भरी=गर्व युक्त, घमंडसे (कि सौतियों को ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं)।

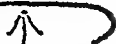
(वचन)-सखी-वचन सखी प्रति-(सुरत लक्षिता नायिका)।

भावार्थ—हे सखी देख, समागम के सुख में लीन हुई सारी रात यह नायिका प्रीतम के हृदयसे लगी हुई जागी है, इसी कारण अब सवेरे उठने पर आलसके मारे डग डग पर रुक रुक कर गर्व सहित ऐंड़ाती है।

(विशेष)—इसमें आलस्य और गर्व संचारी भाव हैं।

अलंकार-अनुमान।

दो०—लहि रतिसुख लगियै गरैं लखी लजौंहीं नीठि।
खुलत न मोमन बँधि रही वहै अधखुली डीठि ॥३४६॥




शब्दार्थ-नीठि=किसी प्रकार (मुशकिलसे)।

(वचन)-नायक-वचन सखी प्रति-(सुरतांत में नायिका ने लज्जित और श्रमित होनेके कारण अधखुली दृष्टि से नायक की दृष्टि के सम्मुख देखा है। नायिकाकी वही चेष्टा नायक सखी से कहता है)। इसमें स्मृति संचारी भाव है।

भावार्थ-रति सुख पाकर, गले से लगी हुई ही, उस नायिका ने किसी प्रकार (बहुत कहने सुनने से) जिस लज्जित दृष्टि से मेरी ओर देखा है, वह अधखुली दृष्टि मेरे मनसें बँध रही है, खुलती नहीं है (अर्थात् भूलती नहीं)।

अलंकार-विरोधाभास (अधखुली दृष्टि बंधरही है,खुलती नहीं)

(लोट वर्णन)

दो०-कर उठाय घूँघट करत उसरत पट गुझरोट।
सुख मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लोट ॥३४७॥

शब्दार्थ—उसरत=(सं० उत्+सरण) हट जानेसे। पट गुझरोट=शिकन पड़ा हुआ कपड़ा। मोटैं=गठड़ियां। लोट=पेटी, त्रिवली।

(वचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—हाथ उठाकर घूँघट करते समय शिकन पड़े हुए कपड़ेके हट जाने के कारण, नायिकाकी त्रिवली देखकर नायक ने सुख की गठरियां लूटीं (अत्यन्त सुखी हुआ)।

अलंकार-हेतु (नायिका की लोट देखना ही सुख की गठरियों का लूटना है)।

(प्रेम-क्रीड़ा वर्णन)

दो०—हँसि ओठनि बिच कर उचै किये निचौहैं नैन।
खरे अरे पिय के प्रिया लगी बिरी मुख दैन।३४८।



शब्दार्थ--उचैं=उठा कर। निचौहैं=नीचे की ओर। खरे अरे=बहुत हठ किये हुए। बिरी=पान का बीड़ा।

(विशेष)-नायक ने नायिका के हाथों से पान खाने का हठ किया, नायिका ने जिस चेष्टा से बीड़ा खिलाया, उसीका वर्णन सखी से सखी करती है। (इसमें विलास हाव है)।

भावार्थ-होठों ही में हँसकर, हाथ उठाकर और आँखें नीची किये हुए अति हठ किये हुए प्रीतम के मुख में प्रिया (नायिका) पान की बीड़ी देने लगी।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—नाक मोरि नाहीं ककै नारि निहोरे लेय।
छुवत ओंठ पिय आँगुरिन बिरी बदन तिय देय ३४९

शब्दार्थ-निहोरा=विनती, प्रार्थना। इसमें दम्पति का विलास हाव वर्णित है।

(विशेष)—नायक नायिका को पान खिलाते समय अपनी उँगली नायिका के ओंठ में छुला देता है। इस कृत्य को नायिका ना-पसन्द करती है।

भावार्थ-नाक सिकोड़ कर, नाहीं कर करके नायिका बहुत कुछ निहोरा करने से नायक के हाथ से मुख में बीड़ी लेती है, कारण कि बीड़ी मुख में देकर नायक उँगली से ओंठ छूता है।

अलंकार--स्वभावोक्ति।

दो०-सरस सुमिल चित-तुरँग की करि करि अमित उठान।
गोय निबाहे जीतिये प्रेम खेल चौगान॥ ३५०॥

शब्दार्थ—सरस=रसयुक्त (यहां अत्यधिक 'पुष्ट')। सुमिल= सवार के मन से मिलकर चाल चलने वाला (मिलनसार)। अमित=बहुत। उठान=दौड़, धावा। गोय निबाहे=(१) छिपाकर

निर्वाह करने से (२) गेंद को निश्चित रूपसे सीमातक वहन करने से। चौगान=गेंद का वह खेल जो घोड़ों पर सवार होकर खेला जाता है। (नोट) इस खेल का वर्णन केशव कवि ने रामचन्द्रिका में बहुत अच्छा किया है।

(वचन)-कवि की उक्ति।

भावार्थ—प्रेम करना चौगान का खेल है। इस खेल में पुष्ट और मिलनसार चित्त रूपी घोड़े पर चढ़कर अनेक धावे करके गुप्त प्रेम को अंत तक निर्वाह करने से (प्रेमरूपी गेंद को पालीकी अन्तिम सीमातक पहुँचानेसे) ही जीत होती है।

अलंकार—श्लेष से परिपुष्ट रूपक।

(आंखमिचौली वर्णन)

दो०—दृग मींचत मृगलोचनी भरयौ उलटि भुज बाथ।
जानि गई तिय नाथ के हाथ परस ही हाथ ॥३५१॥

शब्दार्थ—बाथ=अँकवार।

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—नायक ने नायिका के नेत्र मूंदे (पीछे से आकर) मृगलोचनी नायिका ने उलट कर नायक को अँकवार भर के पकड़ लिया। हाथका स्पर्श होते ही सात्विक भाव रोमांच कंपादि होते ही नायिका ने समझ लिया कि ये हाथ नायक के ही है।

अलकार—अनुमान।

दो०—प्रीतम दृग मींचत प्रिया पानि परस सुख पाय।
जानि पिछानि अजान लौं नेकु न होति लखाय ३५२

भावार्थ—नायिका नायक के नेत्र मूंदती है। तब नायक

प्रिया के करस्पर्श का सुख पाकर जान पहचान कर भी अन-जान की तरह कहता है कि हमें नहीं मालूम होता कि यह किसका हाथ है।

(विशेष)—आँख मिचौली का कायदा है कि जब तक आंख मूदा हुआ व्यक्ति आंख मूदने वाले को अनुमान से पहचान कर उसका नाम न बतला दे तब तक वह आंख नहीं छोड़ता। नायक को कर-स्पर्श का सुख मिल रहा है अतः वह पहचान कर भी नाम नहीं बतलाता—भाव यह कि थोड़ी देर और इसके करस्पर्श का सुख प्राप्त रहे।

अलंकार—लुप्तोपमा से परिपुष्ट पर्यायोक्ति-(मिस करि कारज साधिबो)।

दो०—कर मुँदरी की आरसी प्रतिबिंबित प्यौ पाय।
पीठि दिये निधरक लखै इकटक डीठि लगाय ॥२५३॥

भावार्थ—उँगलीकी आरसीमें नायकका प्रतिबिंब पड़ताहुआ पाकर, पीठ दिये हुए भी बेखटके टकटकी लगा कर देख रहीहै।

अलंकार—तीसरी विभावना—(पीठ दिये हुए भी दर्शन हो रहा है)

दो०—मैं मिसहै सोयो समुझि मुँह चूम्यो ढिग जाय।
हँस्यो खिस्यानी गल गह्यो रही गरे लपटाय ॥२५४॥

शब्दार्थ—मिसहा=मिस करने वाला, बहाने बाज, छली। खिस्यानी=लजा गई।

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—मैंने उस छली को सोया हुआ समझ कर, पास जाकर उसका मुख चूमा। वह हँस पड़ा, मैं लजा गई; उसने गलबाही दी, तब मैं भी गले से लिपट गई।



(विशेष)--नायिका प्रौढ़ा। ऐसे प्रेम खेल बहुधा हुआ करते हैं। नायक ने रति के लिये प्रार्थना की होगी, नायिका ने नाहीं की होगी, तब नायक बहाने से सो गया। तब नायिका ने यह सब खेल किया होगा।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

दो०—मुँह उघारि प्यौ लखि रह्यौ रह्यौ न गो मिस सैन।
फरके ओंठ उठे पुलक गये उघरि जुरि नैन ॥३५५॥

शब्दार्थ—मिस=बहाना। पुलक=रोमांच।

(वचन)--सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ--(नायिका सोने का बहाना करके मुंह ढँक कर लेट रही थी) मुँह उघार कर नायक देख रहा है, ऐसा जान कर सोने का बहाना किये हुए रहा न गया। ओंठ फरक उठे, रोएं खड़े हो गये और नेत्र खुलकर नायक के नेत्रों से जुड़ गये।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौहन हँसै देन कहै नटि जाय ॥३५६॥

(भावार्थ)-तरस=बात करनेकामजा। लालच=अभिलाषा। नटिजाय=नाहीं कर देती है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—कारक दीपक।

दो०—नेकु उतै उठि बैठिये कहा रहे गहि गेहु॥
छुटी जाति नहँदी छिनकु महँदी सूखन देहु ॥३५७॥

(वचन)--स्वाधीनपतिका का वचन नायक प्रति।

(विशेष)-इसमें बिब्बोकहाव है। नायक निकट है अतः नायिका को स्वेद सात्विक हो रहा है।

भावार्थ—ज़रा वहां उठकर बैठो क्या घर में घुस रहे हो, नाखून मे लगाई हुई मेहँदी छूटी जाती है, जरा एक क्षण मात्र इसे सूखने तो दो।

अलंकार—पर्यायोक्ति (कछु रचना सों बात)।

(मदपान वर्णन)

दो०—बाम तमासो करि रही बिवस बारुनी सेय।
झुकति हँसति हँसि हँसि झुकति झुकि झुकि हँसि हँसि देय॥

शब्दार्थ—बारुनी=शराब। झुकना=खिजलाना।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—स्वभावोक्ति किंवा कारक दीपक।

दो०—हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।
बलकि बलकि बोलति बचन ललकि ललकि लपटाति।३५९

शब्दार्थ—उमदाति=मस्ती की चेष्टा करती है। बलकि बलकि=बक बक करके।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—समुच्चय।

दो०—खलित बचन अधखुलित दृग ललित स्वेद कन जोति।
अरुन बदन छबि मद छकी खरी छबीली होति॥३६०॥

शब्दार्थ—खलित=(स्खलित) चल विचल, अर्द्धस्पष्ट। अरुन=लाल।

(वचन)—नायक प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—अर्द्धस्पष्ट बातें, अधखुले नेत्र और सुन्दर पसीने की बूंदों की झलक सहित लाल मुखकी छविसे मदमें छकने से यह नायिका और भी अधिक छबीली हो जाती है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।



दो०—निपट लजीली नवल तिय बहकि बारुनी सेय।
त्यों त्यों अति मीठी लगै ज्यों ज्यों ढीठ्यो देय ॥३६१॥

शब्दार्थ—बारुनी=शराब। मीठी=अच्छी। ढीठ्यो देय= ढिठाई करती है।

भावार्थ—विभावना—(ढिठाई से भी अच्छी लगती है)।

अलंकार—अत्यंत लजीली नवलवधू मदिरा पीकर बहक गई है। ज्यों ज्यो ढिठाई करती है त्यों त्यों और भी अच्छी लगती है॥

(बनविहार वर्णन)

दो०—बढ़ति निकसि कुचकोर रुचि कढत गौर भुजमूल।
मन लुटिगो लोटनि चढ़त चूँटत ऊँचे फूल ॥३६२॥

शब्दार्थ—कुचकोर रुचि=कुचके घेरेके किनारे की कन्ति। भुजमूल=पखौरा, खए। लोटनि=त्रिवली। चूंटत=(चुनत) तोड़ते हुए (सं० चयन)।

(विशेष,—बनविहार में नायिका कुछ ऊंचे स्थान में लगे हुए फूलों को तोड़ने लगी। ऐसा करने में आंचल के उठजाने से कुचकोर, पखौरा, और त्रिवली नायक ने देखी। उसी स्थिति की छबि नायक सखो से कहता है।

भावार्थ—जिस समय नायिका ऊंचे पर के फूल तोड़ने लगी, उस समय कंचुकी के चढ़ जाने से निकल कर बढ़ती हुई कुचकोर की शोभा और खुले हुए गोरे गोरे खयों (पखौरे) को देखकर और त्रिवली की तीनों सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मेरा मन लुट गया (इनको देखकर मैं मुग्ध हो गया)।

अलकार—स्वभावोक्ति।

दो०—घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलिपुंज॥
जमुना तीर तमाल तरु मिलत मालती कुंज ॥३६३॥

शब्दार्थ—कलित=सुन्दर। (अन्वय) अलिपुंज सहित कलित मालती कुंज।

(विशेष)—बनबिहार में नायिका स्वयंदूतत्व करती है। नायिका-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे प्रिय धूप बहुत कड़ी है, एक घड़ी घाम निवारलो (कड़ी धूप की वेला बितालो) जमुना के तट पर जहां वह तमाल का वृक्ष दिखाई पड़ता है वही सुन्दर भौंरों से युक्त मालती की कुंज मिलती है (वहीं हमारे साथ विहार करो)।

अलकार—गूढ़ोत्तर। कोई कोई इसमें पर्यायोक्ति मानते हैं।

दो०—चलित ललित श्रम स्वेदकन कलित अरुन मुख ऐन।
बन बिहार थाकी तरुनि खरे थकाये नैन॥ ३६४॥

शब्दार्थ—चलित=चलते हुए, गिरते हुए, टपकते हुए। कलित=सुन्दर। ऐन=अत्यन्त। थकाये=आशक्त किये।

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—टपकती हुई सुन्दर पसीने की बूंदों से नायिका का [illegible] सुन्दर हो उठा था। बनविहार से थकी हुई तरुणी नायिका ने नायक के नेत्रों को भली भांति स्थगित कर दिया (अपने ऊपर आशक्त कर लिया)।

अलकार—अ पांचवी विभावना—(थकी हुई ने थकाये)।

दो०—अपने कर गुहि आपु हठि हिय पहिराई लाल।
नौलसिरी औरै चढ़ी मौलसिरी की माल॥ ३६५॥

शब्दार्थ—नौलसिरी=(नवल श्री) नवीन शोभा।

भावार्थ—सरल है।

अलकार—भेदकातिशयोक्ति।

(जलविहार वर्णन)

दो०—लै चुभकी चलि जाति जित जित जल-केलि अधीर।
कीजत केसर-नीर से तित तित केसर-नीर ॥ ३६६ ॥

शब्दार्थ—चुभकी=डुबकी, गोता। अधीर=चंचलता से शीघ्रता से।

(वचन)-सखी-वचन नायिका प्रति, अंग-कान्ति की प्रशंसा।

भावार्थ—तुम जल-केलि समय गोता लगाकर शीघ्रता पूर्वक जहां जहां जाती हो, वहीं वहीं तालाब के पानी को केसर-जल के समान कर देती हो।

अलंकार—यमक, उपमा, तद्गुण।

दो०—छिरकै नाह नवोढ दृग कर-पिचकी जल जोर।
रोचन रँग लाली भई बिय-तिय लोचन कोर ॥३६७॥

शब्दार्थ—बिय-तिय=दूसरी स्त्री अर्थात् सवति।

भावार्थ—नायक ने नवोढ़ा के नेत्रों में हाथ की पिचकी से जोर जोर से जल छिड़का, और दूसरी स्त्री (सवति) की लोचन-कोर में रोचना कीसी लाली आई (ईर्षा से सपत्नी क्रोधित हुई)। अथवा दोनों के नेत्रों में लाली आई। एक के नेत्रों में जलके छींटों के कारण, दूसरी के नेत्रों में ईर्षा के कारण।

अलकार—असंगति।

(हिंडोरा वर्णन)

दो०—हेरि हिंडोरे गगन ते परी परी सी टूटि।
धरी धाय पिय बीच ही करी खरी रस लूटि ॥३६८॥

शब्दार्थ—परी=(फा०) अप्सरा।

(वचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—यह देखकर कि हिंडोरे रूपी आकाश से वह नायिका अप्सरा सी नीचे गिरी, नायक ने दौड़ कर बीच ही में लोक लिया और आलिंगन कर के खूब रस लूटा, तब पृथ्वी पर खड़ी किया।

अलंकार—उपमा (परी परीसो टूटि)।

दो०—बरजे दूनी हठ चढ़ै ना सकुचै न सकाय॥
टूटति कटि दुमची मचक लचकि लचकि बचि जाय॥३६९॥

शब्दार्थ—दुमची=पतली टहनी (छोटी नवीन और पतलीशाखा)

(बचन)—सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—नायक के बरजने से नायिका को दूनी हठ चढ़ती है और वह हिंडोरे पर संकोच और शंका रहित होकर खूब धूम मचाती है। उसके झूलने की मचक से कमर रूपी पतली शाखा टूटती सी जान पड़ती है, परंतु लचक लचक कर बचजाती है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में तीसरी विभावना, उत्तरार्द्ध में गम्योत्प्रेक्षा।

(चोर-मिहीचनी वर्णन)

दो०—छोऊ चोर-मिहीचनी, खेल न खेलि अघात।
दुरत हिये लपटाय कै, छुवत हिये लपटात॥३७०॥

शब्दार्थ—चोरमिहीचनी=लुकौवल।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पर्यायोक्ति (मिस से आलिंगन-कार्य साधन करते है)। विशेषोक्ति (खेलते है पर अघाते नहीं)।

(सेज से उठना)

दो०—लखि लखि अँखियन अधखुलिन, आँग मोरि अँगराय।
आधिक उठि लेटत लटकि, आलस भरी जँभाय॥३७१॥

भावार्थ--अधखुली आँखोंसे (प्रभातागमन सूचक चिन्हो को) देख देख कर अंग मरोर मरोर कर अँगड़ाती है। आधी उठकर फिर झुक कर लेट जाती है और आलस से जँभाई लेती है।

अलंकार—कारकदीपक से परिपुष्ट स्वभावोक्ति।

दो०—नीठि नीठि उठि बैठि हूँ, प्यौ प्यारी परभात।
दोऊ नींद भरे खरे, गरे लागि गिरजात ॥३७२॥

शब्दार्थ--परभात=प्रभात, प्रातःकाल।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार--स्वभावोक्ति।

दो०—लाज गरब आलस उमँग, भरे नैन मुसुक्यात।
राति रमीरति देत कहि, औरै प्रभा प्रभात ॥३७३॥

शब्दार्थ--राति रमी रति=रात को रति की है। प्रभा=कान्ति।

भावार्थ--लज्जा, गर्व, आलस और उमंग से भरे हुए नेत्र मुसकुरा रहे हैं, 'रात में रति की है' यह बात प्रभात की विलक्षण प्रभा ही कह रही है।

अ०--भेदकातिशयोक्ति से परिपुष्ट अनुमान प्रमाण।

दो०—कुंजभवन तजि भवन को, चलिये नन्द-किशोर।
फूलति कली गुलाब की, चटकाहट चहुँ ओर॥३७४॥

(विशेष)--रात्रि में नायक परकीया नायिका के साथ कुंज-भवन में रहा है, प्रभात होते ही सखी जगाकर दोनों को निज निज घर भेजना चाहती है।

भावार्थ—हे नन्दकिशोर अब कुंजभवन को छोड़ कर घर को चलिये। गुलाब की कलियाँ फूलने लगीं और उनकी चटाखट का शोर चारो ओर होने लगा है।

अ०---काव्यलिंग।

(रतिलक्षिता)

दो०--- नटि न सीस सावित भई, लुटी सुखनि की मोट।
चुप करिए, चारी करत, सारी परी सरोट ॥३७५॥

शब्दार्थ---नटि न=नाहीं मत कर। सीस सावित भई=तेरे सिर यह बात प्रमाणित हुई। मोट=गठरी। चारी=चुगली। सरोट=सलवट, शिकनें।

भावार्थ---हे लाड़िली, इन्कार मत कर, तूने सुख की गठरी लूटी है, यह बात तेरे सिर प्रमाणित हो गई। बाते न बनाओ, चुप रहो, साड़ी की शिकनें ही इस बात की चुगली कर रही है।

अलकार---अनुमान।

दो०---मोसों मिलवति चातुरी, तूं नहिं भानति भेव।
कहे देत यह प्रगट ही, प्रगट्यौ पूस पसेव ॥३७६॥

शब्दार्थ---मिलवति चातुरी=चतुराई करती है। भेव नहिं भानति=भेद नहीं खोलती। पसेव=पसीना।

(वचन)---सखी-वचन नायिका प्रति।

भावार्थ---मुझ से चतुराई कर रही है, तू इस बात का भेद क्यो नहीं खोलती। तू नायक के साथ रमी है यह बात तो प्रत्यक्ष यह पूसमास का पसीना ही प्रकट होकर कह रहा है।

(विशेष)---इस दोहे का अर्थ अन्यसुरत दुःखितामें भी लग सकता है।

अलंकार---चौथी विभावना (पूसमास में पसीना!) से परिपुष्ट अनुमान प्रमाण।

दो०---सही रँगीली रतजगे, जगी पगी सुख चैन।
अलसौहैं सौंहैं किये, कहैं हँसौहैं नैन ॥ ३७७ ॥

शब्दार्थ—रतजगा=किसी उत्सव में वा व्रत में रातभर का जागरण। सौंहें किये=कसम खाकर। हसौंहें=हँसते हुए।

भावार्थ—हे रँगीली ठीक है तूं सत्य कहती है. बेशक तू रतजगे ही में जगी है, इसी से सुख और चैन से पगी है। तेरे ये अलसाये हुए और हँसते से नेत्र कसम खाकर यही बात तो कह रहे हैं। (व्यंग से यह तात्पर्य निकला कि तू रतजगे का वहाना करती है रातभर किसी नायक के साथ जगी है)।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

दो०—यों दलमलियत निर्दई, दई कुसुम से गात।
कर धर देखो धरधरा, अजौं न उर ते जात ॥३७८॥

शब्दार्थ—दलमलना=मसलना। धरधरा=धड़कन।

भावार्थ—अरे दैया, हे निर्दई नायक, ऐसी फूल सरीखी सुकुमारी नायिका को कोई इस तरह मसलता है (जैसा तुमने मसला है) इसकी छाती पर हाथ धर कर देखलो कि धड़-धड़ाहट अभीतक नहीं जाती।

अलंकार—भाविक।

दोहा—छनक उघारति छन छुवति, राखति छनक छिपाय।
सब दिन पिय-खंडित अधर, दरपन देखत जाय ॥३७९॥

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—हे सखी उसकी तो यह दशा है कि पिय-खंडित अधर को दर्पण में देखते ही देखते सारा दिन बिताती है। कभी खोलती है, कभी टटोलती है, और कभी छिपा लेती है।

अलंकार—कारक दीपक।

दोहा—औरै ओप कनीनिकनि, गनी घनी सिरताज।
मनी धनी के नेह की, बनी छनी पट लाज ॥३८०॥



शब्दार्थ-ओप=कान्ति । कनीनिका=पुतली (आँख की) । गनी = गणना की, समझी । मनी=मणि । धनी=पति (नायक) ।

(वचन)—सखी-वचन नायिका प्रति ।

भावार्थ—हे लाड़िली तेरी आँखकी पुतलियोंकी आज कुछ और ही कान्ति है, इसीसे मै तुझको वहुतों की सरदार समझती हूं । तू नायकके प्रेम की मणि वन रही है, यह वात लज्जा रूपी पट मे छनी है (अर्थात् लज्जा से छिपाती है तो भी प्रकट होती है) ।

(विशेष)—यह वचन अन्य संभोगदुःखिता नायिका का भी हो सकता है ।

अलंकार-वृत्यनुप्रास । भेदकातिशयोक्तिसे परिपुष्ट अनुमान प्रमाण

दोहा—किियो जो चिबुक उठाय कै, कंपित कर भरतार ।
टेढ़ीयै टेढी फिरत, टेढ़े तिलक लिलार ॥३८१॥

भावार्थ—कांपते हुए हाथ से नायक ने जो चिबुक उठाकर टेढ़ा तिलक किया है, उसी टेढ़े तिलक के घमंड में टेढ़ी ही टेढ़ी फिरती है ।

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति (रूपगर्विता) ।

अलंकार—चौथी विभावना ।

(खंडिता वर्णन)

दोहा—वेई गड़ि गाड़ैं परीं, उपट्यौ हारु हिये न ।
आन्यो मोरि मतंग मनु मारि गुरेरन मैन ॥३८२॥

शब्दार्थ—गाडे = गड्ढे । उपट्यौ = उछर्यो । मैन = काम ।

(वचन)—खंडिता नायिका का वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—तुम्हारे हृदय पर यह अन्य नायिका का हार नहीं उपटा, वरन् कामदेव तुम्हारे मन-रूपी मस्त हाथी को गुलेल




के गुल्लो से मार मार कर इधर फेर लाया है, उसी की चोट के ये गड्ढे पड़गये हैं।

अलंकार—रूपक से परिपुष्ट शुद्धापह्नुति।

दोहा—पलनि पीक अंजन अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिले सु भली करी, भले बने हौ लाल॥३८३॥

भावार्थ—पलकों में पीक (जगने के कारन आंखो में सुर्खी) ओठो में काजल (अन्य नायिका के नेत्र चुंबन से काजल लगा हुआ) और भाल में महावर (अन्य नायिका के पैरों पड़ने से भाल में महावर लगा हुआ) धारण किये हुए, हे लाल जो आज आप मिले सो अच्छा किया, बहुत सुन्दर बने हो।

अ०—असंगति (दुसरी)।

दोहा—गहकि गांस औरै गहे, रहे अधकहे बैन।
देखि खिसौहैं पिय नयन, किये रिसौहैं नैन॥३८४॥

शब्दार्थ—गहकि=घमंड से, गर्व से। गांस=अनख, वैमनस्य।

(विशेष)—नायक रातभर बाहर रह कर प्रातःकाल घर आया है। परस्त्री-प्रसंगके सब चिह्न छिपा के नायिका से रातभर बाहर रहने का कुछ और ही कारण बताया है (नाटक वा तमाशा देखना इत्यादि) नायिका पहले इस प्रकार बाहर न रहने के लिये प्रेम का निहोरा देकर उपालंभ सा देने लगी पर वार्ता के बीच ही में नायक की आंखें कुछ लज्जित सी देख पड़ीं। इस चिह्नसे नायिका ने तुरन्त असली बात जान ली और नेत्रो से क्रोध प्रकट किया। सखी का बचन सखी प्रति।

भावार्थ—गर्व सहित किसी और ही प्रकार के वैमनस्य की बातें कर रही थी कि वे बातें अधूरी ही छोड़ी और नायक के नेत्रो को लज्जित देख कर (असली बातें समझ कर)

नायिका ने अपने नेत्रों को क्रोधयुक्त किया।

अलंकार—अनुमान।

दोहा—तेह तरेरे त्यौर करि, कत करियत दृग लोल।
लीक नहीं यह पीक की, श्रुतिमनि झलक कपोल ॥३८५॥

शब्दार्थ—तेह=क्रोध (से)। तरेरे त्यौर कर=भौंहे तान कर। लोल=चंचल। लीक=लकीर। श्रुतिमणि=कुंडल की मणि।

(विशेष)—नायक के गाल पर, कुंडल के माणिक की छाया पड़ती है। उसे देख नायिका नायक पर क्रुद्ध होकर आँखे तानती है। वह समझी है कि किसी अन्य नायिका ने नायक के गाल का चुंबन लिया है। सखी उसका भ्रम-निवारण करती है।

भावार्थ—हे सखी क्रोध से भौंहें तान कर क्यों नेत्र चंचल करती है। यह पीक की लकीर नहीं है, कुण्डल की मणि की झलक है जो कपोल पर पड़ रही है।

अलंकार—भ्रान्तापह्नुति।

दोहा—बाल कहा लाली भई, लोयन कोयन माँह।
लाल तिहारे दृगन की, परी दृगन में छाँह ॥३८६॥

शब्दार्थ—लोयन कोयन=लोचन के कोयो में।

(वचन)—नायक और नायिका का प्रश्नोत्तर।

भावार्थ—हे बाला तेरे लोचनो के कोयों में लाली क्यो आई? लाल मेरे नेत्रों में तुम्हारे नेत्रो की छाया पड़ी है।

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

दोहा—तरुन कोकनद बरन बर, भये अरुन निसि जागि।
वाही के अनुराग दृग, रहे मनो अनुराग ॥३८७॥

शब्दार्थ—तरुन कोकनद=अच्छी प्रकार खिला हुआ लाल कमल। अरुन=लाल। अनुराग=प्रेम।




भावार्थ—हे लाल, रातभर जगने के कारण आपके नेत्र अच्छी प्रकार खिले हुए लाल कमल के रंग के हो रहे हैं, मानो उसी के प्रेम से (जिसके पास रातभर रहे हो) रंग गये हैं।

अलंकार—सिद्धापद हेतूत्प्रेक्षा।

दोहा—केसर केसरि-कुसुम के, रहे अंग लपटाय।
लगे जानि नख अनखुली, कत बोलत अनखाय॥३८८॥

शब्दार्थ—केसर = किंजल्क। अनखुली=अनख मानने वाली, क्रुद्ध। अनखाय = क्रुद्ध होकर।

(वचन)—खंडिता नायिका प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—नायक के शरीर में केसर के फूल के किंजल्क लपटे हुए हैं, हे अनखीली, तू इन्हें अन्य नायिका कृत नखक्षत समझ कर क्यों क्रुद्ध हो हो कर बातें करती है।

अलंकार—भ्रान्त्यापह्नुति (काकु से पुष्ट)।

दोहा—सदन सदन के फिरन की, सद न फिरै हरिराय।
रुचै तितै विहरत फिरौ, कत विहरत उर आय॥३८९

शब्दार्थ—सदन=घर। सद=स्वभाव। फिरै=पलटती है, छुटती है। बिहरत=फाड़ते हो, विदीर्ण करते हो।

(वचन)—खंडिता नायिका वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे हरिराय (कृष्ण) तुम्हारी घर घर फिरने की आदत नहीं छुटती। अच्छा जहां जी चाहे वहां विहार करो, यहां आकर मेरा हृदय क्यों विदीर्ण करते हो।

अलकार—आक्षेप (व्यक्ताक्षेप)। यमक।

दोहा—पट के ढिग कत ढाँपियत, सोभित सुभग सुवेख।
हद रदछद छबि देत यह, सद रदछद की रेख ३९०

शब्दार्थ—हद=हदभर, बहुत। रदछद=ओठ। सद=ताजी,



हाल की। रदछद=(रद + छद) दांत का घाव। रेख=लकीर। (विशेष)—नायक ने अन्य नायिका के साथ विपरीत रति की है। नायक के ओंठ पर नायिका कृत दंताघात का चिह्न मौजूद है। उसे नायक रूमाल से छिपाता है। इस पर खंडिता का वचन नायकप्रति। यह दोहा लक्षिता नायिका पर भी लगता है।

भावार्थ—हे लाल, कपड़ा (रूमाल) निकट लालाकर उसे क्यो छिपाते हो वह तो अत्यंत सुन्दर रूपसे शोभा देरही है। इस ताजी दंताघात की रेखासे आपका ओठ अत्यन्त भारी छबि दे रहा है।

अलंकार---वृत्यनुप्रास।

दोहा--मोहू सों बातनि लगे, लगी जीह जिहि नायँ
सोई लै उर लाइये, लाल लागियत पायँ ॥३९१॥

(विशेष)—नायिका से बातें करते हुए अकस्मात् नायक के मुख से किसी अन्य नायिका का नाम निकला। इस पर क्रुद्ध होकर नायिका नायक से कहती है। धीराधीरा नायिका।

भावार्थ—मुझ से बातें करते हुए भी तुम्हारी जीभ जिसके नामसे लगी हुई है (जिसका नाम अनायास तुम्हारी जबान से निकल जाता है), हे लाल, आपके पैरों पड़ती हूं, उसीको लेकर हृदय से लगाइये।

अलंकार—आक्षेप।

दो०—लालन लहि पाये दुरै चोरी सौंह करै न।
सीस चढे पनिहा प्रगट कहैं पुकारे नैन ॥ ३९२ ॥

शब्दार्थ—दुरै चोरी सौंह करै न=शपथ करने से चोरी नहीं छिपती। पनिहा=चोरी का पता बताने वाले लोग।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।




भावार्थ—हे लालन, आज तुम्हारी चोरी पकड़ ली गई, शपथ करने से चोरी नहीं छिपती। पनिहाँ रूप ये तुम्हारे नेत्र ही तुम्हारे सिर चढ़े हुए प्रकट ही पुकार पुकार कर कह रहे हैं (कि तुम रात भर कहीं जगे हो)।

अलंकार—रूपक। (नेत्र पनिहा)।

दो०—तुरत सुरत कैसे दुरत मुरत नैन जुरि नीठि।
डौंड़ी दै गुन रावरे कहत कनौड़ी डीठि ॥ ३९३ ॥

शब्दार्थ—सुरत = मैथुन। जुरि नीठि=मुशकिल से मिलकर। डौंड़ीदै=डुग्गी बजाकर। कनौड़ी = (कान + औंड़ी) कान की ओर झुकी हुई (अर्थात् लज्जित)।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लालन, भला सद्य संभोग कैसे छिप सकता है, देखो मुशकिल से तो तुम्हारी दृष्टि मेरी दृष्टि से जुड़ती है और जुड़ते ही फौरन मुड़ जाती है (लज्जित होकर अन्यत्र देखने लगते हो) यही तुम्हारी कनौड़ी (लज्जित) दृष्टि तुम्हारे गुण (अवगुण) को डौंड़ी बजा बजाकर कहती है।

अलंकार—वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लोकोक्ति।

दो०—मरकत-भाजन-सलिल-गत-इन्दुकला के बेष।
झीन झँगा में झलमलत स्यामगात नख-रेख ॥ ३९४ ॥

शब्दार्थ—मरकत=नीलमणि। सलिल=पानी। बेष=रूप। झीन=महीन। झँगा=जामा।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लालन, महीन जामा के भीतर आपके सांवले शरीर पर विपरीत रति में अन्य नायिका कृत नखरेखा ऐसी शोभा देती है मानो नीलमणि के पात्र में भरे हुए जल में

द्वितीया के चन्द्रमा का प्रतिबिंब पड़ता हो।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा। (उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा)।

दो०—वैसी ये जानी परति झँगा ऊजरे माहँ।
मृगनैनी लपटी जु हिय बेनी उपटी बाहँ॥ ३९५॥

शब्दार्थ—वैसी ये = ज्यौं की त्यौं। जानी परति=देख पड़ती है। झँगा=जामा। ऊजरा = सफेद। उपटी=उछरी हुई।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लालन, वह मृगनैनी जो तुम्हारे हृदय से लपटी है उसकी चोटी का चिह्न तुम्हारी बाँह पर उपटा है वह ज्यौं का त्यौं तुम्हारे सफेद जामा में से दिखाई देता है।

अलंकार—छेकानुप्रास।

दो०—वाही की चित चटपटी धरत अटपटे पाय।
लपट बुझावत बिरह की कपट भरेहू आय॥३९६॥

शब्दार्थ—चटपटी=उत्सुकता। अटपटे=अस्तव्यस्त। लपट= ज्वाला।

(बचन)—उत्तमा खंडिता का बचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे प्रीतम तुम कपट भरे हुए भी आते हो तब भी मेरी बिरह की ज्वाला ठंढी हो जाती है। तुम अस्तव्यस्त पैर रखते हो, इसी से जान पड़ता है कि उसी अन्य नायिका से मिलने की तुम्हारे चित्त में उत्सुकता है।

अलंकार-पूर्वार्द्धमें अनुमान। उत्तरार्द्धमें पांचवीं विभावना।

दो०—कत बेकाज चलाइयत चतुराई की चाल।
कहे देत यह रावरे सबगुन विनगुन माल॥३९७॥

शब्दार्थ—चाल=चालबाजी। गुन=(साध्यवसाना लक्षणा से) दोष। बिन-गुनमाल=बिना डोरीकी माला (नायिका के

हृदय की माला आलिंगन करनेसे नायकके हृदय में उपटी है)।

भावार्थ—क्यों व्यर्थ चतुराई की चालबाज़ी करते हो यह बिना डोरे की माला ही आपके सब गुण (दोष) कहे देती है।

अलंकार—विरोधाभास।

दो०—पावक सो नैननि लगै जावक लाग्यो भाल।
 मुकुर होहुगे नेकु में मुकुर विलोको लाल॥ ३९८॥

शब्दार्थ—मुकुर होहुगे = नाहीं कर जाओगे। नेकुमें=थोड़ी देर में। मुकुर = आईना, दर्पण।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लाल, यह महावर जो तुम्हारे मस्तक पर लगा है वह मेरे नेत्रों में आग सा लगता है। थोड़ी ही देर में फिर तुम इन्कार कर जाओगे, लो दर्पण में मुख देख लो।

अलंकार—पूर्वार्द्धमें उपमा, उत्तरार्द्ध में यमक।

दो०—रही पकरि पाटी सुरिस भरे भौंह चित नैन।
 लखि सपने पिय आन रति जगतहुँ लगति हिये न॥३९९॥

(वचन)-सखी प्रति सखी-वचन। नायिकाकी दशाका वर्णन।

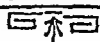
भावार्थ—एक ओरकी पाटी पकड़कर रह गई, भौंह चित्त और नेत्र बड़े क्रोध से भर गये। स्वप्न में अपने पति को अन्य स्त्रीसे रति करते देखकर जगने पर भी, पतिके हृदय से न लगी।

अलंकार-भ्रम।

दो०—रह्यौ चकित चहुँधा चितै चित मेरो मति भूलि।
 सूर उदै आये रही दृगन साँझ सी फूलि॥४००॥

शब्दार्थ--चहुंधा=चारो ओर। साँझसी फूलना=लाल हो जाना।





(वचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लालन, तुम्हें देख कर मेरा चित्त सब बुद्धि भुलाकर चकृत होकर चारो ओर देख रहा है (अर्थात् बुद्धि चकित हो रही है) आपका बड़ा विचित्र रूप बन रहा है। रात भर कहीं अन्यत्र बिताकर सूर्योदय के समय तो आये हो और आंखों में संध्यासो फूल रही है (नेत्रलाल हैं)

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।



पाँचवाँ शतक

दो०—अनत बसे निसि की रिसनि उर बरि रही बिसेषि।
तऊ लाज आई उझकि खरे लजौंहैं देखि ॥४०१॥

शब्दार्थ—अनत=अन्यत्र। बरि रही=जल रही। उझकि आई=उभड़ कर आगे आ गई (जो पहले कोप से दबी हुई थी)। खरे लजौंहैं=अति लज्जित।

(वचन)—मध्या-खंडिता का वचन सखी प्रति। अपनी दशा कहती है।

भावार्थ—(नायक के) रात्रि भर अन्यत्र रहने के कारण हृदय में क्रोध तो बहुत था, परन्तु हे सखी क्या करूँ उनको अत्यंत लज्जित देख कर मेरे हृदय की दबी हुई लज्जा भी उभड़ ही आई (अर्थात् लज्जित होकर मैं क्रोध प्रदर्शित न कर सकी)।

अलंकार—तीसरी विभावना और हेतु की संसृष्टि।

दो०—सुरँग महावर सौति पग, निरखि रही अनखाय।
पिय अँगुरिन लाली लखे, खरी उठी लगि लाय ॥४०२॥

शब्दार्थ—लाय लगिउठी=आग लग उठी।

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—सवत के पैर में सुन्दर लाल महावर लगा हुआ देख कर लाड़िली ने बुरा माना (कुछ क्रुद्ध हुई), फिर प्रियतम (पति) की ऊँगलियों में महावर की लाली देख कर तो उसके हृदय में क्रोध की अग्नि ही लग गई।

अलंकार—हेतु।

(विशेष)—रात के जागरण से नायक के नेत्र लाल हो रहे हैं, इसी से वह नायिका के सम्मुख नहीं हेरता।

अलंकार—लोकोक्ति और यमक।

दो०—कत कहियत दुख देन कों, रचि रचि बचन अलीक।
सबै कहाउ रहै लखे, भाल महाउर लीक ॥४०७॥

शब्दार्थ—अलीक = झूठे। कहाउ=कहना, बात चीत। रहैं= एक ओर पड़ जाते हैं, व्यर्थ हो जाते हैं। लीक=रेखा।

(बचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लाल, दुःख देने के लिये क्यों झूठ बाते बनाते हो। तुम्हारे भाल पर महाउर की रेखा देख कर तुम्हारी सब बातें व्यर्थ (झूठ) पड़ जाती है।

अलंकार—प्रत्यक्ष प्रमाण।

दो०—नख रेखा सोहैं नई, अरसौंहैं सब गात।
सौंहैं होत न नैन ये, तुम सौंहैं कत खात ॥४०८॥

शब्दार्थ—अरसौंहैं=अलसाये हुए। सौंहैं = (१) सामने। (२) शपथ।

(बचन)--खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लाल, तुम कसम खाकर सफाई क्यों देते हो, तुम्हारी सब करतूत तो इन बातों से प्रत्यक्ष मालूम होती है कि तुम्हारे सीने पर नवीन नख-रेखाएँ शोभित हैं, सारा शरीर आलस्ययुक्त है, और आंखे सामने नहीं होतीं।

अलंकार—यमक (सौंहैं शब्द से)।

दो०—लाल सलोने अरु रहे, अति सनेह सों पागि।
तनक कचाई देत दुख, सूरन लौं मुँह लागि ॥४०९॥

शब्दार्थ—सलोने=(१) सुन्दर। (२) नमकीन। सनेह=(१)



प्रेम (२) तैल। कचाई=(१) कच्चापन (२) कपट। मुंहलागि=(१) ढिठाई कर के (२) मुख में काट कर के (कच्चा सूरन जीभ और कंठ में कनकनाता है)।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लाल, आप अत्यन्त रूपवान और अत्यन्त प्रेमी तो अवश्य हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं, परन्तु तनक सा कपट और ढिठाई उसी प्रकार दुख देते हैं जैसे कच्चा सूरन मुंह में लग कर कनकनाता है (अर्थात् तैल से भूनने और नमक डालने पर भी यदि सूरन कुछ कच्चा रह जाता है तो काटता है)।

अलंकार—श्लेष से परिपुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—कत लपटैयत मो गरे, सोन जु हीं निसि सैन।
जिहि चंपकबरनी किये, गुल्लाला रँग नैन ॥४१०॥

शब्दार्थ—ही=थी। सैन=सेज। रँग=से, समान।

(वचन)—खंडिता-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—मेरे गले से क्यों लिपटते हो, मैं वह नहीं हूं जो रात को सेज पर थी, और जिस चंपकवर्णी ने तुम्हारे नेत्र गुल्लाला से (सुर्ख) कर दिये हैं (रात भर जगा कर)।

अलंकार—मुद्रा और पूर्णोपमा की संसृष्टि है। मुख्य मुद्रा है।

दो०—पल सोहैं पगि पीक रँग छल सो हैं सब बैन।
बल सौहैं कत कीजियत ए अलसौहैं नैन ॥४११॥

शब्दार्थ—बल=बलपूर्वक, जबरदस्ती। सौहैं=सामने।

भावार्थ—पीक के रंग से पगकर पलक शोभित हैं। (रात भर जगने से आंखों में सुर्खी छाई है) बातें सब छल युक्त हैं, अतः इन अलसाये हुए नेत्रों को जबरदस्ती मेरे सामने क्यों करते हो।



(विशेष)—यह दोहा बहुत हलका है, कोई उमदा व्यंग नही है, अत: कोई कोई कहते हैं कि यह बिहारी का नहीं है।

अलंकार—अनुप्रास और यमक।

दो०—भये बटाऊ नेह तजि, बादि बकति बेकाज।
अब अलि देत उराहनो, उर उपजति अति लाज ॥४१२॥

शब्दार्थ—बटाऊ=बटोही, मुसाफिर। बादि=व्यर्थ।

(विशेष)—नायक रात भर अन्यत्र रह कर सबेरे आया है। नायिकाकी सखी उराहना देती है। इसपर नायिका मना करती है।

भावार्थ—हे सखी अब तो ये प्रेम छोड़ कर मुसाफिर हो गये हैं, (सर्वत्र घूमते फिरते रहते हैं मेरे पास नहीं रहते) व्यर्थ फजूल वार्ता क्यों करती है। अब तो इनको उराहना देते भी लज्जा आती है (ओरहना उसे दिया जाता है जो अपना होता है)।

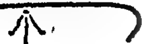
अलकार—आक्षेप।

दो०—सुभरु भरयो तुव गुन-कननि, पचयो कपट कुचाल
क्यौं धौं दारयों लौं हियो, दरकत नाहिन लाल ॥४१३॥

शब्दार्थ—सुभर भरयो=खूब अच्छी तरह भर गया है। कन=दाने। पचयो=पकाया। दार्यौं=(सं० दाडिम) अनार। दरकना=फटना। नाहिन=नहीं।

(वचन)—खंडिता-बचन नायक प्रति।

भावार्थ—तुम्हारे गुणरूपी (दोष) दानोंसे (मेरा हृदय) खूब अच्छी तरह भर गया है और तुम्हारी कपटमय कुचालने उसे पका भी दिया है, पर हे लाल न जाने क्यों अनार की भांति यह मेरा हृदय फटता नहीं।




अलंकार—रूपक से परिपुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—मैं तपाय त्रय ताप सों, राख्यौं हियो हमाम।
मकु कबहूं आवै इहां, पुलक पसीजे स्याम ॥४१४॥

शब्दार्थ—हमाम=(अ०) गुसुलखाना, स्नान करने का घर। मकु=शायद। पुलक=हर्षित हो (स्नान करके)। पसीजे= श्रम के कारण पसीने से तर।

(विशेष)—नायक रात्रि भर अन्यत्र रह कर प्रातःकाल पसीने से तर बतर और श्रमित हुआ आया है। इस पर खंडिता नायिका का कथन है।

भावार्थ—पसीने से तर बतर हे कृष्ण, आइये स्नान कर के हर्षित हूजिये। मैंने अपने हृदय हम्माम को इसी लिये त्रिताप से तपा रक्खा है कि शायद यहां आप कभी आ जायें।

(विशेष)—त्रिताप=मदनताप, उद्दीपनादि ताप, बिरह ताप, कोई कोई इस दोहे का अर्थ शांतरस में भी लगाते हैं। कोई भक्त कृष्ण प्रति कहता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—आजु कछू औरै भये, ठये नये ठिकठैन।
चित के हित के चुगुल ये, नित के होहिं न नैन ॥४१५॥

शब्दार्थ—नये ठिकठैन ठये=नवीन ठीक ठाक से बने हैं। हित=प्रेम।

(वचन)—इस दोहे में नायिका-बचन नायक प्रति मानें तो खंडिता, यदि नायिका बचन सखी प्रति मानें तो अन्य संभोग दुःखिता और यदि सखी बचन नायिका प्रति मानें तो लक्षिता नायिका होगी।

भावार्थ—आज तो कुछ और ही प्रकार के हो रहे हैं, नवीन

आन बान के बने हैं। ये तुम्हारे नेत्र दिली प्रेम की चुगुली करते हैं (चित्त का गुप्त प्रेम प्रकट करते हैं) आज ये नित्य के से नहीं जान पड़ते हैं।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

दो०—फिरत जु अटकत कटनि बिन, रसिक सुरस न खियाल।
अनत अनत नित नित हितन, कत सकुचावत लाल॥४१६॥

शब्दार्थ-अटकना=उलझना, प्रेम करना। कटनि=आशक्ति। सुरस=सच्चा प्रेम। खियाल=(ख्याल) बुद्धि, समझ। अनत =अन्यत्र। हित=प्रेम। सकुचावत=लज्जित करते हो।

(वचन)—नायिका-वचन नायक प्रति।

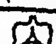
भावार्थ—हे लाल, विना आशक्ति के ही जो तुम उलझते फिरते हो इससे जान पड़ता है कि तुम ऐसे रसिक हो कि प्रेम को समझते ही नहीं हो (सच्चा प्रेमी एक ही से प्रेम कर्ता है)। नित्यप्रति अन्यत्र अन्यत्र प्रेम करके मुझे क्यों लज्जित कराते हो (अर्थात् सखियाँ कहेंगी कि मैं प्रेम नहीं करती इससे तुम नित्य नई नायिका ढूँढते फिरते हो, अथवा यह कहेंगी कि, यह ऐसे मूर्ख की स्त्री है जो प्रेम करना जानता ही नहीं। इन बचनों से मुझे लज्जा होगी)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में प्रथम विभावना, उत्तरार्द्ध में पर्यायोक्ति।

दो०—जो तिय तुव मन भावती राखी हिये बसाय।
मोहिं खिझावति दृगनि ह्वै वहिये उझकति आय॥४१७॥

शब्दार्थ—खिझावति=चिढ़ाती है, दिक करती है। वहिये= वही। उझकति आय=आआकर झांकती है।

(विशेष)—नायिका नायक की आंखों में अपना प्रतिविंव देख कर ऐसा कहती है। विहारी ने इस दोहे में स्त्री जाति

के सच्चे स्वभाव का अच्छा उद्घाटन किया है। स्त्री को अपनी छाया का भी सपत्नी भाव अखरता है।

भावार्थ—हे लाल, जो स्त्री आपको भाती है, उसीको अपने अपने हृदय में बसा रक्खा है। वही मुझको चिढ़ाती है। हृदय रूपी घरके नेत्र रूपी झरोखोंसे वह बारबार झाँकती है।

अलंकार—भ्रम (प्रतिबिंब में अन्य नायिका का भ्रम)।

दो०—मोहिं करत कत बावरी किये दुराव दुरैं न।
कहे देत रँग रात के रँगनिचुरत से नैन ॥ ४१८ ॥

शब्दार्थ—रंग = समाचार। रंगनिचुरत से=लाल।

(बचन)—खंडिता का बचन शठ नायक प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—अनुमान। अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—पट सों पोंछि परे करो खरी भयानक भेष।
नागिन ह्वै लागति दृगनि नागवेलि की रेख ॥४१९॥

शब्दार्थ—परे करो=दूर करो। नागवेलि=पान (यहां पीक)। ह्वै = सी, समान। दृगनि नागबेलि की रेख = आँखों में पीक की रेखा अर्थात् रात को जगने से आँखों की सुर्खी।

(बचन)—खंडिता-बचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लाल, आपके नेत्रों में जो यह पानपीक की रेखा है वह मेरी आंखों को नागिन सी डसती है। इसका रूप बड़ा भयानक है, कृपया इसे कपड़े से पोंछ कर दूर करो।

अलंकार—उपमा और देहरी दीपक ('दृगनि' शब्द दोनो ओर लगता है)।

दो०—ससि-बदनी मोकों कहत हौं समुझी निजु बात।
नैन-नलिन प्यौ रावरे न्याय निरखि नै जात ॥४२०॥

शब्दार्थ—निजु=निश्चय पूर्वक । नैन-नलिन=नेत्र कमल । न्याय=न्याय ही है । नैजात=संकुचित होकर झुकजाते हैं । लज्जित हो जाते हैं ।

(वचन)—खंडिता-बचन नायक प्रति ।

भावार्थ—हे प्रियतम, तुम जो मुझे चंद्रमुखी कहते हो यह बात मैंने आज निश्चयपूर्वक समझी । यह न्याय ही है कि मेरे चन्द्रमुख को देख कर आपके नेत्र-कमल झुक जाते हैं (लज्जित हो जाते हैं) ।

अलंकार—परिकर ।

दो०—दुरै न निघरघटौ दियै या रावरी कुचाल ।
विषसी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल ॥४२१॥

शब्दार्थ—निघरघट देना = (नि + घर + घाट) निश्चय पूर्वक अपने रहने का घर और अपने घूमने फिरने का घाट बतला देना, निन्नो देना, सफाई देना, घघौट देना ।

(वचन)—खंडिता नायिका का वचन धृष्ट नायक प्रति ।

भावार्थ—साहसपूर्वक सफाई देने से यह आपकी कुचाल न छिपैगी । यह तुम्हारी खिसियानेपन की हँसी (अर्थात् वेहयाई की हँसी) मुझे विषसी लगती है ।

अलंकार—पूर्णोपमा ।

दो०—जिहि भामिनि भूषन रच्यो, चरण-महाउर भाल
वही मनो अँखियां रँगी, ओंठनिके रँगलाल ।४२२

(विशेष)—'भूषण' का अन्वय 'भाल' के साथ और 'मनो' का अन्वय 'रँगी' क्रिया के साथ समझना चाहिये ।

भावार्थ—जिस भामिनी ने अपने चरणों के महावर से तुम्हारे भाल का भूषण रचा है (अर्थात् जिस मानिनी





नायिका के महावर युक्त पैरों पर तुमने मस्तक रगड़ा है) उसीने तुम्हारी आंखों को मानो ओंठों के रँगसे रँगा है (रात-भर अपने साथ जगाकर आँखें सुर्ख कर डाली है)।

अलकार—अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा-(क्रिया के साथ 'मनों' का अन्वय होने से अनुक्त विषया उत्प्रेक्षा होती है)।

(मानिनी वर्णन)

दो०—चितवनि रूखे दृगनि की, बिन हाँसी मुसक्यानि।
मान जनायो मानिनी, जानि लियो पिय जानि ॥४२३॥

शब्दार्थ—जानि = ज्ञानी, जानकार, प्रवीण।

(वचन)—सखी का वचन सखी प्रति।

भावार्थ—रूखी आंखों की चितवन और बिना हँसी की मुसकुराहट से मानिनी ने अपना मान जनाया और प्रवीण (चतुर) नायक ने जान लिया कि इसने मान किया।

अलकार—हेतु औ अनुमान संकर।

दो०—बिलखी लखै खरी खरी, भरी अनख बैराग।
मृगनैनी सैन न भजै, लखि बेनी के दाग ॥४२४॥

शब्दार्थ—बिलखी=व्याकुल होकर। अनख=क्रोध। वैराग=उदासीन भाव। सैन न भजै=सेज पर नहीं चढ़ती। दाग=(अ०) चिह्न।

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—नायक की सेज पर किसी अन्य स्त्री की वेणी का चिह्न देखकर वह मृगनैनी दूरही खड़ी खड़ी व्याकुल हो रही है और क्रोध तथा उदासीनता के भावों के उत्तेजित हो आने के कारण शैय्या पर नहीं बैठती।

अलंकार—छेकानुप्रास।

दो०—हँसि हँसाय उर लाय उठि, कहि न रुखौंहैं बैन।
जकित थकित से ह्वै रहे, तकत तिलौंछे नैन ॥४२५॥

शब्दार्थ—तिलौंछे = (तैल+औंछे) जिनमें से तैल निकाल लिया गया हो (रूखे, स्नेह हीन)।

(वचन)—मानिनी नायिका प्रति सखी के शिक्षा-वचन, मनाते हुये नायक के सामने ही।

भावार्थ—हे लाड़िली, क्यों मान किये बैठी हो ? उठ, तू स्वयं हँस और इन्हें भी हँसाकर छाती से लगाले, रूखे बचन मत कह, देख तो यह तेरा प्यारा तेरे रूखे नेत्र देखकर कैसा भयभीत और स्थकितसा (जड़वत्) हो गया है।

(विशेष)—त्रास और जड़ता संचारी हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से परिपुष्ट हेतु।

दो०—रसके से रुख ससिमुखी, हँसि हँसि बोलति बैन।
गूढ़ मान मन क्यों रहै, भये बूढ़ रँग नैन ॥४२६॥

शब्दार्थ—रस के से रुख=प्रेम की सी चेष्टा से। गूढ़= छिपा हुआ। बूढ़=बीरबहूटी। रँग=समान।

(वचन)—सखी-वचन मानिनी नायिका प्रति

भावार्थ—हे शशिमुखी, तू प्रेम की सी चेष्टा से हँस हँस कर नायक से बातें तो करती है, परन्तु मन में जो छिपा हुआ मान है वह कैसे छिपा रह सकता है, तेरी आँखें क्रोध से बीरबहूटी सी (सुर्ख) हो गई हैं।

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा (भये बूढ़ रँग नैन = भये बूढ़ से [लाल] नैन।

दो०—मुहुँ मिठास दृग चीकने, भौंहैं सरल सुभाय।
तऊ खरे आदर खरो, खिन खिन हियो सकाय ॥४२७॥





(वचन)—नायक-वचन मानिनी नायिका प्रति।

भावार्थ—हे प्यारी, यद्यपि तू मीठी बातें करती है, नेत्रों से स्नेह प्रकट होता है, और भौंहें भी स्वाभाविक रीति से सीधी ही हैं (टेढ़ी नहीं हुईं) तौभी प्रतिक्षण अधिकाधिक (अस्वाभाविक) आदर करने से मेरा हृदय बहुत शंकित होता है (कि तूने मान किया है और मुझे लज्जित करने को यह आदर कर रही है)।

अलंकार—पंचम विभावना (आदर से शंका)।

दो०—पति रितु अवगुन गुन बढ़त, मान माह को सीत।
जात कठिन ह्वै अति मृदौ, रमनीमन नवनीत॥४२८॥

शब्दार्थ—मृदौ = मृदु भी। नवनीत=नैनू, माखन।

(वचन)—कवि की उक्ति 'मान' के सम्बन्ध में।

(विशेष)—इस दोहे में यथाक्रम अलंकार है। इस अलंकार को समझ लेने से इसका अर्थ बड़ी सरलता से समझ में आ जाता है।

भावार्थ—पति के अवगुण से मान बढ़ता है और ऋतु के गुण (अर्थात प्रभाव) से माघ मास की सर्दी बढ़ती है। मान के कारण स्त्री का अति कोमल चित्त कठिन हो जाता है और माघ के शीत के कारण अति मृदु नैनू भी कठोर हो जाता है। लल्लूलाल जी ने एकही दोहे में इसका अर्थ यों लिखा है।

दो०—पति अवगुन ऋतु के गुनन, बढ़त मान अरु शीत।
होत मान तें मन कठिन, शीत कठिन नवनीत॥

अलंकार—यथाक्रम।

दो०—कपट सतर भौंहें करी, मुख सतरौंहैं बैन।
सहज हँसौंहैं जानिकै, सौंहैं करति न नैन॥४२९॥



शब्दार्थ—सतर=तरेरी, बंक, टेढ़ी। सतरौंहैं=क्रोधयुक्त।

(वचन)—मुग्धा नायिका सखियों के सिखाने से मान करती है। ऐसी ही किसी मुग्धा के मान की दशा कोई सखी अन्य सखी से कहती है।

भावार्थ—मेरे सिखाने से भौंहें टेढ़ी करलीं, और मुख से क्रुद्ध वचन भी कहे, परन्तु अपने नेत्रों को सहज ही हँसोड़ समझ कर नायक के सामने नहीं करती (ऐसा न हो कि उसे देखते ही मेरे नेत्र हँस पड़ें और बनावटी मान भी छूट जाय)।

अलंकार—छेकानुप्रास और यमक।

दो०—सोवत लखि मन मान धरि, ढिग सोयो प्यौ आय।
रही सुपन की मिलन मिलि, तिय हिय सों लपटाय॥४३०॥

(वचन)—नायिका की दशा-वर्णन सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—मन में मान करके नायिका लेटी हुई है (सोती नहीं, केवल सोने का बहाना किये लेटी है) यह देख कर नायक भी आकर शैय्या पर लेट रहा, तब (कामोद्दीपन के कारण) नायिका का मान छूट गया, परन्तु उसे प्रकट न करके, स्वप्न की मिलन की तरह (अर्थात् मानो सोते में ऐसा कर रही है) नायिका नायक के हृदय से लिपट गई।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

दो०—दोऊ अधिकाई भरे, एकै गौं गहराइ।
कौन मनावै को मनै, मानै मति ठहराइ॥४३१॥

शब्दार्थ—गौं=तात्पर्य। गहराना=गर्राकरना। एकैगौं=बराबर

(विशेष)—इसमें 'प्रणयमान' का वर्णन है। प्रणयमान' उस कलह को कहते हैं जो दम्पत्ति में खेल बिनोद में साधारण वाद विवाद हो उठता है।

(वचन)—सखी का बचन सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, दोनों अपने २ रूप गुण कौशल की अधिकता से परिपूर्ण हैं अर्थात् प्रत्येक अपने को दूसरे से अधिक समझता है. अतः परस्पर बराबर हो गर्रा करते हैं (अपने २ दांव के लिये झगड़ते हैं)। परस्पर न कोई किसी को मनाता है न (मेरे कहने सुनने से) कोई मानता है उनकी मति में मान (प्रणयमान) ही ठहराता है (समझते कि इस तरह का मान करना ही अच्छा है)।

अलंकार—अन्योन्य से परिपुष्ट काव्यलिंग ।

दो०—ज्यों सुमन ह्वै है सुफल आतप रोस निवारि ।
बौरी वारी आपनी सींचि सुहृदता वारि ॥४३२॥

शब्दार्थ—आतप = धूप । वारी = ओसरी (पारी)।

(वचन)—सखी-बचन मानवती नायिका प्रति नायकके सामने।

भावार्थ—जो तेरा सुन्दर मन इनसे लगा है तो सफलता प्राप्त ही होगी तू क्रोध रूपी धूप को निवारण कर (मान छोड़ दे) हे बावली अपनी पारी में इस नायक रूपी वृक्ष (रसाल वृक्ष) को सुहृदयता (प्रेम) के पानी से सींच।

अलंकार—श्लेष ।

दो०—गह्यौ अबोलो बोलि पिय आपै पठै बसीठि ।
दीठि चुराई दुहुन की लखि सकुचौंही दीठि ॥४३३

शब्दार्थ—अबोलो गह्यो = मौन धारण किया । बसीठि = दूती । दीठि चुराई = आंख न मिलाई, सामने नहीं देखा। दुहुन की=नायक और दूती की।

(विशेष)—नायिका ने दूती भेज कर नायक को बुलाया। नायक ने पहले दूती ही के साथ संभोग किया, तब साथही



साथ दोनों नायिका के पास आये। नायिका ने यह बात दोनों की लज्जित दृष्टि से अनुमान कर ली। तब क्रुद्ध होकर नायक से मुँह फेर मान कर बैठी, कुछ बोली नहीं। यह दशा कोई सखी अन्य सखी से कहती है (अन्यसंभोग दुःखिता)।

भावार्थ—पहले आपही ने दूती भेजकर नायक को बुलवाया और आने पर मौन धारण किया। दोनों की लज्जित दृष्टि देखकर नायक से आँख तक न मिलाई।

अलंकार—अनुमान प्रमाण।

दो०—मान करत बरजति न हौं उलटि दिवावति सौंह।
करी रिसौंहीं जायँगी सहज हँसौंहीं भौंह ॥४३४॥

(वचन)—सखी का वचन मानवती नायिका प्रति (मान मोचनी युक्ति)।

भावार्थ—हे लाड़िलो, मैं मान करने को बरजती नहीं वरन् उलटे मैं शपथ दिलाती हूं कि तू खूब मानकर, परंतु यह तो बतला दे कि तुझ से ये सहज हँसोड़ भौंहें क्रोधयुक्त की भी जायँगी?

(विशेष)—उलटि दिवावति सौंहँ = 'सौंहँ' शब्द को उलटने से जो होता हो वही मैं नायक को तुझसे दिलवाना चाहती हूं। 'सौंहँ' को उलटने से 'हँसौ' होता है। तात्पर्य कि नायक से हँसो बोलो, मान छोड़ो।

अलंकार—प्रथम अर्थ में निषेधाक्षेप। 'विशेष' में दृष्टिकूटक।

दो०—खरी पातरी कान की कौन बहाऊ बानि।
आक-कली न रली करै अली अली जिय जानि॥४३५

शब्दार्थ—कान की पातरी=(कान की पतली) बात सुन कर झट उस पर विश्वास करने वाली। बहाऊ बानि=हानि कारक




स्वभाव। आक=मदार। रली=रंगरलियां, बिहार। अली = (१) भौंरा (२) सखी।

(वचन -सखी-वचन मानवती नायिका प्रति (मानमोचनार्थ)

भावार्थ--हे लाड़िली, तू कान की बड़ी पतली है (चुगुल खोरों के कहने पर झट से विश्वास कर लेती है) यह कौन सी बुरी आदत सीखी है। हे सखी, तू यह समझ ले कि भौंरा मदार की कली के साथ कभी बिहार नहीं करता।

अलंकार--छेकानुप्रास, यमक।

दो०—रूख रूखे मिस रोष मुख कहति रुखौंहैं बैन।
रूखे कैसे होत ये नेह चीकने नैन ॥४३६॥

(वचन)—सखी मान छोड़ाती है।

भावार्थ—रूखे तर्ज़ से बनावटी क्रोध मुख पर धारण किये रूखे से वचन बोलती है, भला ये स्नेह से चिकने नेत्र कैसे रूखे होंगे (अर्थात् न होंगे)।

अलकार--काकु और विरोधाभास।

दो०—सौंहैं हूँ चाह्यो न तैं केती द्याइ सौंहँ।
ये हो क्यों बैठी किये ऐंठी ग्वैंठी भौंहँ ॥ ४३७ ॥

शब्दार्थ—सौंहैं = सन्मुख। चाह्यो=देखा। सौंहँ=शपथ। ऐंठी ग्वैंठी=टेढ़ी मेढ़ी, बंक।

भावार्थ—सरल है।

अलकार—विशेषोक्ति।

दो०—ए री या तेरी दई क्यौं हूं प्रकृति न जाय।
नेह भरे ही राखिये तू रूखिये लखाय ॥ ४३८ ॥

शब्दार्थ—दई = आश्चर्य है। प्रकृति = स्वभाव। ही=हिय हृदय)।

(वचन)—सखी-बचन मानवती प्रति।

भावार्थ—हे सखी, आश्चर्य है! तेरी यह प्रकृति किसी तरह जाती नहीं। नेह भरे हृदय में तुझे रखती हूं तो भी तू रूखी देख पड़ती है।

अलंकार—अतद्गुण, विशेषोक्ति और विरोधाभास।

दो०—बिधि बिधि कौनि करै टरै नहीं परेहू पानु।
चितै कितै तै लै धर्‌यो इतो इतै तनु मानु॥ ४३९॥

शब्दार्थ—कौनि=(फा० कोरनिश) कुन्नस, प्रार्थना, विनती। पानु=पाँव (पैर)। इतो=इतना।

(वचन)—सखी-बचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली, देख नायक विविध प्रकार से कुन्नसैं करता है और तेरा मान पैरों पड़ने पर भी नहीं छूटता। देख (चितै=विचार कर) कहां से लाकर रक्खा है इतने छोटे से तन में इतना सा बड़ा मान।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति। उत्तरार्द्ध में अधिक।

दो०—तो रस राच्यो आन बस कहैं कुटिल मति कूर।
जीभ निंबौरी क्यों लगै बौरी चाखि अँगूर॥४४०॥

शब्दार्थ—निंबौरी=नीम का फल। लगै=अनुरक्त हो।

(वचन नायक के पक्ष में मानवती से सखी का वचन।

भावार्थ—हे लाड़िली, नायक तो तेरे ही प्रेम में रँगा हुआ है, व्यर्थ कुटिल-मति और क्रूर लोग कहते हैं कि वह अन्य नायिका के वश में हुआ है। अरी बावली तू नहीं जानती कि अंगूर चखकर फिर जीभ निंबौरी से कैसे अनुरक्त होगी (अर्थात अंगूर खाने वाली जीभ को नीब के फल नहीं रुचते)।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास (सामान्य की पुष्टि विशेष से)।

दो०—हा हा वदन उघारि दृग सुफल करै सब कोय।
रोज सरोजनि के परै हँसी ससी की होय ॥४४१॥

शब्दार्थ—रोज परै=*रोना पड़ै।

(वचन)—उत्तमा दूती का वचन मानवती नायिका प्रति।

भावार्थ—हे लाड़िली, मैं हा हा करती हूं (बहुत नम्रभाव से विनती करती हूं) तू अपना मुहँ खोल दे हम सब लोग अपने नेत्र सुफल करैं, कमलों के घर रोना पड़ै और चंद्रमा की हँसी होने लगै।

अलंकार—प्रतीप।

दो०—गहिली गरब न कीजिये समय सोहागहिं पाय।
जिय की जीवन जेठ जो माहँ न छाहँ सोहाय ॥४४२॥

शब्दार्थ—गहिली=(सं० ग्रहिल) बौड़ही, बावली। समय=युवावस्था। सोहाग=सौभाग्य (प्रियतम का प्रेम)। छाहँ=छाया।

(विशेष)—स्त्री पति की छाया के समान है। छाया जेठ में (चढ़ीजवानी में) जैसी अच्छी और सुखद लगती है, वैसी माघ (बुढापे) में नहीं।

(वचन)—मानवती नायिका प्रति सखीका वचन(मानमोचनार्थ)

भावार्थ—हे बावली ऐसा सुन्दर समय (युवावस्था) और पति का प्रेम पाकर गर्व न करना चाहिये। जो छाया (स्त्री) जेठ मे (युवावस्था में) जी को सुखद जान पडती है वही

* नोट—जायसी ने भी 'रोज' शब्द इसी अर्थ में लिखा है। देखो पद्मावत का दोहा २६३ की दूसरी अर्द्धाली पृष्ठ १३२। परजापती हँसी और रोजू। लाये दूत होय नित खोजू, और—जहां गरब तहँ पीरा जहां हँसी तहां रोज॥ (दो० २६१)

छाया माघ में (युवावस्था ढलने पर) तनक भी नहीं सोहाती।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—कहा लेहुगे खेल में तजौ अटपटी बात।
नेकु हँसौहीं हैं भई भौंहैं सौंहैं खात॥ ४४३॥

शब्दार्थ—अटपटी=अनुचित, काम बिगाड़ने वाली।

(विशेष)—खेल में नायिका ने प्रणय-मान किया है। नायक कुछ परवाह न करके दूसरी नायिकाओं के साथ खेल मचाये ही हुए है। इसपर सखी नायक प्रति कहती है।

भावार्थ—हे लाल, ऐसे खेल से क्या पाओगे, यह अनुचित बात छोड़ो। मैंने बहुतसी कसमें खाई हैं तब लाडिली की भौंहें तनक हँसौंही हुई हैं (यदि तुम खेल न बंद करोगे तो वह फिर रूठ जायगी)।

अलंकार—हेतु।

दो०—सकुचि न रहिये स्याम सुनि ये सतरौंहैं बैन।
देत रचौंहैं चित कहे नेह नचौंहैं नैन॥ ४४४॥

शब्दार्थ—सतरौंहैं=क्रोधयुक्त। रचौंहैं=प्रेमयुक्त। नचौंहैं=चंचल।

(वचन)—मानिनी नायिकाको मनाते हुए नायक प्रति सखीवचन

भावार्थ—हे कृष्ण, नायिका के ये क्रोधयुक्त वचन सुनकर शरमाकर मत रह जाओ (अर्थात् कुछ और खुशामद करो) नेह से चंचल हुए नेत्र स्पष्ट कहे देते हैं कि अब उसके चित्त में अनुराग आ रहा है।

अलंकार—अनुमान।

दो०—चलो चलें छुटि जायगो हठ रावरे सकोच।
खरे चढ़ाये ही तवै आये लोचन लोच॥ ४४५॥

शब्दार्थ—हठ=मान। सकोच=मुलाहिज़ा। ही=थी। लोच=नरमी।




(विशेष)—सखी नायक को मानवती का मान छोड़ाने को ले जाना चाहती है।

भावार्थ—हे लाल चलो, तुम्हारे चलने से, तुम्हारे मुलाहिजे से उसका हठ (मान) छूट जायगा। जो नेत्र तब खूब चढ़ाये हुए थीं वे अब कुछ नरमी पर आगये हैं।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—अनरस हू रस पाइये रसिक रसीली पास।
जैसे साँठे की कठिन गाँठौ भरी मिठास ॥ ४४६ ॥

शब्दार्थ—अनरस = मान, क्रोध। रस = मज़ा। रसिक= हे रसज्ञ। साँठा=ऊँख।

(विशेष)—सखी-वचन नायक प्रति। मान मनाने हेत नायिका के पास ले जाना चाहती है।

भावार्थ—हे रसज्ञ, उस रसीली के पास मानावस्था में भी मज़ा पाओगे (चलो मान मनाओ) जैसे ऊँख की कठिन गाँठ भी मिठास से भरी हुई होती है।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—क्योंहू सह मातन लगै थाके भेद उपाय।
हठ दृढ़ गढ़ गढ़वै सु चलि लीजे सुरँग लगाय ॥४४७॥

शब्दार्थ—सह=चाल (शतरंज मे मुहरे की वह चाल जिससेशाह को मात होती है यहां 'युक्ति')। मात न लगे=उस पर कोई वार नहीं लगती, किसी दलील से मात नहीं मानती। गढ़वै=गढ़पति, किलेदार। सुरँग =(१) प्रेम (२) वह सुराख जिसमे बारूद भर कर आग लगाने से उसके इर्द गिर्द के बड़े मज़बूत पदार्थ भी उखड़ जाते है।

(विशेष)—सखी नायक को नायिका के पास मान मनाने के लिये ले जाना चाहती है।

भावार्थ—हे लाल, मैंने बहुत कुछ समझाया बुझाया पर किसी चाल (युक्ति) से उसपर वार ही नहीं चलती; सब प्रकार फोड़ फाड़ की युक्ति व्यर्थ हो चुकी। वह मान रूपी मज़बूत क़िले की क़िलेदार बनी बैठी है, सो आपही चलकर उसके क़िले को सुरंग लगाकर (अपना अत्यन्त प्रेम जनाकर) जीतिये।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

दो०—वाही निसि तें ना मिटो 'मान' कलह को मूल।
भले पधारे पाहुने ह्वै गुड़हर को फूल ॥ ४४८ ॥

शब्दार्थ—पाहुन=मेहमान। गुड़हर=ओड्रपुष्प (अड़हुल का फूल जहां रहता है वहां झगडा कराता है ऐसा लोकविश्वास है)

(विशेष)—दम्पत्तिने प्रणयमान किया है। प्रणयमानमें परस्पर कोई किसीको नहीं मनाता। सखियां समझा बुझा कर मेल करा देती है। यहां सखियोने बहुत उद्योग किया पर दम्पत्ति मे मेल न हुआ, तब कोई प्रवीणा सखी 'मान' प्रति कहती है।

भावार्थ—हे कलहके मूलकारण 'मान' तू उसी रात्रि से (जिस रात्रि को दम्पति मे प्रणयमान हुआ था) अब तक नहीं मिटा। हे पाहुने, तू तो गुड़हर का फूल होकर भला आया!

(विशेष)—'मान' को पाहुन इस लिये कहा कि मान भी पाहुनकी तरह कभी कभी आता है और पाहुनकी तरह निश्चित् समय तक ही रहता है। अधिक समय तक रहनेसे पाहुनका भी निरादर होता है, और मानका भी मज़ा नहीं रहता। सखी प्रवीणा है, अतः दम्पतिको सुनाकर मान प्रति कहती है, जिससे दोनों समझ जायें कि अधिक दिनो तक मान रखना अच्छा नहीं।

अलंकार—रूपक से पुष्ट पर्यायोक्ति।

दो०—आये आपु भली करी मेटन मान मरोर।
दूरि करौ यह देखिहै छला छिगुनिया छोर॥ ४४९॥

शब्दार्थ—भलीकरी=(बुँदेलखंडी) अच्छा किया। मरोर=गर्व।

(विशेष)—नायकको अन्य नायिका प्रति प्रेम रखनेका अपराधी अनुमान करके नायिकाने मान किया है। मान का हाल सुनकर नायक अपनी प्रियाको मनाने आया है, परन्तु भूलसे उस अन्य नायिकाका छल्ला, जो तंग होने के कारण केवल कनिष्ठिकाके छोर पर अट सका है, पहने हुए ही चल आया है। सखीने देखा है और वह छल्ला उतार डालने को नायक से कहती है।

भावार्थ—आप मान मनाने आये सो अच्छा किया, परन्तु यह छिगुनिया छोर के छल्ले (जो प्रत्यक्ष तुम्हारा नहीं है, वरन् किसी अन्य नायिका का है) को उतार डालो, नहीं तो वह देख लेगी तो दोषी प्रमाणित हो जाओगे।

अलकार—वृत्यनुप्रास।

दो०—हम हारी कै कै हहा पायन पार्‌यौ प्यौऽरु।
लेहु कहा अजहूं किये तेह तरेरे त्यौरु॥ ४५०॥

शब्दार्थ—तेह तरेरे त्यौरु=तेहा से त्यौरी चढ़ाये रहनेसे। प्यौऽरु=(प्यौ+अरु) और पिय को भी।

(बचन)—सखी-बचन मानवती नायिका प्रति।

भावार्थ—हम हा हा करके हार गईं और प्रियतम को भी तेरे पैरोंपर ला डाला (तो भी तेरा मान न छूटा) तो अब तक क्रोध से त्यौरी चढ़ाने से अब क्या पाओगी। (अर्थात् मान मनाने की यहीं तक हद है)।

अलंकार—बिषेशोक्ति।

(क्रिया विदग्धा)

दो०——लखि गुरुजन विच कमल सों सीस छुवायो स्याम।
हरि सनमुख करि आरसी हिये लगाई बाम॥ ४५१॥

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—राधिकाको गुरुजनोंके बीच देख कृष्णने कमल पुष्प से अपना सिर छुवाया (यह जताया कि हम तुम्हारे कमलवत् चरणों पर मस्तक रखते हैं) तब राधिकाने भी अपनी आरसी कृष्ण के सम्मुख करके हृदयसे लगाली यह उत्तर दिया कि मैं भी दर्पणवत् स्वच्छ चित्त में आपको बसाये हुए हूं)।

अलंकार—सूक्ष्म।

(मान और परिहास का सम्मिलन वर्णन।)

दो०——मन न मनावन को करै देत रुठाइ रुठाय।
कौतुक लागे प्रिय प्रिया खिझहू रिझवति जाय॥ ४५२॥

(वचन)—सखी प्रति सखी का कथन।

भावार्थ—दम्पति ने प्रणयमान किया, परस्पर मान मनाने की इच्छा नहीं, वरन् उलटे एक दूसरे को अधिकाधिक रुठा रुठा देता है। प्रिया और प्रीतम दोनो खिलवाड़ की गरज़ से ऐसा करते हैं कि प्रीतम तो खिझाते हैं और प्रिया जो खिझती हुई भी ऐसी चेष्टा करती हैं कि उससे वे अधिक रीझते हैं (अर्थात् नायिका कृत खीझने की चेष्टा नायक को अच्छी लगती है इससे वह मान मनानेके वदले उलटे उसे खिझाता है)।

अलकार—पांचवी विभावना (खिझहू रिझवति जाय)।




दो०---सकत न तुव ताते बचन मो रस को रस खोय।
खिन खिन औटे खीर लौं खरो सवादिल होय॥ ४५३॥

शब्दार्थ---खीर=(क्षीर) दूध। सवादिल=स्वादिष्ट, मज़ेदार।

(वचन)---नायक-वचन नायिका प्रति।

भावार्थ---हे प्यारी तेरे क्रुद्ध बचनों से मेरा प्रेम नहीं बिगड़ सकता। अधिकाधिक औटाये जाने पर जैसे दूध स्वादिष्ट होता जाता है वैसे ही तेरे क्रुध बचनों से मेरा प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता जाता है।

अलकार---पूर्णोपमा।

दो०---खरे अदब इठलाहटौ उर उपजावति त्रास।
दुसह संक विष की करै जैसे सोंठि मिठास॥ ४५४॥

शब्दार्थ--अदब=आदर। इठलाहट=परिहास।

(विशेष)---जैसे हल्दी के खेतों में कुछ गाँठें ऐसी पैदा हो जाती हैं कि जहरीली होती हैं। उनके खाने से कै और दस्त आने लगते हैं। इसी प्रकार सोंठ के खेत में भी किसी विशेष कारण से कुछ गाँठें ऐसी पैदा हो जाती हैं जो स्वाद में तो मीठी होती हैं पर जहरीली होती हैं। इसके खाने से भी कै होती है और सिर में दर्द पैदा हो जाता है जो बड़ी मुशकिल से अच्छा होता है।

(वचन)---नायक-बचन सखी प्रति।

भावार्थ---आज तो प्यारीका बड़े आदरके साथ इठलाना मेरे हृदयमें भय उपजाता है, जैसे सोंठकी मिठास विष की कठिन शंका पैदा करती है। तात्पर्य यह कि इसका खाली इठलाना तो अच्छा है, पर साथ ही अदब (आदर) करना शंका दिला रहा है कि मैं सापराध हूं और प्यारी मुझपर क्रुद्ध है।

अलकार---उदाहरण।

(प्रेम गर्विता)

दो०--राति दिवस हौंसै रहति मान न ठिकु ठहराय।
जेतो औगुन ढूँढ़िये गुनै हाथ परिजाय ॥ ४५५ ।

शब्दार्थ—हौंस = अरमान, प्रबल इच्छा। न ठिकु ठहराय= ठीक नहीं पड़ता।

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ--हे सखी मुझे रातदिन मान करने की अभिलाषा तो रहती है, परन्तु मान करने का ठीक नहीं पड़ता। जितना ही मैं नायक मे अवगुण ढूंढती हूं उतना उनके गुण ही हाथ लगते हैं (नायक मुझपर अत्यन्त प्रेम रखता है और किसी दूसरी नायिकाको कदापि नहीं चाहता अतःमान कैसे करूं)

अलकार-विषादन-(जहँ चित चाही वस्तु ते पावै वस्तु विरुद्ध)।

(पति अनुरागिनी)

दो०—सतर भौंह रूखे वचन करत कठिन मन नीठि।
कहा करौं ह्वै जाति हरि हेरि हँसौंही डीठि ॥ ४५६ ॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ--हे सखी, मैं भौंहों को टेढ़ी, वचनों को रूखे और मनको किसी प्रकार कठोर तो कर लेती हूं, परन्तु क्या करूं कृष्ण को देखकर मेरी दृष्टि हँसी की सी हो जाती है (मान करते नहीं बनता)।

अलङ्कार—तीसरी विभावना।

दो०— मो हीं को छुटि मान गो देखत हीं ब्रजराज।
रहीं घरिक लौं मान सी मान करे की लाज़ ४५७

(वचन)--नायिका-वचन सखी प्रति।




भावार्थ—हे सखी (तेरे कहने से मैंने मान तो किया पर) कृष्ण को देखते ही मेरे मन का मान छूट गया और (जो तूने सिखलाया था कि एक घड़ी तक मान किये रहना सो) मान की तरह मान करने की लज्जा (कि व्यर्थ ही मान कर बैठी थी) एक घड़ी तक रही।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में चपलातिशयोक्ति। उत्तरार्द्धमें उपमा।

दो०—दहैं निगोड़े नैन ये गहैं न चेत अचेत।
हौं कसुकै रिसहे करौं ये निसिखे हँसिदेत॥ ४५८॥

शब्दार्थ—निगोड़े=जिसके पैर स्थिर न रहैं अर्थात् चंचल। कसुकै=कष्ट करके। निसिखे=शिक्षा न मानने वाले।

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—जरैं ये मेरे चंचल नेत्र, ये बेखबर कुछ भी होश नहीं रखते। मैं तो डाँट डाँट कर इन्हें क्रुद्ध बनाती हूं और ये शिक्षा न मानकर नायक को देखतेही हँस देते हैं

अलंकार—पंचम विभावना।

दो०—तुहूँ कहै हौं आपु हू समुझति सबै सयान।
लखि मोहन जो मनु रहै तौ राखौं मन मान॥ ४५९॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी तू भी कहती है और मैं स्वयं भी सब सयानपने की बातें समझती हूं, परन्तु करूं क्या, मनमोहन नायक को देखकर जो मेरा मन मेरे पास रहै तब तो मैं मन में मान रक्खूं (अर्थात् मन ही मेरे पास नहीं रहता तो मान कहाँ रहै, क्योंकि मान का आधार तो मनही है न) ।

अलंकार—विशेषोक्ति और संभावना।

दो०—मोहिं लजावत निलज ये हुलसि मिलत सब गात।
भानु उदय की ओसलौं मानु न जान्यौ जात॥ ४६०॥

शब्दार्थ--निलज = बेशर्म। हुलसि = हर्षित होकर। सब गात = सब अंग (नेत्र, कपोल, भुजादि)।

(वचन)--नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ--हे सखी, (तेरे कहने से मैंने मान तो किया परंतु) मेरे ये निर्लज्ज अंग (नेत्र, कपोल, कुच, भुज इत्यादि) मुझे लज्जित कराते हैं क्योंकि नायक को देखते ही ये हर्षित होकर उससे मिल जाते हैं, और फिर सूर्य्योदय के बाद की ओस की तरह न मालूम 'मान' किस तरह और कहाँ चला जाता है।

अलंकार--पूर्णोपमा।

दो०--खिंचे मान अपराध ते चलिगे बढ़े अचैन।
जुरत दीठि तजि रिस खिसी हँसे दुहुनके नैन॥ ४६१॥

शब्दार्थ--खिंचे=रुके। अचैन=बे चैनी। खिसी=लज्जा।

(वचन)--सखी-वचन सखी प्रति (दम्पति की दशा-वर्णन)।

भावार्थ--दोनो मान और अपराध से रुके (अर्थात् नायिका मान से रुकी और नायक अपराधी होने से रुका) परंतु जब बेचैनी बढ़ी तब दोनो परस्पर मिलने को चले, और दृष्टि जुड़ते ही रिस और लज्जा छोड़ कर (अर्थात् नायिका के नेत्रो ने रिस छोड कर और नायक के नेत्रो ने लज्जा छोड़ कर) दोनो के नेत्र हँस पड़े।

अलंकार--क्रम और चपलातिशयोक्ति।

(उत्कंठिता)

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन।
रतिपाली आली अनत, आये बनमाली न॥ ४६२॥

शब्दार्थ--चटकाली=(चटक + आली) गौरवा गौरैया




चिड़ियों का समूह (पक्षि समूह)। अनत=अन्यत्र।

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—आकाश में अरुणोदय की लाली आगई, रात्रि व्यतीत हुई, पक्षि समूह भी शब्द करने लगा और बनमाली (श्रीकृष्ण) न आये, जान पड़ता है उन्हो ने कहीं अन्यत्र किसी अन्य स्त्री से प्रेम का पालन किया।

अलकार—अनुप्रास और अनुमान।

दो॰—दच्छिन पिय ह्वै वाम बस बिसराई तिय आन।
एकै बासर के बिरह लागे बरष बिहान॥ ४६३॥

शब्दार्थ—दच्छिन प्रिय=वह नायक जो बहुत स्त्रियो से समान प्रेम रक्खे। आन=अन्य। बिहान लागे=बीतने लगे।

(वचन)—सखी-वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे नायक तुम ने दक्षिण होकर भी एक बामा अर्थात् कुटिला स्त्री के वश होकर अन्य (सरल स्वभावा) स्त्रियो को भुला दिया (ऐसा तुम्हें न करना चाहिये) देखो एक ही दिन का बिछोह उन्हें एक वर्ष के समान लगता है।

(विशेष)—दक्षिण=चतुर। तिय और आन में द्वन्द समास माने तो यो अर्थ होगा:—

हे चतुर नायक, एक अन्य कुटिला स्त्री के वश होकर तुमने अपनी निज स्त्री और अपनी आनबान (चतुराई-का दावा) अथवा बिवाह मे की हुई प्रतिज्ञा भुलादी देखो उस तुम्हारी बिवाहिता स्त्री को एक ही दिन तुम्हारे विरह मे वर्ष समान बीतने लगा है।

अलकार—पूर्वार्द्ध मे विरोधाभास उत्तरार्द्ध मे अत्युक्ति।

दो॰—आपु दयो मन फेरि लै पलटै दीन्ही पीठि॥
कौन चाल यह रावरी लाल लुकावत दीठि॥ ४६४॥

शब्दार्थ---निलज = बेशर्म। हुलसि = हर्षित होकर। गात = सब अंग (नेत्र, कपोल, भुजादि)।

(वचन)---नायिका-बचन सखी प्रति।

भावार्थ---हे सखी, (तेरे कहने से मैंने मान तो परंतु) मेरे ये निर्लज्ज अंग (नेत्र, कपोल, कुच, भुज इत मुझे लज्जित कराते हैं क्योंकि नायक को देखते ही ये ह होकर उससे मिल जाते हैं, और फिर सूर्य्योदय के बा ओस की तरह न मालूम 'मान' किस तरह और चला जाता है।

अलंकार---पूर्णोपमा।

दो०---खिँचे मान अपराध ते चलिगे वढ़े अचैन।
जुरत दीठि तजि रिस खिसौ हँसे दुहुनके नैन॥ ४६

शब्दार्थ---खिंचे=रुके। अचैन=बे चैनी। खिसी=लज्जा

(वचन)---सखी-बचन सखी प्रति (दम्पति की दशा-वर्ण

भावार्थ---दोनो मान और अपराध से रुके (अर्थात् ना मान से रुकी और नायक अपराधी होने से रुका) परंतु बेचैनी वढ़ी तव दोनों परस्पर मिलने को चले, और दृष्टि जु ही रिस और लज्जा छोड़ कर (अर्थात् नायिका के नेत्रों ने छोड कर और नायक के नेत्रो ने लज्जा छोड़ कर) दोन नेत्र हँस पड़े।

अलकार---क्रम और चपलातिशयोक्ति।

(उत्कंठिता)

दो०---नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन।
रतिपाली आली अनत, आये वनमाली न॥ ४६२

शब्दार्थ---चटकाली=(चटक + आली) गौरवा गौ

चिड़ियों का समूह (पक्षि समूह) । अनत=अन्यत्र ।

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति ।

भावार्थ—आकाश में अरुणोदय की लाली आगई, रात्रि व्यतीत हुई, पक्षि समूह भी शब्द करने लगा और बनमाली (श्रीकृष्ण) न आये, जान पड़ता है उन्हो ने कहीं अन्यत्र किसी अन्य स्त्री से प्रेम का पालन किया ।

अलंकार—अनुप्रास और अनुमान ।

दो०—दच्छिन पिय ह्वै बाम बस बिसराई तिय आन ।
एकै बासर के बिरह लागे बरष बिहान ॥ ४६३ ॥

शब्दार्थ—दच्छिन प्रिय=वह नायक जो बहुत स्त्रियों से समान प्रेम रक्खे । आन=अन्य । बिहान लागे=बीतने लगे ।

(वचन)—सखी-वचन नायक प्रति ।

भावार्थ—हे नायक तुम ने दक्षिण होकर भी एक बामा अर्थात् कुटिला स्त्री के वश होकर अन्य (सरल स्वभावा) स्त्रियों को भुला दिया (ऐसा तुम्हें न करना चाहिये) देखो एक ही दिन का बिछोह उन्हें एक वर्ष के समान लगता है ।

(विशेष)—दक्षिण=चतुर । तिय और आन में द्वन्द समास मानें तो यो अर्थ होगा:—

हे चतुर नायक, एक अन्य कुटिला स्त्री के वश होकर तुमने अपनी निज स्त्री और अपनी आनवान (चतुराई-का दावा) अथवा बिवाह में की हुई प्रतिज्ञा भुलादी देखो उस तुम्हारी बिवाहिता स्त्री को एक ही दिन तुम्हारे बिरह मे वर्ष समान बीतने लगा है ।

अलंकार—पूर्वार्द्ध मे विरोधाभास उतरार्द्ध मे अत्युक्ति ।

दो०—आपु दयो मन फेरि लै पलटै दीन्ही पीठि ॥
कौन चाल यह रावरी लाल लुकावत दीठि ॥ ४६४ ॥

शब्दार्थ—पलटे=बदले में। लुकावत=चोराते हो, छिपाते हो।

(वचन)—परकीया का ओलहना नायक प्रति।

भावार्थ—आप ने जो अपना मन मुझे दिया था उसे वापस लेकर अब उसके बदले में पीठ दी। हे लाल यह आपकी कौन सी चाल है जो अब मुझसे आँखें चोराते हो अर्थात् नज़र तक नहीं मिलाते।

अलंकार—परिवृत्त।

दो०—मोहि दयो मेरो भयो रहत जु मिलि जिय साथ।
सो मन बाँधि न सौंपिये पिय सौतिन के हाथ॥ ४६५॥

(वचन)—धीरा नायिका का ओरहना नायक प्रति।

भावार्थ—हे प्रियतम जो मन आपने मुझे दिया वह मेरा हो चुका और वह मेरे प्राण से मिला हुआ रहता है, अब उस मन को बाँधकर (जबरदस्ती) सौंतिन के हाथ मत सौंपिये (अर्थात् आप बड़ी जबरदस्ती करते हैं। एक तो प्रदानित वस्तु पर आपका कोई अधिकार नहीं दूसरे उसी से मेरा जी मिलगया है अतः उसीके साथ सटा हुआ मेरा प्राण भी जायगा मेरी वस्तु पर आपका क्या अधिकार (पाठक देखिये तो कैसी कानूनदां नायिका है)।

अलंकार—काव्यलिंग।

(धृष्ट नायक)

दो०—मारयौ मनुहारनि भरी गारयो खरी मिठाहिं।
वाको अति अनखाहटौ मुसुक्याहट विन नाहिं॥ ४६६॥

शब्दार्थ—मनुहार=आदर, प्यार। अनखाहट=क्रोध।

(वचन)—नायक-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—उसकी मार भी प्यार से भरी हुई और गाली




भी बहुत मिठास युक्त होती है। उसका क्रोध भी बिना हँसी के नहीं होना अर्थात् उसकी प्रत्येक क्रिया मुझे सुखदायिनी जान पड़ती है।

(विशेष)—स्मृति दशा है।

अलङ्कार—विरोधाभास (१-क्रिया का क्रिया से, २-द्रव्य का गुण से, ३-द्रव्य का द्रव्य से)।

दो०— तुम सौतिन देखत दई अपने हिय तें लाल।
फिरत डहडही सबनि में वही मरगजी माल ॥४६७॥

शब्दार्थ—डहडही=प्रसन्न। मरगजी=कुम्हलाई हुई।

(वचन)—प्रेम-गर्विता नायिकाकी सखीका वचन नायक प्रति।

भावार्थ—हे लाल, तुमने जो सब सौतो के सामने उस रोज अपने हृदय से उतारकर माला उसे दी थी, (यद्यपि वह माला अब कुम्हला गई है तो भी वह उसे पहने हुए) उसी कुम्हलानी माला के घमंड मे सबो के मध्य अति प्रसन्न हुई फिरती है।

अलंकार—पंचम विभावना।

दो०—बालम बारी सौति के सुनि परनारि विहार।
भो रस अनरस रिस रली रीझि खीझ इकबार ॥४६८॥

शब्दार्थ—बालम=(बल्लभ)पति। रस=सुख। अनरस=दुःख। रिस=क्रोध। रली=क्रीड़ा। रीझ = प्रसन्नता। खीझ=अप्रसन्नता। इकबार=एक ही सग, एक ही समय।

(वचन)—सखीका वचन सखी-प्रति (नायिकाकी दशा वर्णन)

भावार्थ—जब उस नायिका ने सुना कि सौति की पारी में (जिस दिन नायक को सौति के यहां रहना चाहिये था) बालम ने परस्त्री के संग विहार किया, तब उसे सुख भी हुआ और दुख भी, क्रोध भी हुआ और क्रीड़ा भी (मजाक भी

सूझा) तथा एक ही साथ रीझी भी और खीझी भी।

(विशेष)—सुख ईर्ष्याजन्य, कि अच्छा हुआ सौति को दुःख हुआ। दुःख इस बात का की एक सौत तो थी ही अब एक और हुई। रिस इस बात की कि नायक मेरे ही यहां क्यों न चला आया। रली (क्रीड़ा या मजाक) इस बात पर कि सौत ऐसी गुणवती नहीं है कि प्रीतम को अपने बश में कर के अपने पास रख सके। रीझ इस बात की कि नायक मेरे ऊपर अधिक अनुरक्त है क्योंकि मेरी पारी में कहीं नहीं जाता। खीझ इस बात की कि बुरी आदत पड़ी, संभव है कभी मेरी पारी के दिन भी नायक परस्त्री के पास जाय। इस में किलकिंचित हाव है।

अलंकार—समुच्चय से पुष्ट हेतु।

दो०—सुघर सौति बस पिय सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास।
'लखी सखी' तन दीठि करि सगरब सलज सहास ॥४६९॥

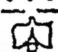
(बचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—"चतुर सौत के बश नायक है" यह बात सुनकर नवल बधू को दुगुना उत्साह हुआ और गर्व, लज्जा और हँसी सहित सखी को ओर देखा (तात्पर्य यह कि मुझ में चतुराई के आलावा रूप और गुण भी सवत से अधिक है मैं शीघ्र ही नायक को अपनी ओर आकृष्ट कर लूंगी, तुम लोग कुछ चिंता मत करो)।

अलंकार—विभावना (पंचम)—नायक को सपत्नी के वश सुनकर खेद होना चाहिये था सो हुलास हुआ।

दो०—हठि हित करि प्रीतम हियो कियो जु सौति सिंगारु।
अपने कर मोतिन गुह्यो, भयो हरा हर-हारु ॥४७०॥





शब्दार्थ—हरा=हार। हर-हारु=(महादेव का हार) सर्प।

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—अपने हाथ से मोतियों का हार गूंथ कर हठ और प्रेम पूर्वक एक नायिका ने (जेष्ठा ने) नायक के हृदय को शृंगारित किया (पहनाया), वही हार दूसरी नायिका (कनिष्ठा) की दृष्टि में सर्पवत् हो गया (अर्थात् ईर्ष्या के कारण दुखदायी देख पड़ा)।

(विशेष)—व्याघात-(नायक के हृदय पर पड़ा हुआ मोतियों का हार सुखदहोना चाहिये था परंतु सवति का गुहा और पहनाया हुआ होने के कारण दुखद होगया) चतुर्थ चरण में वाचक धर्म लुप्तोपमा भी है।

दो०—विथुरचो जावक सौति पग निरखि हँसी गहि गाँस।
सलज हँसौहीं लखि लियो आधी हँसी उसाँस॥४७१॥

शब्दार्थ—विथुरचौ=बिखरा हुआ। गांस=ईर्ष्या। उसांस=ऊँची सांस।

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—सवति (जेष्ठा) के पैर में बिखरा हुआ महावर देखकर ईर्ष्या वश (कनिष्ठा) हँसी (यह समझ कर कि ऐसी फूहड है कि इसे महावर देना तक नहीं आता), परंतु तुरंत नायक को लज्जित और उस सवति (जेष्ठा) को भी हँसती हुई देखकर (और अनुमान करके कि यह महावर नायक का लगाया हुआ है) हँसी पूरी होने से पहले ही (हँसी के बीच ही में) ऊँची साँस ली।

(विशेष)—व्याघात-विथुरा जावक जो पहले हँसी का कारण हुआ था वहीं समझने पर खेद का कारण हो गया।

दो०—बाढ़त तो उर उरज भरु भरि तरुनई विकास।
बोझन सौतिन के हिये आवत रुँधी उसास ॥४७२॥

शब्दार्थ—उरज=कुच। भरु=भराव, भार। रुँधी=रुकी हुई।

(वचन)—जेष्ठा नायिका प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—तेरे वक्षस्थल पर कुचों का भराव तथा भरी जवानी का विकाश बढ़ने से बोझ के कारण सवति के हृदय से रुक रुक कर ऊँची साँस निकलती है (भाव यह कि ज्यों ज्यों तेरी जवानी विकसती है सवति दुखित होती है)।

अलंकार—असंगति (प्रथम)।

(परोसिन प्रेम)

दो०—डीठि परोसिनि ईठि ह्वै कहे जु गहे सयान।
सबै सँदेसे कहि कह्यौ मुसुकाहट में मान ॥४७३॥

शब्दार्थ—ईठि=मित्र, सखी। सयान=चतुराई।

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन।

(विशेष)—किसी नायक की परोसिन से प्रीति थी। एक वार नायक को परोसिन से हँसते हुए नायिका ने देखा था तब मान किया था। आज ऐसा मौका आया कि नायक विदेश जाने को तैयार हुआ तो नायिका व्याकुल हुई। परोसिन ने आकर नायिका से सहानुभूति जताई। तब नायिका ने कहा कि बहिन तू ही मेरी व्याकुलता का हाल सुनाकर नायक को समझा दे कि विदेश न जाय, पर ऐसी चतुराई से कहना कि मेरा कहना भी प्रकट न हो (क्योंकि नायिका मध्या है), तब परोसिन ने नायिका का सब संदेशा बड़ी चतुराई से नायक को सुनाया और अंत में यह कहा कि एक समय वह था कि मुसकुराने पर नायिका ने मान किया था और आज ऐसा

मौका आया कि उसी ने आप से एकान्त में बात चीत करने तक की आज्ञा दे दी। अब आप मेरे कहने से रुक जाइये तो नायिका सदैव मेरी कनौड़ी रहेगी तो फिर आपका मेरा प्रेम भी निर्विघ्न चलता रहैगा और अब मुसकुराने की कौन बात प्रत्यक्ष बात चीत करते भी देख लेगी तो कुछ न कह सकैगी।

भावार्थ—मित्र परोसिन ने ढीठ होकर (निडर होकर) नयिका के वे सब संदेसे, जो उसने बड़ी चतुराई से कहने को कहे थे, नायक से कहे और अंत मे वह समय भी नायक को स्मरण कराया जब नायिका ने केवल मुसकुराते देखकर मान किया था (तात्पर्य यह कि अब वह डर नहीं रह गया)।

अलंकार—पर्यायोक्ति (नायिका के उपकार के मिस अपना भी कार्य साधन किया)।

दो०—चलत देत आभार सुनि वहीं परोसिहिं नाह ।
लसी तमासे की दृगनि हाँसी आँसुन माह ॥ ४७४ ॥

शब्दार्थ—आभार = घर की सुरक्षा और प्रबंध वा देख भाल का भार। नाह = पति। तमासे की=अद्भुत। दृगनि=आँखों में।

(विशेष)—कोई नायक विदेश जाता है। उसको नायिका व्याकुल हो आँसू गिराती है। परंतु जब देखा कि पति घर का आभार उसी परोसी को देता है जिससे उसकी गुप्त प्रीति है, तब उसके आंसू भरे नेत्रों मे अद्भुत प्रकारकी हँसी आई।

(वचन)—सखी प्रति सखी-बचन।

भावार्थ—जब देखा कि पति चलते समय घर की निगरानी और सँभार का भार उसी परोसी को दे रहा है (जिससे गुप्त प्रीति है) तब नायिका के आँसू भरे नेत्रों में बड़ी अद्भुत प्रकार की हँसी शोभित हुई।

अलंकार—प्रथम प्रहर्षण।



दो०—छला परोसिनि हाथतें छलकरि लियो पिछानि।
पियहि दिखायो लखि बिलखि रिस सूचक मुसुकानि ४७

(विशेष)—निशानी की तौर पर नायक ने अपनी गुप्त प्रेयसी परोसिन को छल्ला दिया है। उसे नायिका ने पहँचाना।

(बचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—नायिकाने अपने नायकका छल्ला पहँचान कर परोसिनके हाथ से किसी मिससे ले लिया। उसे खूब गौर से देखकर पुनः नायकको (लज्जित करने के लिये) दिखलाया और साथही व्याकुलतासे क्रोध सूचक रुखसे मुसुकाई भी।

अलंकार—सूक्ष्म।

(प्रवत्स्यत प्रेयसी)

दो०—रहिहैं चंचल प्रान ये कहि कौनकी अगोट।
ललन चलन की चित धरी कल न पलनकी ओट४७६

शब्दार्थ—अगोट = रक्षा, आड़ (अग्र + ओट)।

(वचन)—नायिका-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, प्यारेने तो बिदेश जानेकी इच्छाकी और यहाँ एक पल मात्र भी ओट रहने से कल नहीं पड़ती। अब यह तो बतला कि ये चंचल प्राण किसकी आड़में बच सकेंगे।

अलंकार—अनुप्रास और काकुवक्रोक्ति।

दो०—पूस मास सुनि सखिनसों साईं चलत सवार।
गहिकर बीन प्रवीन तिय राग्यो राग मलार ॥४७७॥

शब्दार्थ—सवार=सवेरे, प्रातःकाल। राग्यो=अलापा, गाया।

(वचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—पूस के महीने में सखियों से यह सुनकर कि नायक कल प्रातःकाल विदेश जायगा, उस गानविद्या प्रवीणा

नायिका ने बीणा उठा कर मेघ मलार राग धर अलापा (जिससे पानी बरसा और नायक का गमन रुक गया)।

(विशेष)—इसमें प्रवत्स्यत प्रेयसी क्रिया विदग्धा नायिका है।

अलंकार—पर्यायोक्ति (मिसकर कार्य साधन)। उपायाक्षेप (केशव के मत से)।

दो०—ललन चलन सुनि चुप रही बोली आपु न ईठि।
राख्यो गहि गाढ़े गरें मनो गलगली डीठि ॥४७८॥

शब्दार्थ—ईठि = मित्र, सखी। गलगली = आँसू भरी।

(वचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे ईठि (हे सखी) नायक का चलना सुन कर वह नायिका चुप हो रही कुछ बोल न सकी। उसकी वचन-शक्ति ऐसे रुक गई मानो आँसू भरी दृष्टि ने उसका गला दबा कर बोली को रोक दिया।

अलंकार—अनुक्त विषया उत्प्रेक्षा।

दो०—बिलखी डबकौंहैं चखनि तिय लखि गमन बराय।
पिय गहबर आये गरे राखी गरे लगाय ॥ ४७९ ॥

शब्दार्थ—डबकौंहैं=आँसूसे परिपूर्ण। गमन बराय=यात्रा-बंद करके। पिय गहबर गरे आये=नायक का भी गला भर आया, कंठ गद्गद् होगया।

(बचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

(विशेष)—हे सखी, नायिका को, व्याकुल और अश्रुपूर्ण नेत्रों सहित देख कर, नायक ने अपनी यात्रा रोक कर गद्गद् कंठ हो कर उसे बड़ी देर तक गले से लगा रक्खा।

अलंकार—'गरे' शब्द की आवृत्ति से लाटानुप्रास। नायक का इष्ट था यात्रा करना सो रुक गया अतः विषादन। नायिका



की इष्ट सिद्धि हुई अतः प्रहर्षण। अतः संसृष्टि।

दो०—चलत चलत लौं लै चले सब सुख संग लगाय।
ग्रीषम-वासर सिसिर-निसि पिय मो पास बसाय।४८०

शब्दार्थ—चलत चलत लौं = अभी प्रस्थान के समय में ही (मेरी यह दशा है तो न जाने प्रवास समय में क्या होगी)।

(वचन)—नायिका-वचन सखी-प्रति।

(विशेष)—धर्मशास्त्र की विधि है कि यात्रा करने के दिन से तीन दिन पहले से स्त्रीप्रसंगादि त्याग करना चाहिये। इन्हीं तीन दिनों का हाल नायिका सखी से कहती है। इन्हीं तीन दिनों को प्रस्थान समय कहते हैं। प्रवत्स्यत प्रेयसी नायिका के वर्णन में इन्हीं तीन दिनों के दुखःका वर्णन हुआ करता है।

भावार्थ—चलते समय (प्रस्थान ही समय में) ही मेरे सब सुख अपने साथ लेते गये। सिसिर की रात्रियों में ग्रीष्म के दिन मेरे पास बसा दिये (अर्थात् जाड़े की रातें मुझे ग्रीष्म के दिनों के समान तप्त जान पड़ने लगीं)।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा (मानो शब्द छिपा हुआ है)।

दो०—अजौं न आये सहज रँग विरह दूबरे गात।
अबहीं कहा चलाइयत ललन चलन की बात ॥४८१॥

(वचन)—सखी-वचन नायक प्रति। नायक परदेश से आया है और फिर जाना चाहता है।

भावार्थ—हे ललन, अभी इतनी शीघ्र चलने की बात क्या कहते हो, अभी तो प्रथम प्रवास के विरह से दुबले हुए अंगों में सहज स्वाभाविक रंग भी नहीं आया।

शब्दार्थ—गूढ़ोत्तर—(नायक का प्रश्न कि 'हमें विदेश जाने की आज्ञा दो' छिपा हुआ है)।



अलंकार—उपायाक्षेप—(केशव के मत से)।

दो०—ललन चलन सुनि पलन में अँसुवा झलके आय।
भई लखाइ न सखिन हू झूठे ही जमुहाय ॥ ४८२ ॥

(बचन)—कवि की उक्ति।

भावार्थ—नायक का चलना सुन के नायिका के पलकों में आंसू आगये, परन्तु यह बात सखियों को भी लक्षित न होने पाई क्योंकि नायिका झूठे ही अँगड़ाई लेकर जँभाई लेने लगी (अँगड़ाई, जँभाई में बहुधा आंसू आ जाते हैं)।

अलंकार—युक्ति—(ठगै क्रिया करि आनको मरम छिपावनहेत)।

दो०—चाहभरी अति रसभरी बिरह भरी सब गात।
कोरि सँदेसे दुहुन के चले पौरिलौं जात ॥ ४८३ ॥

शब्दार्थ—कोरि = कोटि, असंख्य । दुहुन के = नायक नायिका के। सँदेसे चले=संदेसे भेजे गये।

(बचन)—सखी प्रति सखी-बचन।

भावार्थ—दोनों की (अर्थात् नायक तथा नायिका की) सब बातें चाह प्रेम और बिरह से परिपूर्ण थीं। पौर तक जाते जाते, दोनों की ओर से असंख्य सन्देसे आये और गये।

अलंकार—लाटानुप्रास ("भरी" शब्द की आवृत्तिसे)।

दो०—मिलि मिलि चलिचलि मिलि चलत आँगन अथयो भानु
भयो महूरत भोरके पौरिहि प्रथम मिलानु ॥ ४८४ ॥

शब्दार्थ—अथयो=अस्त होगया। पौरि=बरोठा, दहलीज़। मिलानु=मुकाम।

(बचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—मिल मिल चलते, पुनः चलकर मिलते चलते में भीतर से आँगन तक आने ही में सूर्यास्त का समय आगया।





भोर ही का मुहूर्त था पर इस प्रेमाधिक्य के मिलने भेंटने की कर्रवाई से दिनभर में इतना ही सफर हुआ कि पहला मुक़ाम बरोठे ही में हुआ।

अलंकार—प्रेमात्युक्ति।

(विरह वर्णन)

दो०—दुसह विरह दारुन दसा रह्यौ न और उपाय।
जात जात जियराखिये पियकी बात सुनाय ॥४८५॥

शब्दार्थ—दारुन=अति भयानक। जिय=जीव,प्राण। पियकी बात=नायक के आगमन की चर्चा।

(वचन)—सखी का वचन सखी प्रति। विरह में नायिका की व्याधि दशा का वर्णन।

भावार्थ—असह्य विरह में नायिका की भयंकर दशा हो रही है, अब और कोई उपाय नहीं रह गया। सिर्फ प्रियतमागमन की चर्चा करके उसके प्रणों की रक्षा की जाती है।

अलकार—पर्यायोक्ति- (मिस करि कार्य साधन)।

दो०—प्रजर्‌यो आगि वियोग की बह्यौ विलोचन नीर।
आठौं जाम हियो रहै उड़्यौ उसास समीर ॥४८६॥

शब्दार्थ—प्रजर्‌यौ=खूब तपा हुआ। विलोचन=दोनों नेत्र। उसास=उर्ध्वस्वांस।

(वचन)—सखी द्वारा नायक प्रति नायिका निवेदन।

भावार्थ—हे लाल, सुनो हमारी लाड़िली का हृदय भीतर से तो विरहकी अग्नि से खूब तपा हुआ है, और बाहर से आँसुओं का पानी उस पर से बहता है, और आठो पहर उसका हृदय उर्ध्वस्वास की हवा से ऊपर को उठा रहता है (अतः शीघ्र चलो, नहीं तो मर जायगी)।

अलंकार—अत्युक्ति।

दो०—पलनि प्रगटि बरुनीन बढ़ि छन कपोल ठहरात।
अँसुवा परि छतिया छनक छनछनाय छपिजात॥४८७॥

शब्दार्थ—छपिजात=गायब होजाते है,भाफ बनकर उड़ जाते हैं।

(बचन)—विरह निवेदन—सखी द्वारा नायक प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलकार—अत्युक्ति।

दो०—करि राख्यो निरधार यह मैं लखि नारी-ज्ञान।
वहै बैद ओषध वहै वहै जु रोग निदान॥ ४८८॥

शब्दार्थ—निरधार=निश्चय, तशखीस। नारी-ज्ञान=(१) इस स्त्री की चेष्टा से (२) नाड़ी की गति से। निदान=रोगका कारण।

(बचन)—सखी प्रति सखी-बचन।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—हेतु (दूसरा)।

दो०—मरिबेको साहस ककै बढे विरह की पीर।
दौरति है समुहे ससी सरसिज सुरभि समीर॥४८९॥

शब्दार्थ—समुहे=सम्मुख, सामने। सुरभिसमीर=सुगंधित वायु

(बचन)—सखी-बचन नायक प्रति। बिरहकी उन्माद दशा।

भावार्थ—हे लाल, तुम्हारी प्यारी की यह दशा है कि बिरह की पीड़ा बढ़ने पर मरने का साहस करके चंद्रमा, कमल और सुगंधित समीर के सम्मुख दौड़ती है।

अलंकार—श्रुत्यनुप्रास और विचित्र।

दो०—ध्यान आनि ढिग प्रानपति मुदित रहति दिनराति।
पल कंपति पुलकति पलक पलक पसीजति जाति॥४९०॥



(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति। स्मृति दशा वर्णन।

भावार्थ—ध्यान द्वारा पति को पास लाकर रात दिन आनंदित रहा करती है। कभी काँपती है, कभी रोमांचित होती है, और कभी स्वेदयुक्त होती है।

अलंकार—कारक दीपक।

दो०—सकै सताय न बिरह तम निसदिन सरस सनेह।
रहै वहै लागी दृगनि दीपशिखा सी देह ॥४९१॥

(वचन)—नायक की स्मृति-दशाका वर्णन। सखीसे सखी कहती है।

भावार्थ—बिरह रूपी अँधेरा नायक को नहीं सता सकता, क्योंकि वही अति स्नेहयुक्त नायिका की दीपशिखा के समान देह नायक की आँखों से लगी रहती है (अर्थात् सदैव ध्यान किया करता है)।

अलंकार—रूपक और श्लेष से पुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—बिरह जरी लखि जीगननि कही न वहि कै वार।
अरी आव भजि भीतरै बरसत आजु अँगार ॥४९२॥

शब्दार्थ—जीगन=जुगनू, खद्योत।

(वचन)—बिरहिनी की प्रलाप दशा का कथन सखी नायक से कहती है।

भावार्थ—बिरह से जली हुई उस नायिका ने जुगनुओं को देख कर मुझसे कितनी वार नहीं कहा (अर्थात् बहुत बार कहा) कि अरी सखी, भीतर भाग आ आज वर्षाबुन्द के बदले आकाश से अंगार बरस रहे है।

अलंकार—भ्रम।

दो०—अरी परे न करै हियो खरे जरे पर जार।
लावति घोरि गुलाब सों मिलै मलै घनसार ॥४९३॥




शब्दार्थ--परे न करै=दूर क्यों नहीं करती। लावति=लगाती है। मलै=मलयागिरि चंदन। घनसार=कपूर।

(वचन)--सखी-वचन सखी प्रति। नायिका की व्याधि दशा का वर्णन।

भावार्थ--अरी सखी तू इसे हटाती क्यों नहीं, यह दासी बार बार गुलाब जल में चन्दन और कपूर घिस घिस कर मेरे हृदय पर लगाती है जिससे और भी अधिक जलन बढ़ती है।

अलंकार--बिषम (तीसरा) शीतलोपचार से अधिक जलन।

दो०--कहे जु बचन बियोगिनी बिरह बिकल बिललाय।
किये न केहि अँसुवा सहित सुवा सु बोल सुनाय।४९४

शब्दार्थ--बिललाना = बे सँभार होकर प्रलाप बकना।

(विशेष)--नायिका बिरह से व्याकुल होकर जो प्रलाप करती है वे वचन उसका सुवा सुनकर सीख लेता है। पुनः जब सुवा वे ही बचन दूसरों के सामने (सिखे हुए पाठ की तरह) बोलता है तब श्रोतागण रो उठते हैं। बिहारी का ही काम है कि बिरह का ऐसा वर्णन करै। बिरह-व्याकुलता के वर्णन की हद कर दी गई है।

(वचन)--सखी का बचन नायक प्रति अथवा सखी प्रति।

भावार्थ--विरह विकलता से बे सँभार होकर जो वचन उस बिरहिनी ने कहे, उन्हीं बचनों को पुन. बोलकर उसका सुवा किसको नहीं रुला देता।

अलंकार--हेतु से पुष्ट विरहात्युक्ति (अत्युक्ति)। यमक।

दो०--सीरे जतननि सिसिर रितु सहि बिरहिनि तन ताप।
बसिबेको ग्रीषम दिननु परो परोसिन पाप॥ ४९५॥

शब्दार्थ--पाप=महान् कष्ट।



भावार्थ—विरहिनी के पड़ोसियों ने उसके संतप्त शरीर के ताप का प्रभाव तो शिशिर ऋतु (जाड़े) में शीतलोपचारों से किसी प्रकार सह लिया, परन्तु ग्रीष्म ऋतु में उसके पड़ोस में बसना तो पड़ोसियों के लिये महान् कष्ट है।

अलंकार—अत्युक्ति।

दो०—पिय प्रानन की पाहरू करति जतन अति आप।
जाकी दुसह दसा परयो सौंतिन हू संताप ॥ ४९६ ॥

(विशेष)—हैं तो सब विरहिनी, परन्तु ज्येष्ठा पर नायक की अति प्रीति समझ अन्य सपत्नियाँ भी उसकी दशा से व्याकुल होकर सपत्नी-भाव की ईर्ष्या छोड़ उसके दुःख से दुखित होती हैं।

(वचन)—सखी वचन नायक प्रति। व्याधि दशा वर्णन।

भावार्थ—यह ज्येष्ठा नायक के प्राणों की रक्षिका है (अर्थात् इसके मरते ही नायक भी मर जायगा) ऐसा समझ कर कनिष्ठा सवतियाँ स्वयं उसके जीवित रखने का यत्न करती हैं। बस इसी से समझ लो कि उसकी दशा कैसी होगी जिसको देखकर सवति को भी कष्ट होता है।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति। (सवति के करुणा भाव के सम्बन्ध से विरह की अत्यधिकता दर्शाई गई है)।

दो०—आड़े दै आले बसन जाड़े हू की राति।
साहस कैकै नेह बस सखी सबै ढिग जाति ॥४९७॥

शब्दार्थ—आड़े दै=ओट करके। आले=गीले, भिगोए हुए।

(वचन)—सखी-वचन नायक प्रति–(विरह संताप का वर्णन)।

भावार्थ—हे लाल, इस बात से तुम उसके शरीर के संताप का अनुमान करो कि सब सखियाँ जाड़े की रात में गीले वस्त्रों

की ओट करके बड़े साहस को धारण करके प्रेम बश होने के कारण उसके निकट जाती हैं।

अलंकार--अत्युक्ति-(बिहारी की यह अत्युक्ति बहुत ही बढ़ी चढ़ी है। फारसी और उर्दू वाले देखें कि इससे बढ़कर तोक्या इसकी समताका भी कोई 'मुबालगा' उनके साहित्यमें है ?)

दो०--सुनत पथिक मुँह माह निस लुवैं चलत वहि गाम।
बिन बूझे बिनही कहे जियत बिचारी बाम ॥४९८॥

शब्दार्थ-लुवैं=ग्रीष्म ऋतु की गर्म हवाके झकोरे। बिचारी= समझ ली, विचार ली।

(वचन)--कबि की उक्ति।

भावार्थ--नायक ने किसी मुसाफिर के मुख से यह सुन कर कि उस गाँव में (नायक के जन्मग्राम वा निवास ग्राम में) माघ मास की रात्रियों में भी ग्रीष्म की सी लूक की लपटें चलती हैं, बिना पूछे और बिना कहे ही यह समझ लिया कि मेरी स्त्री जीती है। अर्थात् मेरे बिरह से संतप्त हैं, उसी के शरीर के ताप से उस गांव भर की वायु इतनी गर्म हो गई है कि माघ की रात में लू चलती है)।

अलंकार—अनुमान।

दो०-इत आवति चलि जाति उत चली छसातक हाथ।
चढी हिंडोरे सी रहै लगी उसासन साथ ॥ ४९९ ॥

(विशेष)—सखी का वचन सखी प्रति। नायिका की दुर्वलता और उसाँस की प्रबलता दर्शाकर व्याधि दशा का वर्णन।

भावार्थ--हे सखी, हमारी लाड़िली सखी, नायक के विरह से इतनी दुर्बल हो गई है और उर्ध्वस्वांस की इतनी प्रबलता है कि उसाँस के साथ ही मानो हिंडोरे में चढ़ी सी रहती है और

छः सात हाथ इधर और उधर आती जाती है।

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

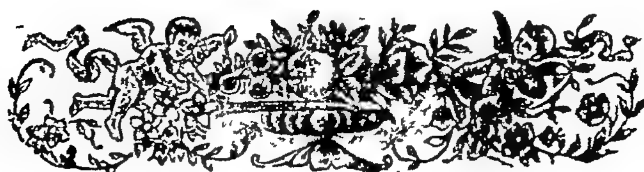
सो०—बिरह सुखाई देह, नेह कियो अति डहडहो।
जैसे बरसे मेह, जरै जवासो ज्यौ जमै॥ ५०० ॥

शब्दार्थ—डहडहो = सरसब्ज, हराभरा। जवासा = एक कांटेदार पौधा जो नदियों के तटपर होता है। वर्षा के पानी से इसकी पत्तियां जल जाती है। ज्यौ = (जीव) जीवन तत्व अर्थात् जड़ (पौधों का जीवन जड़ ही पर निर्भर है, अतः ज्यौ (जीव) का अर्थ यहाँ पर हमारी सम्मति से जड़ ही लेना चाहिये। जमै = दृढ़ होता है। पुष्ट होता है, जमना = दृढ़ होना पुष्ट होना (देखो शब्द सागर)।

(विशेष)–सखी प्रति सखी-वाक्य(विरह और प्रेम की अधिकता)।

भावार्थ—बिरह ने उस नायिका की देह तो सुखा डाली है, परन्तु प्रेम को खूब हरा भरा कर दिया है। जैसे मेह के बरसने से जवासा तो जलता है (उसका ऊपरी भाग अर्थात् पत्ती काँटे आदि जल जाते हैं) परन्तु जड़ (मूल) पुष्ट होती है और भूमिके भीतर ही भीतर नवीन शक्ति संचित करती है।

अलकार–प्रतिवस्तूपमा।



छठवाँ शतक।

सो०—आठौ जाम अछेह, दृग जु बरत बरसत रहत।
स्यौं बिजुरी जनु मेह, आनि यहां बिरहा धर्‍यो ॥५०१॥

शब्दार्थ—जाम = पहर। अछेह = (सं० अच्छेद्य) निरंतर। बरत=जलते हैं। स्यौं = सहित (मये)।

(वचन)—नायिका-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, मेरे नेत्र जो निरंतर आठो पहर (रात-दिन) जलते और बरसते हैं (आँसू गिराते हैं) इससे अनुमान होता है मानो बिरह ने बिजली सहित मेघ यहां लाकर रख दिया है।

अलंकार—अनुमान, क्रम और उत्प्रेक्षा।

दो०—बिरह बिपति-दिन परतही तजे सुखनि सब अंग।
रहि अबलौंऽब दुखौ भये चलाचली जिय संग ॥५०२॥

शब्दार्थ—ऽब=अब। चलाचली भये=चलने को तैयार हुए।

(बचन)—नायिका-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—बिरह की आपदा पड़ते ही सुखों ने सब प्रकार मुझे छोड़ दिया था (केवल दुःख मेरे संग रह गये थे) अब तक रह कर अब दुःख भी प्राणों सहित चलने को तत्पर हुए हैं। (तात्पर्य यह कि बस अब मरती हूँ)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में चपलातिशयोक्ति, उत्तरार्द्ध में अक्रमातिशयोक्ति।

दो०—नये बिरह बढती बिथा खरी बिकल जिय बाल।
बिलखी देखि परोसिन्यौ हरषि हँसी तिहिकाल॥५०३॥

शब्दार्थ—'बाल' = इस शब्द से नायिका मुग्धा जानो। बिलखी=व्याकुल।

(बचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—मुग्धा नायिका में दुःसह-बिरह वर्णन प्राकृतिक नहीं। साधारण विरह होता है और वह थोड़ी ही देर में भूल जाता है। यही दशा इस दोहे में बिहारी ने कही है।

(विशेष)—नवीन विरह में (नायक पहले ही पहल विदेश गया है) व्यथा बढ़ रही थी और वह बाला (मुग्धा) बहुत व्याकुल थी। इतने ही में देखा कि एक पड़ोसिन भी बहुत व्याकुल है (यह पड़ोसिन प्रौढ़ा है और नायक से गुप्त प्रेम रखती है। उसके चले जाने से इसे भी विरह है) बस ऐसा देखते ही वह उसी समय हर्षित होकर हँस पड़ी (यह अनुमान करके कि यह प्रौढ़ा सवति है, भले इसे ज्यादा दुःख होगा)।

(नोट)—इस दोहे में साहित्य के लिहाज से दो विशेष विलक्षणतायें हैं—(१) स्वकीया और परकीया प्रोषितपतिका नायिकायें दोनों एक ही साथ, (२) वियोग श्रृंगार और हास्यरस का विलक्षण मेल। एक दोहे में ऐसी कारीगरी बिहारी ही कर सके हैं।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति से पुष्ट पंचम विभावना।

दो०—छतौ नेह कागद हिये भई लखाइ न टाँक।
विरह तचे उघर्‌यो सु अब सेंहुड़ को सो आँक ॥५०४॥

शब्दार्थ—छतौ=प्रस्तुत होते हुए। टांक=लिखावट, लिपि। तचे=तपाने से। सेहुंड़ को सो आंक=सेहुंड़ के दूध से लिखे हुए अक्षर के समान (सेहुंड़ के दूध से लिखे हुए अक्षर साधारणतः देख नहीं पड़ते। कागज को आंच पर सेकने से वे अक्षर स्पष्ट पढ़े जाते हैं)।

(विशेष)-परकीया नायिका का गुप्त प्रेम अब उघरा जब नायक विदेश गया और विरह से नायिका व्याकुल वा दुबली हुई।




(वचन)—सखी का वचन सखी प्रति ।

भावार्थ—हृदय रूपी कागद पर प्रेमाक्षर लिखे थे (हृदय में गुप्त प्रेम था) पर उनकी लिखावट जान नहीं पड़ती थी। अब बिरह रूपी अग्नि से तपाये जाने पर वह प्रेम सेहुंड़ के दूध से लिखे हुए अक्षरों की तरह स्पष्ट हो पड़े।

अलंकार—पूर्णोपमा ।

दो०—कर के मींड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाय ।
सदा समीपिनि सखिन हू नीठि पिछानी जाय॥५०५॥

शब्दार्थ—मींड़े = मसले हुए। समीपिनी = निकट रहने वाली। नीठि=कठिनता से।

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पूर्णोपमा ।

दो०—लाल तिहारे बिरह की अगिनि अनूप अपार ।
सरसै बरसै नीर हू मिटै न झरें हू झार ॥ ५०६ ॥

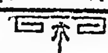
शब्दार्थ—सरसै = बढ़ती है। झर = झड़ी। झार=ज्वाला।

(वचन)—दूती-वचन नायक प्रति (विरह निवेदन)।

भावार्थ—हे लाल, तुम्हारे बिरह की अग्नि बड़ी अद्भुत और अपार है। यह पानी बरसने से बढ़ती है और झड़ी लगाने से भी (अर्थात् आँसुओं की झड़ी लगा देने से, बहुत रोने से) उसकी ज्वाला नहीं मिटती।

अलंकार—तीसरी विभावना (सरसै बरसै नीरहू)। विशेषोक्ति (मिटै न झरहू झार)।

दो०—याके उर औरै कछू लगी बिरह की लाय ।
पजरै नीर गुलाब के पियकी बात बुझाय ॥५०७॥



शब्दार्थ—लाय=अग्नि। प्रजरै=प्रज्वलित होती है। बात=(१) चर्चा (२) हवा।

(बचन)—सखी प्रति सखी-बचन।

भावार्थ—हे सखी, इसके हृदय में और ही प्रकार की विरहाग्नि लगी है। गुलाब जल से प्रज्वलित होती है और नायक की बात (चर्चा, हवा) से बुझती है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में भेदकातिशयोक्ति, उत्तरार्द्धमें पंचम विभावना।

दो०—मरी डरी कि टरी बिथा कहा खरी चलि चाहि।
रही कराहि कराहि अति अब मुख आहि न आहि५०८

शब्दार्थ—डरी=पड़ी है। खरी=खड़ी है। चाहि=देख। आहि न=नहीं है। आहि=आह (पीड़ा सूचक शब्द)

(बचन)—सखी प्रति सखी-बचन।

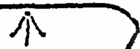
भावार्थ—हे सखी क्या खड़ी है चलके देख तो कि हमारी लाड़िली मरी पड़ी है अथवा उसकी पीड़ा दूर हो गई (जो चुप है), अब तक तो वह बहुत कराहा करती थी, इस समय उसके मुँह से 'आह' भी नहीं निकलती।

अलंकार—प्रथम चरण में अनुप्रास और संदेह। दूसरे में छेकानुप्रास। तीसरे में विप्सा, चौथे में यमक।

दो०—कहा भयो जो बीछुरे मो मन तो मन साथ।
उड़ी जाति कितहू गुड़ी तऊ गुड़ायक हाथ ॥५०९॥

शब्दार्थ—बीछुरे=जुदा हुए। गुड़ी=पतंग। उड़ायक=उड़ाने वाला।

(विशेष)—विरहनी नायिका को नायक ने पाती लिखी है। उसी का मज़मून है। अथवा स्वकीया नायिका ने नैहर से नायक के नाम पाती लिखी है।




भावार्थ—हे प्यारी क्या हुआ जो हमारा तुम्हारा बिछोह हुआ है, मेरा मन तो तुम्हारे मन के साथ ही है। पतंग कहीं उड़ जाय तब भी उड़ाने वाले के हाथ ही में है-(नायक अपने को पतंग, नायिका के मन को डोर, नायिका को उड़ाने वाला कहता है)।

अलकार—दृष्टान्त।

दो०—जब जब वै सुधि कीजिये तब सब ही सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहैं आँखौ लागति नाहिं। ५१०

शब्दार्थ—वै=(सर्वनाम) कृष्ण की आँखैं। सुधि = स्मरण। सुधि=होश, बुद्धि। आँख लगना = निद्रा आना।

(विशेष)—नायिका वियोग में नायकके सुन्दर नेत्रों का स्मरण किया करती है। उसी स्मृति दशाका वर्णन सखी से कहती है।

भावार्थ—हे, सखी जब जब मैं प्यारे के सुन्दर नेत्रों का स्मरण करती हूं तब तब मेरी सब बुद्धि जाती रहती है। मेरी आँखें उन्हीं आंखों से लग कर रह जाती हैं और इस दशा में निद्रा तक नहीं आती।

अलकार—पूर्वार्द्ध में यमक, उत्तरार्द्ध में विरोधाभास।

दो०—कौन सुनै कासों कहौं सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी जियलेत हैं ये बदरा बदराह॥ ५११॥

शब्दार्थ—सुरति=याद। बदाबदी = कह के, शर्त बांध कर (खुल्लम खुल्ला, छिपकर नहीं)। बदरा = बादल। बदराह = कुमार्गी, बदमाश।

(बचन)—सखियों को सुनाकर नायिका का कथन।

भावार्थ—कौन सुनता है, किस से कहूँ। सुनने वाला और रक्षा करनेवाला जो नायक था, उसने मेरी याद ही भुला

दी है। वर्षा में ये कुमार्गी बादल शर्त बाँध कर मेरा जी लेने को तैयार हुए हैं।

(विशेष)—इसमें बिहारीजी बादलों के 'जीवनदाता' नाम पर बारीकी से कटाक्ष करते हैं। स्त्री को मारना भले आदमी का काम नहीं।

अलंकार—परिकर—(बदराह शब्द साभिप्राय है)।

दो०—औरै भांति भयेऽब ये चौसर चंदन चंद।
पति बिन अति पारत बिपति मारत मारुत मंद॥५१२॥

शब्दार्थ—चौसर=चार लड़ी की मोतियों की माला।

(वचन)—नायिका वचन सखी प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

दो०—नेकु न झुरसी बिरह झर नेह लता कुम्हिलाति।
नित नित होति हरी हरी खरी झालरति जाति॥५१३॥

शब्दार्थ—झुरसी=अधजली। झर=झार, लपट। झालरति जाति=फैलती जाती है।

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—बिरह की लपट से झुलसी हुई नेह लता जरा भी नहीं कुम्हिलाती, वरन् नित्यप्रति हरी होकर बढ़ती और फैलती जाती है।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में रूपक गर्भित विशेषोक्ति। उत्तरार्द्ध में रूपक गर्भित विभावना।

दो०—यह बिनसत नग राखि कै जगत बड़ो जसलेहु।
जरी विषम जुर ज्याइये आय सुदरसन देहु॥५१४॥

शब्दार्थ—नग=रत्न (यहां रत्नवत् नायिका)। जरी

विषम जुर = बिरह की विषम ज्वाला से जल रही है। सुदर-सन=(१) सुन्दर दर्शन (अपने सुन्दर रूप का दीदार) (२) वैद्यक के अनुसार एक चूर्ण विशेष जो बिषम ज्वर के निवारणार्थ रोगी को दिया जाता है।

(वचन)—दूती-बचन नायक प्रति (संघट्टन उद्देश्य)।

भावार्थ—हे लाल, इस बिनष्ट होते हुए रत्न की रक्षा कर के संसार में बड़ा यश लीजिये (बिरह से मरती हुई नायिका की रक्षा करो)। वह बिरह के कठिन संताप से जली जाती है, सो उसको अपने सुन्दर दर्शन देकर जिला लीजिये। (वह बिषम ज्वर से जलती है, उसे सुदर्शन चूर्ण दीजिये)।

(विशेष)—दोहे के उतरार्द्ध से जान पड़ता है कि नायक वैद्यजी है दूती वैद्यकीय श्लिष्ट शब्दों से दूतत्व करती है। बहुधा दूतियाँ ऐसी ही भाषा में दूतत्व करती हैं जिसके दो अर्थ हो सकते हैं।

अलंकार—श्लेष।

दो०—नित संसौ हंसौ बचत मनहुँ सु यह अनुमान।
विरह अगिनि लपटनि सकत झपटि न मीचु सिचान। ५१५

शब्दार्थ—संसौ = संदेह। हंसौ= (सं० हंस) (१) प्राण (२) हंसपक्षी। सचान=बाज़ पक्षी।

(वचन)—सखी-बचन नायक प्रति।

भावार्थ—हमको नित्य संदेह रहता है कि आज इसके प्राण बचैंगे वा नहीं, परंतु वह रोज़ रोज़ बच जाती है। अतः मेरे मन में तो यह अनुमान आता है कि बिरह रूपी अग्नि की लपटों के भय से मृत्यु रूपी सचान उसके हंस (प्राण, मराल) पर झपट नहीं सकता।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट परंपरित रूपक।



दो०—करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाड़त नीचु।
दीनें हू चसमा चखनि चाहे लहै न मीच ॥५१६॥

शब्दार्थ—गैल न छांड़त = पीछा नहीं छोड़ता। चाहे = हेरने पर, ढूंढने पर।

(वचन)—दूती-वचन नायक प्रति (संघट्टन उद्देश्य)।

भावार्थ—विरह ने उसे (नायिका को) ऐसी दुबली पतली कर डाली है, तो भी नीच (विरह) उसका पीछा नहीं छोड़ता। वह इतनी दुबली हो गई है कि आंखों में चशमा लगा कर ढूंढने पर भी मृत्यु उसे खोज नहीं पाती।

अलकार—अत्युक्ति।

दो०—मरन भलो बरु बिरहतें यह बिचार चित जोय।
मरन मिटै दुख एकको बिरह दुहूँ दुख होय ॥५१७॥

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति (नायिकाकी दशा देखकर)

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—लेश गर्भित काव्यलिंग।

दो०—बिगसत नव वल्ली कुसुम निकसत परिमल पाय।
परसि प्रजारति बिरहि हिय बरसिरहे की बाय॥५१८॥

शब्दार्थ—परिमल - सुगंध। परसि = छूकर। प्रजारति= अतिशय जलाती है। बिरहि= (विरही) वियोगी। बरसि रहे की वाय=बरसते समय की वायु।

(वचन)—विरही नायक वा विरहिनी नायिका का कथन सखी प्रति।

भावार्थ—बरसते समय की हवा जो नवीन वेलियों के नवीन निकले हुए फूलों की सुगंध को छू छू कर आती है वह शरीर को स्पर्श करते ही विरही के हृदय को जलाती है।




अलंकार—पांचवीं विभावना (शीतल वायु जलाती है)।

दो०—औंधाई सीसी सु लखि बिरह बरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो छींटौ छुयो न गात॥५१९॥

(वचन)—सखी प्रति सखी-बचन।

भावार्थ—हे सखी, उस लाड़िली को बिरह से जलती हुई और बिलपती हुई देखकर मैंने गुलाबजल की शीशी ही उस पर औंधा दी (कि इसकी ठंढक से उसे कुछ आराम मिले) परंतु उसके शरीर से इतनी ताप निलकती थी कि वह सब गुलाब बीच में ही सूख गया एक छींटा भी उसके शरीर से न छू गया।

अलंकार—विरहात्युक्ति।

दो०—हौंही बौरी बिरह बस कै बौरो सब गाँव।
कहा जानि ये कहत हैं ससिहिं सीतकर नाँव॥५२०॥

शब्दार्थ—सीतकर = ठंढी किरनवाला।

(वचन)—बिरहिनी नायिका का बचन सखी प्रति।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—सन्देह।

दो०—सोवत जागत सपन बस रस रिस चैन कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति बिसराये बिसरै न॥५२१॥

शब्दार्थ—सुरति=(१) प्रीति, (२) शक्ल। सुरति = याद (स्मरण)। सुरति स्याम घन की सुरति=(१) घनश्याम (कृष्ण) की प्रीति की याद। (२) घन सम श्याम शक्ल वाले की याद)।

(वचन)—नायिका बचन सखी प्रति (विरह की स्मृति दशा)

भावार्थ—सरल है।




अलंकार—यमक और विशेषोक्ति (विसराये विसरै न)।

सो०—कौड़ा आँसू बूंद, करि सांकर बरुनी सजल।
कीन्हें बदन निमूंद, दृग मलंग डारे रहत ॥५२२॥

शब्दार्थ—साँकर=जंजीर। निमूंद=न मुंदा हुआ अर्थात् खुला हुआ। मलंग=योगी, फकीर। डारे रहत=पड़े रहते हैं (निश्चल होजाते हैं)।

(विशेष)—विरहिनि नायिका की आँखों का फकीर से रूपक मिलाया गया है। मलंग फकीर कौड़ियों की माला पहनते हैं (इसीसे शिव का एक नाम 'कपर्दी' भी है), जंजीर की मेखला बांधते हैं, मुंह खोले रहते हैं अर्थात् कुछ जपते हैं जिससे मुंह बंद नहीं रहता, और स्थिर होकर कहीं एक स्थान में बैठे वा पड़े रहते हैं। बस यही सब बातें विरहिनी की आंखों में रूपण की गई हैं।

भावार्थ—आंसू के बूंद ही कौड़ा हैं, सजल बरुणी ही जंजीर है। इनको धारण किये हुए और मुख खोले हुए (अर्थात् टकटकी लगाये हुए) नेत्र रूपी फकीर निश्चल एक स्थान पर पड़े रहते हैं (अर्थात् विरहिनी के नेत्र अश्रुपूर्ण, खुले हुए, और टकटकी लगी हुई दशा में हैं। यह अवस्था मरण सूचक है, अतः व्याधि की कठिन दशा का वर्णन इस में जानना चाहिये)।

अलंकार—रूपक।

दो०—जिहिं निदाघ-दुपहर रहै भई माह की राति।
तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति ॥५२३॥

शब्दार्थ—निदाघ=ग्रीष्म ऋतु। उसीर=खस। रावटी=बँगला। आवटी जाति=औटी जाती है, संतप्त है।





(बचन)—नायिका-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—जिस में ग्रीष्म की दुपहर भी माघ मास की रात्रि के समान ठंढी जान पड़ती थी उसी खस की टट्टियों की रावटी में मैं अत्यंत संतप्त हो रही हूँ।

अलंकार—विभावना (पंचम)

दो०—तच्यो आँच अति बिरहकी रह्यौ प्रेमरस भीजि।
नैननि के मग जल बहै हियो पसीजि पसीजि॥५२४॥

(विशेष)—नायिका बिरह में रो रही है। उसे देख कर सखी सखी से कहती है।

भावार्थ—जो हृदय प्रेमरस से भीजा हुआ था वह अब अति विरह की आंच से तप गया है, इसी कारण हृदय से भाफ उठ उठ कर नेत्रों के मार्ग से जल बहता है।

अलंकार—समासोक्ति (इस कथन से अर्क टपकाने की क्रिया का भान होता है)।

दो०—*स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा तीर।
अँसुवन करति तरौंसको खिन खौंरौंहों नीर॥५२५॥

शब्दार्थ—तरनिजा=यमुना। तरौंस=निचली तह का। खौंरौंहों=खौलता सा।

(वचन)—उद्धव बचन कृष्ण प्रति। स्मृति संचारी, अश्रु अनुभाव। वियोग शृंगार की पूर्ण सामग्री)।

भावार्थ—हे कृष्ण, जब यमुना किनारे जाकर यमुना का श्याम रंग देख कर राधिका तुम्हारा स्मरण करती है, तो

---

* इस दोहे के कई पाठान्तर और अर्थान्तर हैं। परंतु हमें यही पाठ और यही अर्थ अत्यंत उत्कृष्ट जँचता है। उद्धव सरीखे उद्भट विद्वान की अत्युक्ति ऐसी ही होनी भी चाहिये।

अपने आंसुओं से यमुना की निचली तह तक को पानी एक क्षण मात्र में खौलता सा कर देती हैं।

अलकार—उल्लास से पुष्ट अत्युक्ति (विरह की)। अप्रस्तुत प्रशंसा (कारज निबंधना)।

दो०—गोपिन कें अँसुवनि भरी सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर कै बार॥ ५२६॥

शब्दार्थ—असोस=(अशोष्य) जो कभी सूखै नहीं। नै= नदी। बार=(द्वार) दरवाज़ा।

(वचन)—उद्धव-वचन कृष्ण प्रति।

भावार्थ—हे कृष्ण ब्रज की यह दशा है कि गोपियों के आँसुओं से भरी हुई अपार और अशोष्य नदी गली गली में प्रति बगर के द्वार पर बह रही है (अर्थात् तुम्हारे विरह में गोपियां बहुत रोया करती हैं)।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा (कारज निबंधना)।

दो०—बन-बाटनि पिक बटपरा तकि विरहिन मतमैन।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठत करि करि राते नैन॥५२७॥

शब्दार्थ—पिक=कोयल। बटपरा=डाकू। मत मैन= कामदेव की सम्मति से। कुहौ कुहौ=(१) पिक पक्ष में 'कुहू, कुहू' शब्द (२) बटपार पक्ष में 'मारो मारो'। राते=लाल।

(वचन)—वसंत-वर्णन में कवि की उक्ति।

भावार्थ—बन के मार्गों में कोयल रूपी डाकू, काम की सलाह से, वियोगियों को देखकर, लाल आँखे कर के, 'इन्हें मारो इन्हें मारो' कह कह उठता है (अर्थात् वसंत में कोयल की कूक सुन कर विरहियों को बड़ा कष्ट होता है)।

अलंकार—रूपक।

दो०—दिसि दिसि कुसुमित देखियत उपबन विपिन समाज।
मनो वियोगिनि को कियो सरपंजर रतिराज॥५२८॥

शब्दार्थ—सरपंजर = बाणों का पिंजरा (वसंत में चारो ओर बिबिध प्रकार के फूल फूलते हैं और फूल ही काम के बाण माने जाते हैं, अतः शरपंजर)।

(वचन)—कवि की उक्ति।

भावार्थ—चारो ओर बनों और उपवनों में विविध प्रकार के फूल फूले हुए देख पड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है मानो काम ने वियोगियों को बंद रखने के लिये बाणों का पिंजड़ा बनाया है (अर्थात् बसत में पुष्प समूह को देखकर वियोगियों को वैसा ही दुःख होता है जैसे शरपंजर में पड़े हुए योद्धा को होता है)।

अलंकार—उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—हिये और सी ह्वै गई टरी अवधि के नाम।
दूजे करि डारी खरी बौरी बौरे आम॥ ५२९॥

शब्दार्थ—टरी अवधि के नाम = पिय आगमन का वादा टलगया सुनकर। खरी बौरी=अत्यंत बावली। बौरे=पुष्पित, कुसुमित।

(वचन)—सखी प्रति सखी-बचन। (विरह की उन्माद दशा का वर्णन)।

भावार्थ—हे सखी, एक तो वह लाड़िली प्रियतमागमन का वादा टल गया सुनकर ही हृदय में कुछ और ही सी हो गई थी, दूसरे अब इन पुष्पित आमों ने उसे अत्यन्त ही बावली बना डाला है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट समाधि (और सी ह्वै गई=मानो अन्य ही हो गई)।

दो०—भो यह ऐसोइ समौ जहाँ सुखद दुख देत।
चैत-चाँदकी चाँदनी डारत किये अचेत॥ ५३०॥

(वचन)—नायिका-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—अति सरल है।

अलंकार—विभावना (पंचम)–सुखद दुख देत। अर्थान्तर न्यास–सामान्य का समर्थन विशेष से।

दो०—गनती गनिबे तें रहे छत हू अछत समान।
अव अलि ये तिथि औम लौं परे रहौ तनप्रान॥५३१॥

शब्दार्थ—छत हू = होते हुए भी, होने पर भी, अस्ति होते हुए भी। अछत=नास्ति, नहीं। तिथि औम=(अवम तिथि) वह तिथि जिसकी हानि होती है। ऐसी तिथि पत्रा में लिखी तो जाती है, पर गिनी नहीं जाती।

(वचन)—बिरहिनी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, अब तो मेरे प्राणों की यह दशा है कि गनती में गने जाने से रहे; होकर भी नास्ति के समान हैं। हे सखी अब तो ये प्राण अवम तिथि (क्षय तिथि) की तरह शरीर में केवल पड़े मात्र हैं।

(विशेष)—विरह की ग्यारहवीं दशा मरण है। शृङ्गार में इस का वर्णन रोचक नहीं जान पड़ता अतः कवि लोग इस का कथन ही नहीं करते। परंतु विहारी ऐसा धुरंधर कवि कब चूकने वाला था। इसी दशा का वर्णन इस युक्तिसे किया।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—जातिमरी बिछुरति घरी जल सफरी की रीति।
छिन छिन होति खरी खरी अरी जरी यह प्रीति॥५३२॥

शब्दार्थ—सफरी=मछली। जरी=जलाने योग्य (एक गाली)




(वचन)—नायिका की उक्ति सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, यह जला देने योग्य प्रीति छिन छिन बढ़ती ही जाती है। जल वियोग से मीनवत् व्याकुल होकर मैं अब एक घड़ी के वियोग से भी मरी जाती हू (अर्थात् अल्प वियोग भी असहनीय है)।

अलकार—अनुप्रास, विप्सा और लोकोक्ति।

दो०—मार सु मार करी खरी मरी मरीहि न मारि ।
सींचि गुलाब घरी घरी अरी बरीहि न बारि॥५३३॥

शब्दार्थ—मार=काम । मार = चोट ।

(वचन)—नायिका का वचन सखी प्रति ।

भावार्थ—काम ही ने गहरी चोट पहुंचाई है, अतः मैं मरी हूं, तू अब मरी को मत मार। घड़ी घड़ी गुलाबजल सींच कर जली को अधिक मत जला।

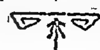
अलकार—यमक, अनुप्रास, विप्सा और पंचम विभावना (गुलावजल से जलन)।

दो०—रह्यौ ऐंचि अत न लह्यौ अवधि दुसासन बीर ।
आली बाढ़त विरह ज्यौं पचाली को चीर ॥ ५३४ ॥

शब्दार्थ—अन्त=छोर । अवधि=प्रियतम के आगमन का निश्चित दिन । पंचाली=द्रौपदी ।

(वचन)—नायिका की उक्ति सखी प्रति ।

भावार्थ—हे सखी, प्रियतम के आनेका निश्चित दिन हो दुःशासन वीर है। यह वीर बिरह को खींचकर छोड़ा लेना चाहता है, परंतु उसका छोर ही नहीं मिलता (अर्थात् अवधि का दिन ज्यौं ज्यौं निकट आता है त्यों त्यों उत्कंठा से बिरह और अधिक बढ़ता जाता है) हे सखी विरह तो द्रौपदी के चीर के समान बढ़ता ही जाता है।



अलंकार—रूपक से पुष्ट पूर्णोपमा।

(दूषण)—"अवधि" स्त्रीलिंग है इसका रूपक दुःशासन से करना दोष है।

दो०—बिरह-बिथा जल परस बिन बसियत मो हिय ताल।
कछु जानत जलथंभ-बिधि दुरजोधन लौं लाल॥५३५॥

(वचन)—नायिका की पाती नायक प्रति।

भावार्थ—हे लाल, जान पड़ता है तुम भी दुर्योधन की तरह जलस्थंभ विद्या जानते हो, क्योंकि तुम मेरे हृदय रूपी ताल में बसते हो, परन्तु बिरह जनित पीड़ा जो जलवत् मेरे हृदय में भरी है, उसका स्पर्श तुमको नहीं होता (मेरे हृदय में बस कर भी मेरी पीड़ा का अनुभव नहीं करते)।

अलंकार—रूपक से पुष्ट पूर्णोपमा। 'अवज्ञा' भी हो सकती है।

(दूषण)—'बिथा' शब्द स्त्रीलिंग है। 'जल' से रूपक ठीक नहीं है।

दो०—सोवत सपने स्याम घन हिलि मिलि हरति वियोग।
तबहीं टरि कितहूं गई नींदौ नींदन जोग॥५३६॥

शब्दार्थ—वियोग=विरह, बिछोह (विरह का दुःख)। नींदन जोग=निन्दा करने योग्य।

(वचन)—नायिका की उक्ति सखी प्रति।

भावार्थ—सोते समय ख्वाब में कृष्ण से मिलजुल कर विरह जनित दुःख दूरकरने ही को थी कि इतने ही में नींद उचट गई, हे सखी नींद भी निंदा करने ही योग्य है। (अर्थात् जी में आता है कि नींद को दसपांच गालियां सुना दूँ)।

अलंकार—विषादन।

दो०—पिय बिछुरनको दुसह दुख हरष जात प्यौसाल।
दुरजोधन लौं देखियत तजत प्रान यह बाल॥५३७॥





शब्दार्थ—प्यौसाल=नैहर।

(वचन) –सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—पति से बिछुड़ने का दुःसह दुख है और नैहर जाने का आनंद है। देखती हूं कि यह बाला ऐसी दुविधा में पड़कर दुर्योधन की तरह प्राण त्यागने चाहती है–(दुर्योधन को ऐसा शाप था कि जब हर्ष और शोक दोनों भाव एकही समय उदय हों तब मरैगा–वही दशा यहां उपस्थित है)।

अलकार – पूर्णोपमा।

(प्रेम-संदेश वर्णन)

दो०–कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेश लजात।
कहि है सब तेरो हियो मेरे हियकी बात ॥ ५३८ ॥

(वचन)—नायिका की ओर से नायक प्रति।

भावार्थ—कागद पर तो लिखते नहीं बनता (क्योंकि वियोग से लेखनी-संचालन की शक्ति नहीं, कागद हाथ को गरमी से जल जायगा वा आँसुओं से गल जायगा इत्यादि बातें बाधक हैं) और जबानी संदेशा कहते लजाती हूं (प्रेम की सच्चीदशा दुसरों से कहने से हँसी होती है) अतः मेरे हृदय की बात तुम्हारा हृदय ही कहैगा उसी से पूछ लो।

(विशेष)—दूसरेके हृदयकी बात दूसरेका हृदय कैसे कहैगा। यह बिरोध सा भासता है, परंतु प्रेम-शक्ति से ऐसाही होता है।

अलंकार—विरोधाभास।

दो०—बिरह विकल बिनुही लिखी पाती दई पठाय।
आँक बिहीनीयो सुचित सूनै बाँचत जाय ॥ ५३९ ॥

(विशेष)—नायक और नायिका दूनों की बिरह विकलता की दशा सखी सखी से कहती है।

भावार्थ– नायिका बिरह से इतनी व्याकुल थी कि बिना लिखीही , कोरा कागद) चिट्ठी भेजी (सूचित किया कि लिखने की शक्ति नहीं) और उधर नायक की यह दशा थी कि बिना अक्षर की होने पर भी स्वस्थ चित्त से शून्य नायक उसको (लिखी सी) पढ़ता जा रहा है (तात्पर्य यह कि बिरह से दोनों ऐसे व्याकुल हैं कि होश हवास ठीक नहीं है)।

अलंकार–भ्रम । विभावना भी हो सकती है ।

दो०–रँगराती राते हिये प्रीतम लिखी बनाय ।
पाती काती विरह की छाती रही लगाय ॥ ५४० ॥

शब्दार्थ—रँगराती = लाल रंग की, लाल कागज पर अथवा लाल रोशनाई से। राते हिये=प्रेमपूर्ण हृदय से। काती=तलवार

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन नायिका की दशा वर्णन।

भावार्थ—लाल रंग की पाती प्रेमपूर्ण हृदय से सुन्दर धैर्य प्रद वाक्यों में जो नायक ने लिखी है, उसको विरह को काटने वाली तलवार समझ कर छाती से लगा रक्खी है ।

अलंकार—अनुप्रास और रूपक ।

दो०–तर झुरसी ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाय ।
पिय पाती विनही लिखी बांची विरह बलाय ॥५४१॥

शब्दार्थ—झुरसी=जली हुई। गरी=गली हुई। बलाय=रोग।

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन–(नायक की दशा वर्णन)

भावार्थ—नीचे की ओर कुछ कुछ जली हुई, ऊपर की ओर गली हुई (आंसुओं से) और कज्जलयुत जल से छिड़की हुई (दागदार) विना लिखी हुई चिठी ही से नायक ने विरह का रोग बांच लिया (उपरोक्त चिह्नों से अनुमान कर लिया कि प्यारी विरह से दुखित है)।

अलकार--अनुमान और विभावना का संकर।

दो०-कर लै चूमि चढ़ाय सिर उर लगाय भुज भेंटि।
लहि पाती पियकी तिया बाँचति धरति समेटि॥५४२॥

भावार्थ—सरल है।

अलकार—कारक दीपक।

(आगतपतिका वर्णन)

दो०-मृगनैनो दृगकी फरक उर उछाह तन फूल।
बिनही पिय आगम उमँगि पलटन लगी दुकूल॥५४३॥

शब्दार्थ—फरक = फड़कना। तन=कुच। फूल = फूल जाना। आगम = अवाई। पलटन लगी = बदलने लगी। दुकूल = कपड़े।

(वचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—मृगनयनी नायिका नेत्रों के फड़कने, हृदय के उत्साह और कुचों के फूल उठने से (पति का आगमन निश्चय जान) बिना पति के आये ही उमंग कर कपड़े बदलने लगी।

अलकार—अनुमान।

दो०-बाम बाहु फरकत मिलैं जो हरि जीवन मूरि।
तो तोही सों भेंटिहौं राखि दाहिनी दूरि॥५४४॥

(वचन)—नायिका-बचन बाम बाहु प्रति।

भावार्थ—हे बाँई भुजा, तू फड़कती है (फड़ककर पति का आगमन सूचित करती है)। यदि मेरे जीवनाधार कृष्ण मिलैंगे तो दाहिनी भुजा को दूर रख कर पहले तुभी से कृष्ण को भेटूंगी।

अलकार--संभावना।

दो०-कियो सयानी सखिन सों नहिं सयान यह भूल।
दुरै दुराई फूल लौं क्यौं पिय-आगम-फूल॥५४५॥




शब्दार्थ—सयानी = चतुराई, सयान पन। पिय-आगम-फूल = पति के आगमन का आनन्द।

(वचन)- नायिका प्रति सखी-वचन (नायिका परकीया है)

भावार्थ—तू ने सखियों से चतुराई की, सो यह चतुराई नहीं वरन् भूल है। मित्र के आगमन का आनंद सुगंधित पुष्प की तरह कैसे छिप सकता है।

अलंकार—पर्यस्तापन्हुति और अनुमान से पुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—आयो मीत बिदेस तें काहू कह्यौ पुकारि।
सुनि हुलसी बिहँसीं हँसीं दोऊ दुहुनि निहारि॥५४६॥

(विशेष)—किसी नायके की दो परकीया थीं। परन्तु प्रत्येक को केवल अनुमान था कि यह उस नायक की परकीया है, निश्चय न था। दोनो नायक के विरह में दुखित रहती थीं। पूछने पर कारण न बताती थीं। जिस दिन नायक बिदेश से आया उस दिन दोनों एक ही स्थान में बैठी बातें करती थीं। किसी अन्य व्यक्ति से नायक के आगमन की सूचना पाकर दोनों की जो दशा हुई उसी का वर्णन इस दोहे में है।

वचन—सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—'मित्र विदेश से आया है, ऐसा किसी अन्य व्यक्ति ने अन्य प्रति कहा। यह आकस्मिक सूचना पाकर दोनो आनंदित हुईं, मुसुकुराईं, हँसी और दोनो ने दोनो की ओर देखा (तात्पर्य यह है कि अपने अनुमानके प्रमाणित होनेका सुन्दर मौका पाकर दोनो एक दूसरेकी दशाका निरीक्षण करने लगीं तो दोनोकी मित्रागमन सुननेपर एक ही सी दशा हुई। अतः दोनो को ज्ञात हो गया कि यह मेरे मित्रकी परकीया है।

अलंकार—युक्ति।



दो०—मलिन देह वेई बसन मलिन बिरह के रूप।
पिय आगम औरै चढ़ी आनन ओप अनूप॥५४७॥

शब्दार्थ—आगम = आमद। ओप = चमक, कान्ति।

भावार्थ—सरल है। (सखी प्रति सखी-वचन)।

अलंकार—भेदकातिशयोक्ति।

दो०—कहि पठई जिय-भावती पिय आवन की बात।
फूली आँगन में फिरै आँग न आँगि समात॥५४८॥

शब्दार्थ—जिय भावती=मन भाई। फूली=आनंदित। आंग न आंगि समात = कुच कंचुकी में नहीं समाते अर्थात् अत्यंत हर्ष से कंचुकी फट गई।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—यमक (आँगन और आँग न)।

दो०—रहे बरोठे में मिलत पिय प्रानन के ईसु।
आवत आवत की भई विधिकी घरी घरीसु॥५४९॥

शब्दार्थ—घरी सु = सो घड़ी, वह घड़ी जो नायक ने बरोठे में गुरुजनो से मिलने में लगाई।

(भावार्थ)—सरल है (सखी प्रति सखी वाक्य है। नायिका की उत्कंठा का वर्णन है)।

अलकार—वाचक धर्म लुप्ता (सो घरी विधि की घरी के समान लंबी भई)।

दो०जदपि तेज रौहाल वल पलकौ लगी न बार।
तउ ग्वैंड़ो घरको भयो पैंड़ो कोस हजार॥५५०॥

शब्दार्थ—रौहाल = घोड़ा (फा० रहवार)। वल = द्वारा, सहारा। ग्वैंड़ा = पार्श्ववर्ती भूमि। पैंड़ा = रास्ता, मग।

(वचन)—सखी प्रति नायक-वचन। नायककी उत्कंठाका वर्णन

भावार्थ—हे सखी, यद्यपि तेज़ घोड़े के द्वारा घर तक



पहुँचने में जरा भी देर न लगी, तो भी घर के इर्द गिर्द की भूमि (उत्कंठा के कारण) मुझे हजार कोस का सा रास्ता जान पड़ा।

अलंकार—विशेषोक्ति गर्भित निदर्शना।

दो०—बिछुरे जिये सकोच यह बोलत बने न बैन।
दोऊ दौरि लगे हिये किये निचौंहैं नैन॥ ५५१॥

(वचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—बिछुड़ने पर जीते ही रहे, इस लज्जा से कुछ कहते न बना, दोनों आंखें नीची किये हुए दौड़ कर परस्पर हृदय से लग गये।

अलकार—काव्यलिंग (सकोच को 'बोलत बने न बैन' और 'निचौंहैं नैन' से ज्ञापित किया)।

दो०—ज्यौं ज्यौं पावक लपट सी तिय हियसों लपटाति।
त्यौं त्यौं छुही गुलाब सी छतिया अति सियराति॥५५२॥

शब्दार्थ—छुही गुलाबसी=गुलाबजल से सिंचित सी (मानो गुलाबजल से सींची गई हो)।

(वचन)—प्रौढ़ा स्वकीया आगत-पतिका। नायिका प्रति नायक-बचन।

भावार्थ—हे तिय (हे प्यारी) ज्यों ज्यों तू अग्नि की लपट सी मेरे हृदय से लपटती है त्यों त्यों मेरी छाती इस प्रकार ठंढी होती है मानो गुलाबजल से छिड़की गई हो।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा से पुष्ट विभावना (पंचम)।

(फाग वर्णन)

दो०—पीठि दियें हीं नेकु मुरि कर घूँघट पट टारि।
भरि गुलाल की मूठि सों गई मूठि सी मारि॥५५३॥

शब्दार्थ--नेकुमुरि = ज़रा मुड़कर । गई मूठि सी मार= मानो मूठि मार गई। मूठि मारना = तंत्र-शास्त्रानुसार मारण प्रयोग करना।

(वचन)—नायक-वचन सखा प्रति।

भावार्थ—हे मित्र, पहले तो वह नायिका मेरी ओर पीठि दिये खड़ी थी, मैं धोखे में रहा, और उसने ज़रासा मुड़कर और हाथ से घूंघट हटाकर भरी गुलाल की मूठ चलाकर बस जानो मूठ ही सी मार गई (उसको वह अदा और तेज़ी इत्यादि भूलती नहीं, चित्त उसीपर आशक्त हो रहा है)।

अलंकार--यमक से पुष्ट अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०--दियो जु पिय लखि चखन में खेलत फागु खियाल।
बाढ़त हू अति पीर सु न काढ़त बनत गुलाल॥५८४॥

शब्दार्थ--दियो = डाला। खियाल=खेल। सु=सो, वह।

(वचन)-सखी-बचन सखी प्रति (नायिकाकी दशाका वर्णन)।

भावार्थ--हे सखी, देख तो उसका प्रेम, कि फाग खेलते समय नायक ने जो गुलाल आँख में डाला है (मुख पर मलते हुए आँख में पड़जाना सम्भव है) उससे अति पीड़ा हो रही है परन्तु वह गुलाल आंख से निकालने नहीं देती।

अलंकार--प्रत्यनीक से पुष्ट विशेषोक्ति।

दो०--छुटत मुठी सँगही छुटी लोकलाज कुलचाल।
लगे दुहुनि इक बेर ही चलि चित, नैन, गुलाल॥५८५॥

भावार्थ--गुलाल की मूठ छुटते ही लोक लज्जा और कुल मर्यादा भी साथ ही छूटी, और एक साथ ही चलकर दोनों के लगे चित्त, नेत्र, और गुलाल (गुलाल फेंकते ही नेत्र चलायमान हुए और नेत्र चंचल होतेही मन भी, दोनों के, एक ही साथ)।



अलंकार—सहोक्ति।

दो०—जुज्यों उझकि झाँपति बदन झुकति विहँसि
तुत्यों गुलाल झुठी मुठी झझकावत पिय ज

शब्दार्थ—जुज्यों=ज्यों ज्यों। उझकि=चौंककर ढांपती है। सतरात=डरती है। झझकाना=डरव

(वचन)—सखी-बचन सखी प्रति।

भावार्थ—ज्यों ज्यों नायिका चौंक चौंक कर निहुरती, हँसती और डरती है, त्यों त्यो नायक बिना ही झूठी मुट्ठी से डरवाता जाता है।

अलकार—पर्यायोक्ति और स्वभावोक्ति।

दो०—रस भिजये दोऊ दुहुनि तउ टिक रहे टरैं
छवि सो छिरकत प्रेम रँग भरि पिचकारी

शब्दार्थ—रस=रंग।। टिकरहे=स्थिर होकर र

(वचन)—सखी प्रति सखी-बचन।

भावार्थ—दोनों ने दोनों को रंग से भिगो डाला शराबोर हैं) तब भी उसी ठौर स्थिर होकर वहां से टलते नहीं। नेत्ररूपी पिचकारियों से बड़ से परस्पर प्रेमरंग छिड़कते हैं (परस्पर प्रेमयुर यह सुध भूल गई है कि हम रंग से भीगे हुये हैं)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में विशेषोक्ति, उत्तरार्द्ध में रूपक

दो०—गिरै कंप कछु कछु रहै कर पसीजि लपटाय
लीन्ही मुठी गुलाल भरि छुटत झुठी ह्वै जाय

(वचन)—सखी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—कंप होने के कारण कुछ तो गिरजात





अलंकार–अनुप्रास और काव्यलिंग।

दो० -ज्यौं ज्यौं पट झटकति हठति हँसति नचावति नैन।
त्यौं त्यौं निपट उदारहू फगुआ देत बनै न ॥५५९॥

शब्दार्थ—फगुआ=फाग खेलने के बदले वस्त्राभूषण और मिठाई आदि का पुरस्कार।

(वचन)—सखी प्रति सखी का बचन।

भावार्थ—ज्यों ज्यों वह नायिका नायक का कपड़ा पकड़ कर झटकती है, हठ करती है और आंखें नचा नचा कर हँसती है, त्यों त्यों निपट उदार होनेपर भी (नायक से) फगुआ नहीं देते बनता (अर्थात् नायिका की ये उपर्युक्त चेष्ठायें नायक को अच्छी लगती हैं, अतः फगुआ देने में देरी करता है कि थोड़ी देर और भी ऐसाही मज़ा रहे तो अच्छा हो)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में समुच्चय, उत्तरार्द्ध में विशेषोक्ति।

(विशेष)—कोई कोई "फगुआ देत बनै न" का अर्थ करते हैं "फगुआ के पुरस्कार में 'न' अर्थात् नाहीं ही देते बनती है"। भाव वही देर करने का है।

(बसन्त वर्णन)

दो०—छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गंध।
ठौर ठौर झूमत झपत भौंर झौंर मधु अंध ॥ ५६० ॥

शब्दार्थ—सौरभ=सुगंध। माधवी=बासन्तीलता। झपत=एक दम आ गिरते हैं। झौंर=समूह।

(बचन)—कविकी उक्ति।

भावार्थ—आमकी मंजरी की सुगंध से छककर और बासन्ती लता की मधुर गंध से सने हुए, पुष्परस की मदिरा से अन्धे से होकर भौंरों के समूह जगह जगह पर झूमते फिरते हैं और पुष्पित लताओं पर टूटे पड़ते हैं।

कारण। ('कहलाने' शब्द का दूसरा अर्थ है कहलाये हुए अर्थात् गरमी से व्याकुल। एकत=एकत्र, एक साथ। दाघ=दाह, तपन, गर्मी। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु।

(विशेष)—एकबार एक चतुर चित्रकार ग्रीष्म ऋतु का चित्र बनाकर राजा जयसिंह के दर्बार में लाया। उस चित्र में यह दिखलाया गया था कि जेठ की कड़ी धूप में हाँफता हुआ सर्प कहीं छाया न देख मोर की छाया में जा बैठा, मृग गर्मी से व्याकुल बाघ की माँद में जा बैठा था। गर्मी के मारे कोई किसी से बोलता न था। इस चित्रको देख दरबार का कोई व्यक्ति कुछ न समझा। महराज जयसिंह ने इस दोहे का पूर्वार्द्ध भाग कहकर दरबारियों से प्रश्न किया। उत्तर में बिहारी ने उत्तरार्द्ध कहकर चित्र का मर्म खोल दिया था।

भावार्थ—(प्रश्न) इस चित्र में सर्प और मोर, मृग और बाघ किस कारण एकत्र बैठे दिखलाये गये हैं? (उत्तर) कठोर तापयुक्त ग्रीष्मऋतु ने संसार को तपोवन सा बना डाला है (तपोवन में सहज शत्रु भी एकत्र रहते हैं, कोई किसी को सताता नहीं, ऐसा तपस्वियों का प्रभाव माना जाता है)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में चित्रोत्तर' है अर्थात् प्रश्न के ही शब्द उत्तर के शब्द भी हैं। प्रश्न में 'कहलाने' का पहला अर्थ, और उत्तरमें दूसरा अर्थ लगाइये। उत्तरार्द्ध में उपमा। 'कहलाने' शब्दके दूसरे अर्थ को समर्थन करनेके लिये उत्तरार्द्ध का कथन है। अतः काव्यलिंग भी कह सकतेहैं।

दो०—बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह ॥५६६॥

(बचन)—कवि की उक्ति-(जेठ की दुपहर में वृक्षों की छाया ठीक उनके नीचे ही पड़ती है)।




भावार्थ—जेठ की दुपहर की तपन देखकर छाया भी छाया चाहती है। इसी कारण छाया अपने शरीर रूपी घर में पैठ कर अति सघन वन में ही बैठ रही है।

(विशेष)—इस दोहा से ऐसा भान होता है कि जेठ की दोपहर में नायक और नायिका किसी कुंज में बैठे थे। किसी कारण वश रूठ कर नायिका घर जाना चाहती है। इस पर सखी उपर्युक्त दोहा कहकर रोकना चाहती है। अत: इस दशा में प्रस्तुतांकुर अलंकार मानना होगा।

अलंकार—(कबिकी उक्ति मानकर) अत्युक्ति अलंकार। स्मरण रखना चाहिये कि जैसे—जासु त्रास डर कहँ डर होई, राजसमाजहिं लाज लजानी, उसके लियेतो मौत को भी मौत आगई, इत्यादि कथनों में अत्युक्तिही मानी जाती है, वैसे ही 'छाहौं चाहति छाहँ' में भी अत्युक्ति ही मानी जायगी।

(पावस वर्णन)

दो०—तिय तरसौंहैं मन किये, करि सरसौंहैं नेह।
घर परसौंहैं ह्वै रहे, झर बरसौंहैं मेह॥ ९६७॥

शब्दार्थ—तरसौंहैं=तरसने वाला। नेह सरसौंहैं करि=प्रेम को बढ़ा कर। धर=(धरा) पृथ्वी। धर परसौंहैं=पृथ्वी को स्पर्श करने वाले। झर=झड़ी।

(वचन)—मानी नायक प्रति सखी का बचन।

भावार्थ—ये झड़ी बरसाने वाले मेघ पृथ्वी को स्पर्श करनेवाले हो रहे हैं। इन्होंने पुरुषों के हृदयों में प्रेम को बढ़ाकर उनके मनको स्त्रियों के लिये तरसनेवाला कर दिया है (और ऐसे समय में तुम मान किये बैठे हो)।

अलकार—अनुप्रास।

दो०—पावस निसि अँधियार में रह्यौ भेद नहिं आन।
राति द्यौस जान्यो परत लखि चकई चकवान॥९६८॥

कारण। ('कहलाने' शब्द का दूसरा अर्थ है कहलाये हुए अर्थात् गरमी से व्याकुल। एकत=एकत्र, एक साथ। दाघ=दाह, तपन, गर्मी। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु।

(विशेष)—एकबार एक चतुर चित्रकार ग्रीष्म ऋतु का चित्र बनाकर राजा जयसिंह के दर्बार में लाया। उस चित्र में यह दिखलाया गया था कि जेठ की कड़ी धूप में हाँफता हुआ सर्प कहीं छाया न देख मोर की छाया में जा बैठा, मृग गर्मी से व्याकुल बाघ की माँद में जा बैठा था। गर्मी के मारे कोई किसी से बोलता न था। इस चित्रको देख दरबार का कोई व्यक्ति कुछ न समझा। महराज जयसिंह ने इस दोहे का पूर्वार्द्ध भाग कहकर दरबारियों से प्रश्न किया। उत्तर में बिहारी ने उत्तरार्द्ध कहकर चित्र का मर्म खोल दिया था।

भावार्थ—(प्रश्न) इस चित्र में सर्प और मोर, मृग और बाघ किस कारण एकत्र बैठे दिखलाये गये हैं? (उत्तर) कठोर तापयुक्त ग्रीष्मऋतु ने संसार को तपोवन सा बना डाला है (तपोवन में सहज शत्रु भी एकत्र रहते हैं, कोई किसी को सताता नहीं, ऐसा तपस्वियों का प्रभाव माना जाता है)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में चित्रोत्तर' है अर्थात् प्रश्न के ही शब्द उत्तर के शब्द भी हैं। प्रश्न में 'कहलाने' का पहला अर्थ, और उत्तरमें दूसरा अर्थ लगाइये। उत्तरार्द्ध में उपमा। 'कहलाने' शब्दके दूसरे अर्थ को समर्थन करनेके लिये उत्तरार्द्ध का कथन है। अतः काव्यलिंग भी कह सकतेहैं।

दो०—बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह ॥५६६॥

(वचन)—कवि की उक्ति-(जेठ की दुपहर में वृक्षों की छाया ठीक उनके नीचे ही पड़ती है)।

अलंकार—अत्युक्ति ।

दो०—अब तजि नाउँ उपाउ को आयो सावन मास ।
खेल न, रहिबो खेम सों कैम-कुसुम की बास ॥५७५॥

शब्दार्थ—उपाउ = युक्ति । खेम = क्षेम । कैम-कुसुम = कदंब पुष्प ।

(वचन)—दूतीबचन नायक प्रति ।

भावार्थ—(उस परकीयाको लाकर समागम करानेकी युक्ति करने के लिये कहा करते थे सो) अब ऐसे उपायों का नाम छोड़ो, क्यों कि अब तो कामोद्दीपक सावन मास ही आगया (अब वह आसानी से मिल जायगी) । इस सावन मास में कदंब पुष्पों की सुगंध पाकर क्षेमसे रहना कोईखेल नहीं है ।

अलंकार—लोकोक्ति । ('खेम से रहना खेल नहीं है' यह लोकोक्ति है । यथा "प्रीति पयोनिधि में धसिकै हँसिकै कढ़िबो हँसी खेल नहीं फिर") ।

दो०—बामा भामा कामिनी कहि बोलो प्रानेस ।
प्यारी कहत लजात नहि पावस चलत बिदेस ॥५७६॥

शब्दार्थ—बामा = कटूक्ति कहने वाली । भामा = मान में रोष करने वाली । कामिनी = कामवती । प्रानेस = पति ।

(वचन)—प्रोषितपतिका का नायक प्रति ।

भावार्थ—हे प्राणपति मुझे बामा, भामा और कामिनी कह कर संबोधित कीजिये (प्यारी कहकर नहीं) । वर्षा में विदेश जाते समय तुम्हें मुझको प्यारी कहते लज्जा नहीं आती ? (यदि मैं तुम्हें प्यारी होती तो वर्षा में आप विदेश न जाते) ।

अलंकार—शुद्धापह्नुति—(दुरै सत्य उपमेय को प्रगट करै उपमान)।

दो०—हठ न हठीली करि सकै यह पावस ऋतु पाय।
आन गांठ घुटि जाति ज्यों मान गाँठ छुटि जाय ॥५७३॥

शब्दार्थ—हठ = मान। हठीली=मानिनी नायिका। पावस= वर्षाऋतु। घुटि जाति = कड़ी हो जाती है। मान गांठ = मान समय की हठ।

(वचन)—मानिनी प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—इस यौवन काल में वर्षाऋतु पाकर कोई कामिनी मान नहीं कर सकती; कारण यह है कि वर्षा में जैसे अन्य वस्तुओं की गांठे (सन वा मूंज की रस्सियों की गांठें) कड़ी पड़जाती हैं, वैसी मान की गांठ कड़ी नहीं पड़ती, वरन् वह स्वयं छुट-जाती है।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०— वेई चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाय।
छिन बिछुरे जिनकी न यहि पावस आयु सिराय ॥५७४॥

शब्दार्थ—निधरक=निःशंक। न = बिना। आयु सिराय= जीवन व्यतीत होता है।

(अन्वय)—जिनकी आयु, यहि पावस (में) बिना छिन बिछुरे सिराय।

(वशेप)—किसी बिरही की उक्ति है।

भावार्थ—वे ही लोग निःसंदेह चिरजीवी और अमर नामों से पुकारे जाने योग्य हैं, जिनकी आयु इस वर्षा ऋतु में बिना वियोग के व्यतीत होती है अर्थात् वे लोग, जिन्हें वर्षा में प्रिया का वियोग नहीं सहना पड़ता, निःसंदेह चिरजीवी और अमर नाम पाने योग्य हैं।

अलंकार—अत्युक्ति ।

दो०—अब तजि नाउँ उपाउ को आयो सावन मास ।
खेल न, रहिबो खेम सों कैम-कुसुम की बास ॥५७५॥

शब्दार्थ—उपाउ = युक्ति । खेम=क्षेम । कैम-कुसुम= कदंब पुष्प ।

(वचन)—दूतीबचन नायक प्रति ।

भावार्थ—(उस परकीयाको लाकर समागम करानेकी युक्ति करने के लिये कहा करते थे सो) अब ऐसे उपायोंका नाम छोड़ो, क्यों कि अब तो कामोद्दीपक सावन मास ही आगया (अब वह आसानी से मिल जायगी) । इस सावन मास में कदंब पुष्पों की सुगंध पाकर क्षेमसे रहना कोईखेल नहीं है ।

अलकार—लोकोक्ति । ('खेम से रहना खेल नहीं है' यह लोकोक्ति है । यथा "प्रीति पयोनिधि में धसिकै हँसिकै कढ़िबो हँसी खेल नहीं फिर") ।

दो०—वामा भामा कामिनी कहि बोलो प्रानेस ।
प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत विदेस ॥५७६॥

शब्दार्थ—वामा = कटूक्ति कहने वाली । भामा=मान में रोष करने वाली । कामिनी=कामवती । प्रानेस=पति ।

(वचन)-प्रोषितपतिका का नायक प्रति ।

भावार्थ—हे प्राणपति मुझे वामा, भामा और कामिनी कह कर संबोधित कीजिये (प्यारी कहकर नहीं) । वर्षा में विदेश जाते समय तुम्हें मुझको प्यारी कहते लज्जा नहीं आती ? (यदि मैं तुम्हें प्यारी होती तो वर्षा में आप विदेश न जाते) ।

अलंकार—परिकरांकुर। (वामा, भामा, कामिनी शब्द साभिप्राय विशेष्य हैं)।

(नोट)—स्वर्गीय पं० अम्बिकादत्त व्यास ने इस दोहे पर यों कुंडलिया लगाई है:-

पावस चलत विदेश छांड़ि जम सरिस जामिनी।
तऊ कामना करत तिहारी कहहु कामिनी।
मान करन को रोष यादि करि भाषहु भामा।
सुकवि बाम विधि भयो कहहु यासों मोहि वामा।
(वि० वि० पृष्ठ ४४)।

दो०—उठि ठक ठक एतो कहा, पावस के अभिसार।
जानि परैगी देखियो, दामिनि घन-अँधियार ॥५७७॥

शब्दार्थ—ठक ठक=संशययुक्त वादविवाद। अभिसार=प्रियतम मिलन हेत यात्रा। देखियो=देखी हुई भी।

(वचन)—सखी-वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—उठ और चल, वर्षा के अभिसार में इतना संशययुक्त वादविवाद (आगा पीछा) क्यों करती है। देख लिये जाने पर भी तू ऐसी जान पड़ैगी मानो बादलों के अँधेरे में बिजली जा रही हो।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

दो०—फिर सुधि दै सुधियाय प्यौ, यह निरदई निरास।
नई नई बहुरौ दई, दई उसास उसास ॥ ५७८ ॥

शब्दार्थ—सुधिदै=चैतन्य करके (मूर्छा से)। सुधियाय=स्मरण कराकर। उसास=उर्ध्वस्वास। उसासदई=उभाड़दी, चढ़ादी।

(बचन)—नायिका का सखी प्रति।

भावार्थ—(हे सखी, मैं मूर्छा में पड़ी थी सो) तूने चैतन्य करके और प्रियतम के आने की अवधि का स्मरण करा कर (बुरा किया)। मुझे उस निर्दय नायक की ओर से निराशा ही है। (देख) पुनः दैव ने नवीन प्रकार की ऊर्ध्वस्वास को उभाड़ दिया है।

अलंकार—यमक।

(शरद वर्णन)

दो०—घन-घेरो छुटिगो हरषि, चली चहूँ दिसि राह।
किये सुचैनो आय जग, सरद सूर नरनाह ॥५७९॥

शब्दार्थ—सुचैनो=सुखप्रद व्यवस्था। सूर=शूरवीर।

भावार्थ—बादलों का घेरा छूट गया, हर्षित होकर चारों ओर की राहें चलने लगीं (पथिक यात्रा करने लगे)। शरद रूपी बहादुर राजाने जगमें आकर सुखप्रद व्यवस्था कर दी।

अलंकार—रूपक।

(हेमंत वर्णन)

दो०—ज्यों ज्यों बढ़ति विभावरी, त्यों त्यों बढ़त अनंत।
ओक ओक सब लोक सुख कोक सोक हेमंत ॥५८०॥

शब्दार्थ—विभावरी = रात्रि। ओक=घर।

भावार्थ—ज्यौं ज्यौं (हेमंत ऋतु में) रात्रि बढ़ती जाती है, त्यौं ही त्यौं सब लोगों के घरों का सुख और चक्रवाक का शोक अपार बढ़ता जाता है।

अलंकार – दीपक।



दो०—कियो सबै जग काम बस, जीते जिते अजेय।
कुसुमसरहिं सर-धनुष कर, अगहन गहन न देय॥५८१॥

शब्दार्थ—जिते=जितने। अजेय=न जीते जाने योग्य। कुसुमसर=काम।

भावार्थ—जितने न जीते जाने योग्य प्राणी थे उन सबों को जीत कर समस्त जगत को कामवश कर दिया। अगहन ऐसा महीना है कि कामदेव को हाथमें धनुषवाण ही नहीं लेने देता।

अलंकार—निरुक्ति से परिपुष्ट काव्यलिंग।

दो०—मिलि विहरत बिछुरत मरत, दम्पति अति रस लीन।
नूतन विधि हेमंत ऋतु, जगत जुराफा कीन॥५८२॥

शब्दार्थ—दम्पति=पति-पत्नी। रसलीन=शृंगार में मग्न। जुराफा=अफ्रीका निवासी वनजंतु विशेष जिसका यह स्वभाव है कि अपने जोड़े से बिछुड़ते ही प्राण खो देता है। प्राचीन कवियों ने इसे एक प्रकार का पत्ती माना है।

भावार्थ—हेमंत ऋतु ने अपने नये कानून के अनुसार सारे संसार को जुराफा बना डाला है, जिससे संसारके स्त्री पुरुष शृङ्गार रस में निमग्न हो गये। सब स्त्री पुरुष मिलकर विहार करते हैं और बिछुड़ते ही (जुराफा की तरह) मर जातेहैं-अर्थात् यह ऐसी ऋतु है कि वियोग असह्य हो जाता है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

दो०—आवत जात न जानिये, तेजहिं तजि सियरान।
घरहिं जँवाई लौं घट्यौ, खरो पूस दिन मान॥५८३॥

शब्दार्थ—सियरान=ठंढा हो गया। घर जँवाई=ससुराल में रहने वाला दामाद।

भावार्थ—आते जाते कुछ मालूम ही नहीं होता। अपने तेज को छोड़ कर ठंढा हो गया है। पूस के दिनों का मान (दिनमान=दिन की लंबाई) इस तरह घट गया है जैसे ससुराल में रहने वाले दामाद का मान (प्रतिष्ठा) घट जाता है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट पूर्णोपमा।

दो०—लगति सुभग सीतल किरन, निसि-सुख दिन अवगाहि।
माह ससी भ्रम सूर तन, रही चकोरी चाहि॥५८४॥

शब्दार्थ—निसि-सुख दिन अवगाहि=रात का सा सुख दिन में पाकर। सूर तन=सूर्य की ओर। चाहिरही=देख रही है।

(विशेष)—माघ मास के तेजहीन सूर्य का वर्णन है।

भावार्थ—सुन्दर शीतल किरण के स्पर्श से रात्रि का सा सुख दिन ही में पाकर, माघ मास में, चन्द्रमा के भ्रम से चकोरी सूर्य की ओर देखा करती है।

अलंकार—भ्रान्ति।

दो०—तपन तेज तापन तपन, तूल-तुलाई माह।
सिसिर-सीत क्योंहु न मिटै, बिन लपटे तिय नाह॥५८५॥

शब्दार्थ—तपन तेज=सूर्य के तेज से। तापन तपन=अग्नि की गर्मी से। तूल-तुलाई=रुईदार दुलाई से।

(वचन)—मानिनी नायिका प्रति सखी-वचन।

भावार्थ—शिशिर की सर्दी, बिना स्त्री पुरुष के आलिंगन के सूर्य की धूप से, अग्नि की आंच से अथवा रुईदार दुलाई में घुसे रहने से, किसी प्रकार नहीं मिट सकती।

अलंकार—परिसंख्या (तपनतेज, तापन-तपन और तूल-तुलाई से हट कर गर्मी केवल तिय-नाह के आलिंगन में रह गई है)।

दो०—रहि न सकी सब जगत में सिसिर-सीत के त्रास।
गरमी भजि गढ़वै भई तिय कुच अचल मवास॥५८६॥

शब्दार्थ—गढ़वै भई=गढ़ में रहने वाली, गढ़ निवासिनी हुई। मवास=दुर्गम स्थान।

भावार्थ—शिशिर की सर्दी के डर से जब संसार में कहीं भी रहने का स्थान न मिला, तब गर्मी ने, स्त्रियों के कुचों को दुर्गम और अजेय स्थान समझ कर, वहीं निवास किया।

अलंकार—रूपक।

(द्वितीया का चन्द्रदर्शन वर्णन)

दो०—द्वैज सुधादीधित कला वह लखि डीठि लगाय।
मनो अकास अगस्तिया एकै कली लखाय॥५८७॥

शब्दार्थ—सुधादीधित=चन्द्रमा। अगस्तिया=अगस्तनामकवृक्ष।

(विशेष)—कोई सखी नायक को किसी नायिका का घूंघट से थोड़ा निकला हुआ मुख दिखलाकर प्रकृति चंद्रोदय की ओर से विरत करती है।

भावार्थ—हे नायक, यह प्रकृति चंद्रोदय क्या देख रहे हो, यह तो मानो अगस्त की एक ही कली है, ज़रा दृष्टि लगाकर (गौरसे) उस द्वैजकी चन्द्रकला को देखो।

अलंकार—उक्तास्पद वस्तूत्प्रेक्षा। पर्यायोक्ति।

दो०—धनि यह द्वैज जहाँ लख्यो तज्यो दृगनि दुख दन्द।
तो भागनि पूरब उग्यो अहो अपूरब चन्द॥५८८॥

शब्दार्थ—दुखदन्द=दुःख, चिन्ता, कष्ट इत्यादि। अपूरब=अनूठा, अनोखा।

(विशेष)—किसी नायिका को कोई सखी द्वितिया के दिन चंद्रदर्शन की वेला मे किसी नायिका का मुख दिखलाकर

अनुरक्त कराना चाहती है। द्वैज तिथिको नायिक का मुख पूर्णचन्द्र सम, और पश्चिम के बदले पूर्व की ओर से दर्शन होना, यही अपूर्वता है।

भावार्थ—धन्य है यह द्वैज की तिथि, जिसमें ऐसी वस्तु के दर्शन हुए कि नेत्रों के दुःख चिन्तादि छूट गये। तेरी किस्मत से आज द्वैज के दिन (जब चंद्रको पश्चिम से और केवल दो कला से निकलना चाहिये) पूर्व की ओर से (पूर्ण) अनोखा चंद्र (नायिका का मुख) उदय हुआ है।

अलंकार—व्याजस्तुति—(द्वैजकी प्रशंसा से नायिका के मुख की अति प्रशंसा प्रकट है) पर्यायोक्ति—(मिस करि कार्य साधन)

दो०—जोन्ह नहीं यह तम वहै किये जु जगत निकेत।
होत उदय ससिके भयो मानो ससहरि सेत ॥५८९॥

शब्दार्थ—जोन्ह=चांदनी। तम=अंधकार। निकेत=घर। ससहरि=भयभीत होकर, डरकर। सेत=सफेद।

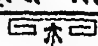
(बचन)—बिरहिनी नायिका का वचन सखी प्रति।

भावार्थ—हे सखी, यह चांदनी नहीं है (क्योंकि दुखदाई है), यह तो वही अंधकार है जो सारे संसार में घर किये हुए है (वियोग में प्रेमी के लिये सारा संसार अंधकार मय जान पड़ता है) परंतु ऐसा जान पड़ता है कि चंद्रमा के उदय से डर कर (भय से) वही अंधकार सफेद पड़ गया है। (भय-से चेहरा सपेद वा पीला हो जाता है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट अपह्नुति।

(पवन वर्णन)

दो०—रनित भृंग घंटावली झरत दान मधुनीर।
मंद मंद आवत चल्यो कुंजर कुंजसमीर ॥ ५९० ॥

शब्दार्थ—रुनित = शब्द करते हुए। भृङ्ग = भौंरे। दान= गजमद। मधुनीर = मकरन्द। कुंजर = हाथी।

भावार्थ—शब्द करते हुए भौंरे सोई घंटे हैं, झरता हुआ मकरन्द ही गजमद है, (इस प्रकार घंटे बजाता और गजमद टपकाता) हाथी रूपी कुंजसमीर (कुंजों से आता हुआ पवन) मन्द मन्द चाल से चला आता है।

अलंकार—रूपक। Local colour

दो० रही रुकी क्यों हूँ सु चलि आधिक राति पधारि।
हरति ताप सब द्यौसको उर लगि यारि, बयारि ॥५९१॥

शब्दार्थ—पधारि=आकर। ताप=दुःख, संताप। द्यौस= (दिवस) दिन। यारि=प्रिया। (नायिका)।

भावार्थ—जो किसी कारण वश रुकी रही हो, वह चलकर आधीरात को आकर, प्रिया रूपी बयारि, हृदय से लग कर दिनका सब दुःख हरती है।

अलंकार—रूपक (श्लेष से पुष्ट)

(विशेष)—इस दोहे में छेकापह्नुति अलंकार मानकर भी बहुत अच्छा अर्थ हो सकता है। इसमें ग्रीष्म की आधीरात बाद चलने वाली हवा का वर्णन है।

दो०—चुवत सेद मकरंद कन तरु तरु तर बिरमाय।
आवत दक्षिण देस ते थक्यो बटोही बाय ॥ ५९२ ॥

शब्दार्थ—सेद = (स्वेद) पसीना। बिरमाय = विरमता हुआ, सुस्ताता हुआ। बटोही=मुसाफिर, पथिक। बाय=(वायु) पवन।

भावार्थ—पसीना रूपी मकरंदकण टपकाता हुआ, और प्रति वृक्ष के नीचे सुस्ताता हुआ, वायु थके हुए बटोही के रूप में दक्षिण दिसा से आ रहा है।





(विशेष)—इस दोहे में बसन्त के मंदपवन का वर्णन है। इस दोहे में 'बिहारी' ने 'बाय' शब्द को पुल्लिग माना है।

अलकार—रूपक।

दो०—लपटी पुहुप-पराग-पट सनी सेद मकरद।
आवति नारि नवोढ़ लौं सुखद बाय गति मंद ॥५९३॥

भावार्थ—फूलों के पराग रूपी वस्त्रों में लिपटी हुई (पराग के पीले वस्त्र धारण किये) और मकरंद रूपी पसीने से युक्त (पसीने में डूबी हुई) नवोढ़ा बधू की तरह सुख देने वाली वायु मंद गति से आरही है।

अलकार—पूर्णोपमा।

(विशेष)—इस दोहे में 'बाय' शब्द 'स्त्रीलिंग' माना गया है।

दो०—रुक्यो सांकरे कुंज मग करत झांझ झुकरात।
मंद मंद मारुत तुरँग खूँदिन आवत जात ॥ ५९४ ॥

शब्दार्थ—झाँझ करना=शरारत करना। झुकराना=झोंके से लेना। खूंदी=उछल कूद (देखो दोहा नं० ७६)।

भावार्थ—संकीर्ण कुञ्जमग में रुका हुआ, शरारत करता हुआ और झोंके से लेता हुआ वायु रूपी घोड़ा मन्द चाल से खूँदी सी करता हुआ आता जाता है।

अलकार—रूपक।

(कुलबधू वर्णन)

दो०—कहति न देवर की कुबत कुलतिय कलह डराति।
पंजरगत मंजार ढिग सुक लौं सूकत जाति ॥५९५॥

शब्दार्थ—कुबत=खोटी बात। पंजरगत = पिंजड़े में बंद। मंजार=विलाव। सूकत जाति = सूखती जाती है।

(वचन)—सखी बचन सखी प्रति। देवर भौजाई से प्रेम संबंध करना चाहता है।

भावार्थ—देवर की खोटी बात वह किसी से कहती नहीं, कारण यह कि परिवार की स्त्रियों में कलह होगी। इसी सोच चिंतामें वह पिंजरा में बंद सुवे की तरह-जिसके निकट बिलाव भी बैठा हो-सूखती जाती है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

(ग्रामीण-नायिका वर्णन)

दो०—पहुला हार हिये लसै सनकी बेंदी भाल।
राखति खेत खरी खरी खरे उरोजनि बाल ॥५९६॥

शब्दार्थ—पहुला=(सं० प्रफुला) कुमुदपुष्प, कोईं।

(वचन)—सखी का वचन नायक प्रति। विच्छित्ति हाव है।

भावार्थ—प्रफुला का हार हृदय पर शोभा देता है, और सन-पुष्प की बेंदी भाल पर लस रही है। वह खड़े कुचों वाली नायिका (ऐसा शृंगार किये हुए) खड़ी खड़ी अपना खेत रखा रही है (आपकी बाट जोह रही है, चलिये)।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में देहरी दीपक। उत्तरार्द्ध में स्वभावोक्ति।

दो०—गोरी गदकारी परैं हँसत कपोलन गाड़।
कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड़ ॥५९७॥

अलङ्कार—गदकारी=मांसल (जिसके शरीर में इतना मांस हो कि दबाने से शरीर गुदगुदा जान पड़े) गाड़=गड्ढा। सुनकिरवा=भंभीरी नामक पतंग जाति का कीड़ा जिसके पंख ऐसे जान पड़ते हैं मानो अबरख के बने हों। वर्षा में यह कीड़ा बहुत होता है। ग्रामीण लड़कियाँ इसके गिरे पड़े पंखों को टिकली की तरह कपार पर अब भी लगाती हैं। आड़= लंबी टिकली, जो स्त्रियां भाल पर लगाती हैं।

(वचन)—सखा वचन नायक प्रति।




भावार्थ—यह गोरी और मांसल शरीर वाली नायिका जिसके गालों में हँसते समय गड्ढे पड़ते हैं, देखो तो यह ग्रामीण स्त्री भँभीरी के पंख की आड़ लगाये हुए कैसी सुन्दर मालुम होती है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०–गदराने तन गोरटी ऐपन आड़ लिलार।
हूठ्यौ दै इठलाय दृग करै गँवारि सुमार ॥ ५९८ ॥

शब्दार्थ—गदराने=पक्वोन्मुख नवयुवती जिसके शरीर में यौवन आचला है। गोरटी=गौरवर्ण वाली। हूठ्यो देना=हूठरपना वा गँवारपना करना, (देखो दोहा नं० २६६)। ऐपन=चावल और हल्दी एक साथ पिसे हुए और पानी में घुले हुए। इठलाना=अंग मरोड़ २ कर बातें करना वा हँसना।

(बचन)—सखा-बचन नायक प्रति।

भावार्थ—यह यौवनोन्मुखी गोरी लिलार पर ऐपन की आड़ लगाये हुए, गँवारपन से इठलाती हुइ गँवारी नायिका नेत्रों से बड़ी सुन्दर मार करती है (कैसे मनहरण कटाक्ष करती हैं)।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

(स्नान वर्णन)

दो०–सुनि पग धुनि चितई इतै न्हात दिये ई पीठि।
चकी, झुकी, सकुची, डरी, हँसी लजीली डीठि ॥५९९॥

शब्दार्थ—चकी=चकृत होगई, आश्चर्य में आगई। झुकी=झुकगई अथवा खीझी।

(वचन)—नायिका स्नान कर रही है, पीछे से नायक आगया है नायक का बचन सखी प्रति।



भावार्थ—पैरों की आहट सुनकर वह मेरी ओर देखने लगी क्यों कि वह मेरे आने की ओर पीठ किये स्नान कर रही थी। मुझे देख कर वह चकित हुई, झुक गई, सकुची, भयभीत हुई और लजीली दृष्टि से हँसी।

(विशेष)—इस दोहामें किलकिंचित हाव कावर्णन बहुत अच्छाहै।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—नहिं अन्हाय नहिं जाय घर चित चिहुँट्यौ लखि तीर।
परसि फुरहरी लै फिरति बिहँसति धँसति न नीर। ६००।

शब्दार्थ—चित चिहुँट्यौ=चित्त में अनुराग की वेदना हुई। फुरहरी लेना=काँपना और रोमांच होना।

(वचन)—स्नान करते समय नायक सरोवर तटपर आगया है। सखी का वचन सखी प्रति।

भावार्थ—नतो स्नान ही करती है, न घरही जाती है। नायक को सरोवर के तट पर देखकर चित्त में प्रेमकी वेदना उठी। अतः जल को स्पर्श करके कंपित और रोमांचित होकर जाड़े के डर से लौटती है, मुसकुराती है और जल में नहीं पैठती।

(विशेष)—चित्त नायक पर आशक्त है। जाड़े के मिससे अधिक देर तक नायक के दर्शन करना चाहती है।

अलकार—पर्यायोक्ति।

दो०—मुँह पखारि मुँड़हरि भिजै सीस सजल कर छ्वाय।
मौरि उच घूँटन नै नारि सरोवर न्हाय॥ ६०१॥

शब्दार्थ—पखारि=धोकर। मुँड़हरि=सिरका अगला भाग। मौरि=(सं०मौलि) सिर। उँचै=ऊँचा करके, ऊपर को उठाकर। घूँटन नै=घुटनों से झुक कर।

(वचन)—क्रिया विदग्धा नायिका है।




(विशेष)—सखी-वचन नायक प्रति (नायिका को लखा देना तात्पर्य है)।

भावार्थ—मुख धोकर, सिरके अगले भागको भिगोकर, सजल हाथ से सिर को छूकर, सिर को ऊँचा किये हुए और घुटनों के बल झुकी हुई वह नायिका स्नान कर रही है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

दो०—बिहँसति सकुचति सी हिये कुच आँचर विच बाँहि
भीजे पट तट को चली न्हाय सरोवर माहिं ॥ ६०२ ॥

शब्दार्थ—आंचर=अंचल, कुचों के ऊपर पड़ा हुआ कपड़ा।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट स्वभावोक्ति।

दो०—मुँह धोवति एँड़ी घँसति हँसति अनँगवति रती
धँसति न इन्दीवर-नयनि कालिन्दीके नीर ॥ ६०३॥

शब्दार्थ—अनँगवति=अनंगवती, कामवती। इन्दीवरनयनि=कमलनयनी। कालिन्दी=यमुना।

भावार्थ—वह अनंगवती नायिका (तीर पर नायक को देख उद्दीपन हुआ है) किनारे पर मुख धोती है, एँड़ी रगड़ रगड़ कर मैल छोड़ाती है, और हँसती है, परंतु वह कमल-नयनी यमुना के जलमें नहीं पैठती।

(विशेष)—क्रिया विदग्धा नायिका।

अलंकार—धर्मवाचकलुप्तोपमा से पुष्ट स्वभावोक्ति।

दो०—न्हाय पहिरि पट झट कियो बेंदी मिस परनाम।
दृग चलाय घरको चली बिदा किये घनस्याम ॥ ६०४ ॥

शब्दार्थ—झट=तुरंत। परनाम=प्रणाम, अभिवादन।

(वचन)—क्रिया विदग्धा नायिका।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—पर्यायोक्ति और सूक्ष्म।

दो०—चितवति जितवति हितहिये किये तिरीछे नैन।
भीजें तन दोऊ कँपत क्यों हू जप निबरै न॥ ६०५॥

शब्दार्थ—चितवति=देखती है। जितवति=जिताती है, उत्कृष्ट प्रमाणित करती है। हित=प्रेम। निबरै न=समाप्त नहीं होता।

(वचन)—सखी-वचन सखी प्रति।

भावार्थ—नायक की ओर तिरछे नेत्र किये देख रही है (जप नहीं कर रही है) हृदय के प्रेमको जिता रही है-अर्थात् भक्ति वा कष्ट का ध्यान छोड़ प्रेम को विजेता प्रमाणित कर रही है-(देखो न) भीगे शरीर (जाड़े में) दोनो काँप रहे हैं, पर किसी प्रकार जप समाप्त ही नहीं होता।

अलंकार—पूर्वार्द्धमें स्वभावोक्ति। उत्तरार्द्ध में विशेषोक्ति।



सातवाँ शतक

(गर्भवती)

दो०—दृग थिरकौंहैं अधखुले देह थकौंहैं ढार।
सुरति सुखित सी देखियत, दुखित गरभ के भार॥६०६॥

शब्दार्थ—थिरकौंहैं=चंचल। थकौंहैं ढार=थकीसी।

(विशेष)—कोई गर्भवती स्त्री बैठी है। कोई वयोवृद्धा स्त्री आई है। गर्भवती ने स्वयं न उठकर सखी द्वारा उसका सत्कार कराया है। इसपर वह वृद्धास्त्री उसके न उठने का कारण तीन चरणों में अनुमान करती है। उसका अनुमान ग़लत जान कर सखी चौथे चरण में सच्चा कारण बताती है।

भावार्थ—इसके अधखुले नेत्र कुछ कुछ चंचल से हैं (अर्थात् कमचंचल है-स्थिर से हैं) और शरीर थका सा है, मानो यह अभी सुरति से निबट कर बैठी है अतः आनन्द संमोहिता सी स्थगित देख पड़ती है। (तब सखी कहती है कि नहीं ऐसा नहीं है वरन्) गर्भ के भार से दुखित है (इस हेतु शीघ्रता पूर्वक उठ नहीं सकती)।

अलंकार—भ्रान्त्यापह्नुति।

(कातनिहारी)

दो०—ज्यों कर त्यों चुहँटी चलै ज्यौं चुहँटी त्यौं नारि।
छवि सों गति सों लै चलै चातुरि कातनि हारि॥६०७॥

शब्दार्थ—चुहँटी=चुटकी। नारि=गर्दन।

भावार्थ—जैसे हाथ चलता है वैसे ही चुटकी भी चलती है और जैसे चुटकी चलती है वैसे ही गर्दन भी। यह चतुरा



कातनेवाली अपनी छबिसे मानो नृत्यकी गति सी लेती है।

अलंकार—अनुक्तास्पद वस्तूत्प्रेक्षा।

दो०—अहे दहेंड़ी जिनि धरै जिनि तू लेहि उतारि।
नीके है छींके छुए ऐसी ही रहि नारि ॥ ६०८ ॥

शब्दार्थ—छींका=सिकहर।

(विशेष)—नायिका दोनों हाथ उठाकर सिकहर में दहेंड़ी रखती है। ऐसी दशा में नायक ने उसके तने हुए शरीर और अधखुले पीन पयोधरों को देख कर यह कहा है।

भावार्थ—हे प्यारी न तो तू दहेंड़ी को सिकहर पर रख और न वहां से नीचे उतार। इसी प्रकार सिकहर छुए हुए खड़ी रह, तेरी यही अदा मुझे बहुत भली मालूम होती है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

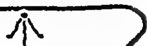
दो०—देवर फूल हने जु हठि उठे हरषि अँग फूलि।
हँसी, करत औषधि सखिनु देह ददोरन भूलि ॥ ६०९ ॥

भावार्थ—देवर ने तो हठ करके भावज को फूल मारे हैं, इसकारण रोमांच और हर्ष से (क्योंकि दोनों का गुप्त प्रेम है) भावज का शरीर फूल गया है। पर उसकी सखियाँ जानती हैं कि इसके शरीर में चोट के कारण ददोरे पड़ गये हैं, इस हेतु भूल से ददोरों की दवा कर रहीं है। इस विचित्र चरित्र को देख कर कोई मर्मज्ञ सखी वा परोसिन हँस पड़ी।

अलंकार—भ्रम।

दोहा—तिय निज हिय जु लगी चलत पिय नख रेख खरोंट।
सूखन देत न सरसई खोंटि खोंटि खत खोंट ॥६१०॥

शब्दार्थ—खरोंट=खरोंच, खराश। सरसई=गीलापन। खोंटना=नोचना तोड़ना। खत=(क्षत) घाव। खोंट=घावके उपरी भाग की सूखी हुई खुट्ट।




(वचन)-सखी का सखी प्रति ।

भावार्थ—प्रियतम के चलते समय मिलने से उस नायिका के हृदय पर नख लगने से जो घाव हो गया है उस घाव का खुट्ट नोच नोच कर (उसका ताज़ापन बनाये रखने के लिये) उसे सूखने नहीं देती ।

(वचन)—लेश (प्रियतम के स्मरणार्थ दुखदायक को भी सुखकर समझती है)।

दोहा——पारचो सोर सुहाग को इन विनही पिय नेह ।
उनिदौहीं अखियाँ ककै कै अलसौंही देह ॥६११॥

शब्दार्थ—सोर=ख्याति। उनिदौंही=उनीदीसी। ककै=करके।

(वचन)--सवति के विषय में सखीका बचन नायिका प्रति।

भावार्थ—इसने (तुम्हारी सवति ने) बिना नायक के नेह के ही, उनीदी आंखें और आलसयुक्त देह बनाकर अपने सुहाग की ख्याति फैला दी है (वास्तव में नायक रात को उसके पास नहीं रहा, न उससे प्रेम ही करता है जैसा तुम बाहरी चिह्नों से अनुमान करती हो)।

अलकार--विभावना और पर्यायोक्ति ।

दो०—बहु धन लै अहिसान कै पारो देत सराहि ।
वैद-बधू हँसि भेद सों रही नाह मुख चाहि॥६१२॥

शब्दार्थ--अहिसान=थराई, उपकार । चाहि रही=देख कर रह गई ।

भावार्थ—कोई वैद्य जो स्वयं नपुंसक था किसी से बहुत सा धन लेकर और तिसपर भी एहसान जताकर बहुत बड़ी तारीफ करता हुआ उसे पारा (पारे की खाक) दे रहा है, (जिसे खाकर वह अति प्रबल पुरुषशक्तिवाला हो जायगा)

इस बात को सुन तथा देख कर उस वैद्य की स्त्री मर्मयुक्त हँसी हँसकर (कि,स्वयं खाकर प्रबलशक्ति क्यों नहीं प्राप्त कर लेते) निज पति का मुख देखकर रह गई।

अलंकार—सूक्ष्म।

दो०—ऊँचे चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत।
दृग झलकत मुलकत बदन तन पुलकत केहि हेत ॥ ६१३ ॥

शब्दार्थ—गिरह लेना=उड़ते हुए कबूतर का कुलांच खाना। मुलकना=हँसना।

(विशेष)—कबूतरों के मिस नायिका नायक को देखती है। आनंद से सात्विक होते हैं। इस पर सखी का वचन नायिका प्रति।

भावार्थ—हे चतुरा, ऊपर की ओर देखकर तारीफ तो कबूतरों की करती है कि कैसी सुन्दर कुलांचे लेते हैं, परंतु आंखें चमक सी रही है, मुख मुसका सा रहा है और तन पर पुलकावली हो रही है, इसका क्या कारण है? (मैं जान गई कि तू इस कबूतर उड़ानेवाले नायक पर आशक्त है)।

दो०—कारे बरन डरावने कत आवत यहि गेह।
कइ वा लख्यो सखी लखे लगै थरहरी देह ॥ ६१४ ॥

शब्दार्थ—कइ वा=कई बार। थरहरी लगना=काँपने लगना।

भावार्थ—यह काले शरीर वाला डरावना मनुष्य (कृष्ण जी) क्यों इस घर पै आता है। मैंने कई बार इसको यहाँ देखा है, हे सखी इसे देखकर मेरा शरीर काँपने लगता है।

अलंकार—व्याजोक्ति। (कंप सात्विक का कारण आशक्ति नहीं, वरन् भय बताती है)।

दो०—औरि सबै हरखी फिरै गावत भरी उछाह।
तुहीं बहू बिलखी फिरै क्यों देवर के ब्याह॥ ६१५॥

(वचन)—निज देवर से कोई नायिका अनुरक्त है। उसी नायिका प्रति किसी गुरु स्त्री का बचन।

भावार्थ—घर आई हुई अन्य सब स्त्रिया हर्षित हो उत्साह पूर्वक गाती फिरती हैं। हे बहू एक तूही देवर के ब्याह में क्यों दुखित होती है।

(विशेष)—देवर की स्त्री आजाने से मेरा नायक स्वच्छन्दता-पूर्वक घर में नहीं आ सकेगा। इस भेदसे दुखित स्वकीया से सखी का बचन भी हो सकता है।

अलंकार—उल्लास।

दो०—रबि बंदौ कर जोरि कै सुनत स्याम के बैन।
भये हँसौंहैं सबनि के अति अनखौंहैं नैन॥ ६१६॥

भावार्थ—अति सरल है।

अलंकार—पर्याय।

दो०—तंत्रीनाद कवित्तरस सरस राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग॥ ६१७॥

शब्दार्थ—तंत्रीनाद = बीणा वा सितार इत्यादि का शब्द। रतिरंग = प्रेम।

भावार्थ—वाद्य, कवित्व, गान, और प्रेम के रस में जो लोग सर्वांग डूब गये वे ही इस भव-समुद्र को पार कर गये, और जो इन रसों में नहीं डूबे वेही इस भव-पारावार में डूब गये।

अलंकार—विरोधाभास।

दो०—गिरि ते ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरन कहँ प्रेमपयोधि पगार॥ ६१८॥

शब्दार्थ—पगार = पायाब पानी, छीलर, उतना पानी जितने में केवल पैर डूबे।

भावार्थ—पर्वत से भी अधिक ऊँचे रसिकों के मन जिस प्रेमसमुद्र में हजारों डूब गये हैं, वही प्रेम-समुद्र पशुवत् अज्ञान नरों को पायाब (उथला) पानी सा जान पड़ता है।

अलंकार—रूपक।

दो०—चटक न छाँड़त घटतहू सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न बरु फटै रँग्यो चोल रँग चीर ॥ ६१९ ॥

शब्दार्थ—चटक = चटकीलापन। चोल = मँजीठ।

भावार्थ—सज्जन पुरुषों का गंभीर स्नेह घटते हुए भी अपना चटकीलापन नहीं छोड़ता, जैसे मँजीठ के रंग में रँगा हुआ कपड़ा फट चाहे जाय, पर रंग में फीका नहीं पड़ता।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा।

दो०—संपति केस सुदेस नर नमत दुहुन इक बानि।
बिभव सतर कुच नीच नर नरम बिभव की हानि ॥ ६२० ॥

शब्दार्थ—सुदेसनर = सुपुरुष, भले आदमी। नमत = नम्र होते हैं। सतर=कठिन, बांके। बानि = आदत, स्वभाव।

भावार्थ—सम्पत्तिवान होने पर (बढ़ने पर) बाल और भले आदमी नम्र होते हैं, इन दोनों की एक सी आदत होती है। परंतु कुच और नीच नर विभवयुक्त होने पर कठोर होते हैं, और विभव नाश होने पर नरम पड़ते हैं।

अलकार—आवृत्ति दीपक (अर्थावृत्ति—नमत और नरम)।

दो०—न ये बिससिय लखि नये दुर्जन दुसह सुभाय।
आँटे परि प्रानन हरैं काँटे लौं लगि पाय ॥ ६२१ ॥

शब्दार्थ—बिससना = विश्वास करना। आँट = दबाव।

भावार्थ—इन दुःसह स्वभाव वाले दुर्जनों को नम्र देख कर कभी विश्वास न करना चाहिये। दाब में पड़ कर भी ये लोग काँटे की तरह पैर में लगकर प्राण हरते हैं (अति कष्ट देते हैं)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—जेती संपति कृपन कों तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यों ज्यों उरज त्यों त्यों होत कठोर॥ ६२२॥

शब्दार्थ—सूमति=सूमपना, कृपणता। जोर=ज़ोर पकड़ती है, बढ़ती है।

भावार्थ—कृपण को जितनी ही अधिक संपत्ति मिलती जाती है, उसका सूमपना उतना ही अधिक ज़ोर पकड़ता जाता है। जैसे कुच ज्यों ज्यों बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों अधिक कठोर होते जाते हैं।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—नीच हिये हुलसो रहै गहे गेंद को पोत।
ज्यों ज्यों माथे मारिये त्यों त्यों ऊँचो होत॥६२३॥

शब्दार्थ—पोत=समता, ढंग।

भावार्थ—नीच पुरुष गेंद का ढंग लिये हुए निरादृत होने पर भी हृदय में हुलास ही रखता है। जैसे गेंद को ज्यों ज्यों मारते हैं त्यों त्यों वह ऊपर को उछलता है।

अलंकार—दृष्टान्त। कोई कोई इसमें आर्थी उपमा भी मानते हैं।

दो०—कबौं न ओछे नरन सों सरत बड़न को काम।
मढो दमामो जात कहुँ कहि चूहे के चाम॥ ६२४॥

शब्दार्थ—काम सरना=काम होना। दमामा=नगाड़ा। कहि=कहो, बतलाओ।

भावार्थ—छोटे आदमियों से बड़ों का काम कभी नहीं हो



सकता। तुम्हीं बतलाओ कहीं चूहे के चमड़े से नगाड़ा मढ़ा जा सकता है? (नहीं मढ़ा जा सकता)।

(नोट)—"कैसे छोटे नरन सों" पाठान्तर है।

अलंकार—वक्रोक्ति गर्भित अर्थान्तरन्यास।

दो०—कोरि जतन कोऊ करो परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचे चढ़ै तऊ नीच को नीच॥ ६२५॥

शब्दार्थ—कोरि=कोटि, करोड़। प्रकृति=स्वभाव। बीच=अंतर, फर्क।

भावार्थ—कोई करोड़ यत्न करै, पर स्वभाव में फर्क नही पड़ता। नलके ज़ोर से जल ऊपर को चढ़ता तो है, पर अंत में (नल से पृथक होने पर) नीच होने से नीचे ही को बहता है (अपना नीच स्वभाव नही छोड़ता)।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

दो०—लटुवा लौं प्रभु कर गहे निगुनी गुन लपटाय।
वहै गुनी कर ते छुटे निगुनीयै ह्वै जाय॥ ६२६॥

शब्दार्थ—लटुवा=लट्टू (भौंरा)। निगुनी=(१) गुणरहित, (२) बिना डोर का।

भावार्थ—जब प्रभु (ईश्वर वा राजा जयसिंह) किसी को अपने हाथ में लेते हैं (अपनाते हैं) तब निगुनी भी लट्टू की तरह गुन (गुण, डोरी) से लिपट जाता है (गुणयुक्त हो जाता है)। पर वही गुणी जब हाथ से छूट जाता है तब पुनः ज्यों का त्यों गुण रहित होजाता है।

अलकार—उपमा।

दो०—चलत पाय निगुनी गुनी धन मनि मुकुता माल।
भेंट होत जयसाह सों भाग्य चाहियत भाल॥ ६२७॥

शब्दार्थ—जयसाह = राजा जयसिंह जिनके दर्बार में रहकर बिहारी लाल ने यह ग्रंथ रचा था।

भावार्थ—गुणी हो अथवा निर्गुणी हो, राजा जयसिंह से भेंट होते ही दोनों प्रकार के लोग धन, मणि और मुक्तामाल पाकर ही लौटते हैं। वहाँ धन, मणि इत्यादि पाने के लिये क्या भाल में भाग्य चाहिये? (अर्थात् न चाहिये)—गुणी और भाग्यवान पुरुषों को तो सब ही राजा देते हैं, पर राजा जयसिंह निर्गुणी और अभागों को भी निहाल कर देते है केवल भेंट हो जानी चाहिये।

अलंकार—वक्रोक्ति से पुष्ट तुल्ययोगिता।

दो०—यों दल काढे बलख तें तैं जयसाह भुवाल।
उदर अघासुर के परे ज्यों हरि गाय गुवाल॥ ६२८॥

(नोट)—बलख देश में शाही फौज को शत्रुओं ने घेर लिया था। तब बादशाह ने जयसिंह को भेजा था। जयसिंह शत्रु सेना का संहार कर शाही सेना को निकाल लाये थे।

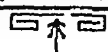
भावार्थ—हे राजा जयसिंह तुम ऐसे वीर हो कि बलख से शाही सेना को इस प्रकार निकाल लाये थे, जैसे अघासुर के पेट में पड़े हुए गायों और ग्वालों को श्री कृष्ण ने निकाला था।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—अनी बड़ी उमड़ी लखे असिबाहक भट भूप।
मंगल करि मान्यो हिये भो मुँह मंगलरूप॥ ६२९॥

शब्दार्थ—अनी=सेना। असि बाहक=तलवार धारी।

भावार्थ—भारी उमड़ी हुई सेना के शूर वीर राजाओं को तलवारधारी देख कर, जयसिंह ने (युद्ध कार्यको) मंगल कार्य समझा और (क्रोध सहित उत्साह से) उनका मुख



मंगलके रंगका (लाल) होगया।

अलंकार—विभावना-(अमंगल को मंगल माना)।

दो०—रहति न रन जैसाह-मुख लखि लाखन की फौज।
जाँचि निराखर हू चलै लै लाखन की मौज॥ ६३०॥

शब्दार्थ—फौज=सेना। निराखर=निरक्षर (अपढ़) मौज=बकसीस।

भावार्थ—राजा जयसिंह का मुख देखते ही लाखों की फौज रणस्थल में नहीं ठहरती (भग जाती है) और निरक्षर लोग मांगने पर लाखों की बख़शिश पाकर जाते हैं—(भारी शूरबीर और महा दानी है)।

अलंकार—अत्युक्ति।

दो०—प्रतिबिम्बित जैसाह दुति दीपति दर्पण-धाम।
सब जग जीतन को कियो कायब्यूह मनु काम॥ ६३१॥

शब्दार्थ—दीपति=दीप्तमान करती है। दर्पण धाम=शीशा-महल (जिस महल में अनेक दर्पण जड़े हों)। कायव्यूह=शरीर की सेना।

भावार्थ—राजा जयसिंह के शरीर की दुति शीशामहल में लगे हुए अगणित आदर्शों पर अपना प्रतिबिंब डाल कर उसे ऐसे दीप्तमान कर देती है मानो कामदेव ने समस्त संसार को जीतने के लिये कायव्यूह बनाया हो (अनेकरूप बनाये हो)।

अलङ्कार—असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा।

दो०—दुसह दुराज प्रजानि को क्यों न बढ़ै अति दंद।
अधिक अँधेरो, जग करै मिलि मावस रवि चंद॥ ६३२॥

शब्दार्थ—दंद=(द्वंद) दुःख। मावस=अमावस।

भावार्थ—एकही देश में प्रचंड तेजवाले दो राजाओं के होने




से प्रजागण का दुःख क्यों न बढ़ जायगा। अमावस की रात्रि को सूर्य और चंद्रमा एक राशि पर होकर जग में अधिक अँधेरा करते हैं।

अलङ्कार—दृष्टान्त।

दो०—बसै बुराई जासु तन ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये खोटे ग्रह जप दान ॥६३३॥

भावार्थ—संसार में बुरे ही का सन्मान होता है। शुभ ग्रह को अच्छा कह कर छोड़ देते हैं और अशुभ ग्रह के लिये लोग जप और दान कराते हैं।

अलंकार—दृष्टान्त।

दो०—कहैं इहै सब स्रुति सुमृति इहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही पातक राजा रोग ॥६३४॥

शब्दार्थ—स्रुति = (श्रुति) वेद। सुमृति = स्मृतियां। निसक = निःशक्ति, निबल। पातक = पाप।

भावार्थ—यही बात सब वेद और सब स्मृतियां कहती हैं और यही सब सयाने लोग भी कहते हैं कि तीन जने अर्थात् पाप, राजा और रोग निर्बल ही को दबाते हैं।

अलकार—प्रमाण (शब्द प्रमाण)।

दो०—बड़े न हूजै गुनन बिन बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ़ो न जाय ॥६३५॥

शब्दार्थ—कनक = (१) धतूरा (२) सोना।

भावार्थ—केवल नाम मात्र की बड़ाई पाकर कोई वास्तव में बड़ा नहीं हो जाता। 'कनक' तो धतूरा का भी नाम है, पर उससे गहना नहीं बन सकता—जो काम सोने से होता है वह नाम मात्र होने से धतूरे से नहीं हो सकता।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास ।

दो०—गुनी गुनी सब कोउ कहै निगुनी गुनी न होत ।
सुन्यो कहूं तरु अर्क ते अर्क समान उदोत ॥६३६॥

शब्दार्थ—अर्क = (१) मदार (अकौवा), (२) सूर्य । उदोत= प्रकाश ।

भावार्थ—सब संसार गुणी गुणी कहै, तब भी निर्गुणिया गुणी नहीं हो सकता । क्या अकौवा के पेड़ से सूर्य के समान प्रकाश होते कहीं सुना गया है-अर्थात् नहीं ।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास (वक्रोक्ति से पुष्ट) ।

दो०—नाह-गरज नाहर-गरज बोलि सुनायो टेरि ।
फँसी फौज के बन्दि में हँसी सबन तन हेरि ॥६३७॥

शब्दार्थ—नाह = नाथ (पति) । नाहर=सिंह । तन= तरफ, ओर ।

(विशेष)—रुक्मिणी हरण का समय ।

भावार्थ—सिंह की गर्जन के समान वाली अपने पति की गर्जन सुनकर (रुक्मिणी ने) जोर से पुकार कर सुना दिया (अब तुम लोग मेरा कुछ नहीं कर सकते, मेरे पति आगये) जो रुक्मिणी फौज से घिरी हुई घबरा रही थी, वही सबकी ओर देख कर व्यंग से हँसी (कि अब ये लोग कुछ नहीं कर सकते)। तात्पर्य यह कि पति की शक्त से स्त्री सशक्त हो जाती है।

अलंकार—धर्म वाचक लुप्तोपमा—(नाहगरज नाहरगरज के समान भयंकर)।

दो०—संगति सुमति न पावहीं परे कुमति के धंध ।
राखौ मेलि कपूर में हींग न होत सुगंध ॥६३८॥



शब्दार्थ—धंध=धंधा (कार्य)।

भावार्थ—जो कुमति के धंधा में पड़ा रहता है, वह सुसंगति पाकर भी सुमति नहीं प्राप्त कर सकता। जैसे हींग को कपूर के डब्बे में डाल रक्खो तो भी वह सुगंधित न होगी।

अलंकार—दृष्टान्त और अतद्गुण।

दो०—परतिय दोष पुरान सुनि लखी मुलकि सुखदानि।
कसकरि राखी मिश्र हू मुहँ आई मुसकानि ॥६३९॥

शब्दार्थ—मुलकि=देखकर। मिश्र=पौराणिक।

(विशेष)—पुराण बाँचने वाले व्यास से किसी परकीया से प्रेम था, पुराण में पर स्त्री गमन का दोष वर्णन करते देख वह स्त्री व्यास पर हँसी। व्यास ने अपनी हँसी रोकी।

भावार्थ—पुराण में पर स्त्री गमन का दोष सुनकर वह सुख देने वाली नायिका (व्यास जी की प्रियतमा जो श्रोताओं में थी) ने आंखों में हँसती हुई पौराणिक जी की ओर देखा (कटाक्षपात किया)। यह देखकर पुराणी जी को भी हँसी तो आई, पर उन्होंने मुहँ तक आई मुसकान को जबरई रोक रक्खा (नहीं तो अन्य श्रोताओं पर सब भेद खुल जाता)।

अलंकार—सूक्ष्म।

दो०—सबै हँसत करतारि दै नागरता के नाँव।
गयो गरब गुन को सबै बसे गँवारे गाँव ॥६४०॥

शब्दार्थ—नागरता=चातुर्य, प्रवीणता। गरब=घमंड। गँवारे=गँवारों का।

(विशेष)—कोई नगर निवासी प्रवीण पुरुष किसी गाँव में जा बसा है, पर उसकी प्रवीणता की कोई वहां कदर नहीं करता वरन् उलटे उसे बनाते हैं, तब वह कहता है।

भावार्थ—सब हाथ की ताली दे देकर प्रवीणता के नाम पर हँसते हैं। (हे मित्र) इस गँवारों के गाँव में बसकर मेरा तो समस्त गुण-गर्व जाता रहा।

अलंकार—हेतु (प्रथम)।

दो०—फिरि फिरि बिलखी ह्वै लखै फिरि फिरि लेति उसास।
साईं सिर कच सेत लौं चूनत बित्यो कपास ॥६४१॥

शब्दार्थ—उसास = ऊँची सांस। बित्यौ कपास = कपास के खेत के उजड़ जाने से।

(विशेष)—किसी वृद्ध पुरुष की तरुण स्त्री का वर्णन। अनुसैना नायिका है। कपास का खेत संकेत था। उसके उजड़ने पर उसकी दुःखावस्था का वर्णन।

भावार्थ—पुनः पुनः व्याकुल हो होकर उसे देखती है, और पुनः पुनः ऊँची सांस लेती है। उजड़े हुए कपास के खेत में कपास चुनते हुए उसको वैसा ही दुःख हुआ जैसा स्वामी के सिर के सफेद बाल उखाड़ते समय होता था। (देखो दोहा नम्बर २७५)।

अलंकार—पूर्णोपमा।

दो०—नर की अरु नलनीर की गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चलै तेतो ऊँचो होइ ॥६४२॥

शब्दार्थ—नलनीर = फुहारे का पानी। जोइ = देख।

भावार्थ—मनुष्य और फुहारे के जल की एक ही सी दशा है, इसे अच्छी तरह देख लो (समझ लो)। जितना ही नीचा होकर चलता है उतना ही ऊँचा होता है।

अलंकार—दीपक।

दो०—बढ़त बढ़त संपति सलिल मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुँभिलाय ॥६४३॥





शब्दार्थ—सलिल = पानी। बरु = बल्कि, चाहे।

भावार्थ—संपति रूपी जल के बढ़ने से मन रूपी कमल की नाल बढ़ती जाती है (ऐसा लोकापवाद है कि सरोवर में ज्यौं ज्यौं पानी बढ़ता है त्यों त्यों कमल नाल बढ़ती जाती है और कमल पुष्प पानी में डूबता नहीं) परन्तु घटते समय फिर वह छोटा नहीं होता चाहे समूल सूख जाय, (जैसे पानी घटने से कमल की नाल नहीं घटती)।

अलंकार—रूपक।

दो०—जो चाहौ चटक न घटै मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त॥ ६४४॥

शब्दार्थ—चटक=चमकीलापन। राजस=राजसी, हुकूमत।

भावार्थ—यदि तुम यह चाहते हो कि मित्रता की चमक दमक न घटै और मित्र मैला न हो (मित्र के मन में किसी प्रकार का मैल न आवै) तो नेह से सुस्निग्ध (उसके) चित्त में हुकूमत की धूल मत छुआओ (उसपर हुकूमत न करो)।

अलंकार—रूपक।

दो०—अति अगाध अति औथरे नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहां जाकी प्यास बुझाय॥६४५॥

शब्दार्थ—अगाध=अथाह। औथरे = उथले। बाय=बावली।

भावार्थ—संसार में अनेक अथाह और उथले नदी, कूवाँ, सरोवर और बावलियां हैं, परंतु जिसकी जहाँ से तृप्ति हो वही उसके लिये समुद्र है।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—मीत न नीत गलीत ह्वै जो धन धरिये जोरि।
खाये खरचे जो बचै तो जोरिये करोरि॥ ६४६॥



शब्दार्थ—गलित ह्वै = गलती होकर (अपनी बुरी दशा बनाकर) अपने को भूखों मार कर।

भावार्थ—हे मित्र, यह कोई नीति की चाल नहीं है कि अपने को भूखों मार कर (कंजूसी से अपनी बुरी दशा बना कर) धन संचय किया जाय। हाँ यह ठीक है कि खाने और खरचने से यदि बच जाय तो करोड़ों मुद्रा संचित करै (तब कुछ हर्ज नहीं)।

अलंकार—संभावना।

दो०—टटकी धोई धोवती चटकीली मुख जोति।
फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति॥६४७॥

शब्दार्थ—टटकी=तुरंत की, ताज़ी। धोवती=धोती, साड़ी, (धौत वस्त्र)। बगर=दालान। जगर मगर होना=जगमगाना।

भावार्थ—ताजी धोई हुई धोती पहने है और मुख की जोति बड़ी चटकीली है। ऐसी नायिका रसोई के दालान में (काम काज के कारण) इधर उधर आती जाती है। उसकी दुति से सारा दालान जगमगा रहा है।

अलंकार—स्वाभावोक्ति।

दो०—सोहत संग समान को इहै कहत सब लोग।
पान पीक ओठन बनै काजर नैनन जोग॥६४८॥

शब्दार्थ और भावार्थ बहुत सरल हैं।

अलंकार—सम। (अधीरा वा खण्डिता की उक्ति मानें तो दृष्टान्त अलंकार होगा)।

दो०—चित पितुमारक जोग गुनि भयो भये सुत सोग।
फिरि हुलस्यो जिय जोयसी समुझ्यो जारज जोग ६४९

शब्दार्थ—जोयसी = ज्योतिषी। जारज जोग = अन्य पुरुष

से उत्पन्न होने का सूचक योग (ज्योतिष के अनुसार)।

भावार्थ—अपने पुत्र की कुँडली में पिताघातक योग देख कर, लड़का होने से (जब कि आनंदित होना चाहिये) किसी ज्योतिषी जी को शोक हुआ, परंतु पुनः सूक्ष्म रीत्या विचार करने से जब यह ज्ञात हुआ कि इसकी कुंडली में तो जारज योग भी पड़ा है (अर्थात् यह तो अन्य किसी पुरुष से उत्पन्न है) तब ज्योतिषी जी को हर्ष हुआ।

अलकार—लेश (दोष में गुण माना)।

दो०—अरे परेखो को करै तुही बिलोकि बिचारि।
किहिं नर किहिं सर राखियो खरे बढ़े पर पारि॥६५०॥

शब्दार्थ—परेखो=परीक्षा, जाँच। पारि=(१) पाढ़, बाँध (२) मर्यादा।

भावार्थ—हे मित्र! जाँच कौन करता फिरै, तू ही बिचार कर देख ले कि किस मनुष्य ने अत्यन्त बढ़ने पर मर्यादा की रक्षा की है और किस सरोवर ने अत्यन्त बढ़ने पर अपनी पाढ़ (बाँध) की रक्षा की है?—मनुष्य अति संपत्तिवान होने पर अमर्यादित काम करने लगता है और तालाब अति बढ़ने पर अपनी पाढ़ काट देता है।

अलकार—काकुवक्रोक्ति।

दो०—कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है या पाये बौराय॥६५१॥

शब्दार्थ—कनक=(१) सोना (२) धतूरा। मादकता=नशा।

भावार्थ—धतूरा की अपेक्षा सोना में सौगुना ज्यादा नशा है, क्योंकि धतूरा को खाने से मनुष्य पागल होता है, पर सोने को तो पाने ही से मनुष्य बौरा जाताहै।



अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—ओंठ उचै हाँसी भरी दृग भौंहन की चाल।
मो मन कहा न पी लियो पियत तमाखू लाल ॥६५२॥

नोट—हम इस दोहे को बिहारी कृत नहीं मानते क्योंकि इसमें बिहारी के दोहों का सा रस नहीं है।

दो०—बुरो बुराई जो तजै तो चित खरो सकात।
ज्यों निकलंक मयंक लखि गनैं लोग उतपात ॥६५३॥

शब्दार्थ—खरो सकात=बहुत डरता है। निकलंक = कलंक रहित (बिना दाग का)। मयंक=चंद्रमा। उतपात=उपद्रव।

भावार्थ—यदि बुरा जन बुराई छोड़ दे तो चित्त बहुत डरता है, जैसे बिना दाग के चंद्रमा को देख कर लोग उपद्रव का अनुमान करते हैं।

(नोट)—ज्योतिष मत से ऐसा माना जाता है कि यदि चंद्रमा का काला दाग कम हो जाय वा बिल्कुल न हो तो संसार में हिम वर्षा होगी।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—भाँवरि अनभाँवरि भरो करो कोटि बकवाद।
अपनी अपनी भाँति को छुटै न सहज सवाद ॥६५४॥

शब्दार्थ—भाँवरि भरो=घूमने जाया करो। अनभाँवरि भरो = घूमने न जाया करो-एक स्थानमें बैठे रहो। भाँति=टेव, स्वभाव।

(विशेष)—कोई नायक बड़ा घुमक्कड़ है। स्त्री के निवेदन करने पर उसने कहा है कि लो अब मैं न जाया करूंगा, पर नायिका अविश्वास करती हुई कहती है।

भावार्थ—आप चाहे घूमने जाइये अथवा न जाइये और चाहे आप करोड़ बार अपने निर्दोष होने का प्रमाण दीजिये

(पर मैं विश्वास नहीं कर सकती) क्योंकि अपनी २ प्रकृति का सहज स्वाद तो किसी प्रकार छूट ही नहीं सकता है।

अलंकार—आत्मतुष्टि प्रमाण।

दो०—जिन दिन देखे वे सुमन गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार ॥६५५॥

शब्दार्थ—बहार = वैभव का समय। अपत = पत्र रहित।

भावार्थ—जिन दिनों तुमने वे फूल देखे थे वह बहार (वैभव का समय था) तो बीत चुकी। हे भौंरे (क़द्रदान) अब तो गुलाब की केवल पत्र रहित कँटीली डार ही शेष रह गई है।

अलंकार—अन्योक्ति (किसी सम्पत्ति हीन पुरुष वा गलित यौवना स्त्री पर)।

दो०—इहि आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं बहुरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल ॥६५६॥

भावार्थ—इस आशा से भौंरा गुलाब की जड़ से अटका रहता है कि वसंत ऋतु में पुनः इन डालों में वेही फूल होंगे (जिनका रसास्वादन पहले कर चुका हूं)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—सरस कुसुम मँडरात अलि न झुकि झपटि लपटात।
दरसत अति सुकुमारता परसत मन न पत्यात ॥६५७॥

भावार्थ—रसीले फूल के इर्द गिर्द भौंरा मँडराता तो है, परन्तु झुक कर और झपट कर उससे लपटाता नहीं, क्योंकि उसमें अत्यन्त कोमलता दिखाई पड़ती है, इसलिये स्पर्श करने को मन पतियाता नही (भय है कि मेरे भार से यह सुकुमार पुष्प नष्ट भ्रष्ट न हो जाय)।

अलंकार—अन्योक्ति।



अलंकार—काव्यलिंग।

दो०—ओंठ उचै हाँसी भरी दृग भौंहन की चाल।
मो मन कहा न पी लियो पियत तमाखू लाल ॥६५२॥

नोट—हम इस दोहे को विहारी कृत नहीं मानते क्योंकि इसमें विहारी के दोहों का सा रस नहीं है।

दो०—बुरो बुराई जो तजै तो चित खरो सकात।
ज्यों निकलंक मयंक लखि गनैं लोग उतपात ॥६५३॥

शब्दार्थ—खरो सकात=बहुत डरता है। निकलंक = कलंक रहित (विना दाग का)। मयंक=चंद्रमा। उतपात=उपद्रव।

भावार्थ—यदि बुरा जन बुराई छोड़ दे तो चित्त बहुत डरता है, जैसे विना दाग के चंद्रमा को देख कर लोग उपद्रव का अनुमान करते हैं।

(नोट)—ज्योतिष मत से ऐसा माना जाता है कि यदि चंद्रमा का काला दाग कम हो जाय वा विल्कुल न हो तो संसार में हिम वर्षा होगी।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—भाँवरि अनभाँवरि भरो करो कोटि बकवाद।
अपनी अपनी भाँति को छुटै न सहज सवाद ॥६५४॥

शब्दार्थ—भाँवरि भरो=घूमने जाया करो। अनभाँवरि भरो = घूमने न जाया करो-एक स्थानमें बैठे रहो। भाँति=टेव, स्वभाव।

(विशेष)—कोई नायक बड़ा घुमक्कड़ है। स्त्री के निवेदन करने पर उसने कहा है कि लो अब मैं न जाया करूंगा, पर नायिका अविश्वास करती हुई कहती है।

भावार्थ—आप चाहे घूमने जाइये अथवा न जाइये और चाहे आप करोड़ बार अपने निर्दोष होने का प्रमाण दीजिये

(पर मैं विश्वास नहीं कर सकती) क्योंकि अपनी २ प्रकृति का सहज स्वाद तो किसी प्रकार छूट ही नहीं सकता है।

अलंकार—आत्मतुष्टि प्रमाण।

दो०—जिन दिन देखे वे सुमन गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार ॥६५५॥

शब्दार्थ—बहार = वैभव का समय। अपत = पत्र रहित।

भावार्थ—जिन दिनों तुमने वे फूल देखे थे वह बहार (वैभव का समय था) तो बीत चुकी। हे भौंरे (क़द्रदान) अब तो गुलाब की केवल पत्र रहित कँटीली डार ही शेष रह गई है।

अलंकार—अन्योक्ति (किसी सम्पत्ति हीन पुरुष वा गलित यौवना स्त्री पर)।

दो०—इहि आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं बहुरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल ॥६५६॥

भावार्थ—इस आशा से भौंरा गुलाब की जड़ से अटका रहता है कि बसंत ऋतु में पुनः इन डालों में वेही फूल होंगे (जिनका रसास्वादन पहले कर चुका हूं)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—सरस कुसुम मँडरात अलि न झुकि झपटि लपटात।
दरसत अति सुकुमारता परसत मन न पत्यात ॥६५७॥

भावार्थ—रसीले फूल के इर्द गिर्द भौंरा मँडराता तो है, परन्तु झुक कर और झपट कर उससे लपटाता नहीं, क्योंकि उसमें अत्यन्त कोमलता दिखाई पड़ती है, इसलिये स्पर्श करने को मन पतियाता नहीं (भय है कि मेरे भार से यह सुकुमार पुष्प नष्ट भ्रष्ट न हो जाय)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—बहकि बड़ाई आपनी कत राचति मति भूल।
बिन मधु मधुकर के हिये गड़ै न गुड़हर फूल ॥६५८॥

शब्दार्थ—राचति=प्रसन्न होती है। गड़ै न=चुभता नहीं, अच्छा नहीं लगता। गुड़हर=जपा-पुष्प।

भावार्थ—हे मति भूल (अज्ञान जन) झूँठी प्रशंसा से बहक कर अपनी बड़ाई में क्यों प्रसन्न हो रहा है। बिना मधु के भौंरे के चित्त में गुड़हर का फूल अच्छा नहीं लगता।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—जदपि पुराने, बक तऊ, सरवर निपट कुचाल।
नये भये तु कहा भयो, ये मनहरन मराल ॥६५९॥

भावार्थ—हे सरोवर यह तुम्हारी निपट कुचाल है कि तुम पुराने ही साथियों पर कृपा करना चाहते हो। यद्यपि तुम्हारे ये साथी पुराने हैं तो भी बक ही तो हैं। और हम नये हैं तो क्या हुआ, हैं तो आखिर मनहरने वाले हंस। बकुलों से हंस अधिक माननीय हैं।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—अरे हंस या नगर में, जैयो आप बिचारि।
कागनि सों जिन प्रीति करि कोकिल दई बिड़ारि ६६०

भावार्थ—हे हंस इस नगर में, जिसने (नगर ने) कौवों से प्रीति करके कोकिल को भगा दिया है, उस नगर में अपनी योग्यता विचार कर जाना।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—को कहि सकै बड़ेन सों लखे बड़ी हू भूल।
दीने दई गुलाब कों इन डारन ये फूल ॥ ६६१ ॥

भावार्थ—बड़ों की बड़ी भूल भी देखकर उनसे कौन कह




सकता है, देखो ईश्वर ने गुलाब को इन कँटीली डालों में ये सुन्दर फूल दिये हैं (यह ईश्वर की भूल है, पर कोई ईश्वर की निंदा नहीं करता)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—ये न यहाँ नागर बड़े जिन आदर तो आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब ॥६६२॥

भावार्थ—वे बड़े प्रवीण मनुष्य यहां नहीं हैं जिनके आदर से तेरी प्रतिष्ठा होती है। गँवई गाँव में फूला हुआ गुलाब न फूले हुए के समान ही हुआ (फूलना और न फूलना बराबर ही है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—कर लै सूँघि सराहि कै रहे सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को गँवई गाहक कौन ॥ ६६३ ॥

शब्दार्थ—गंधी=इत्र फुलेल बेचने वाला।

भावार्थ—हे गंधी, इस गँवई गाँव में गुलाब के इत्र का खरीदार कौन है (कोई नहीं है) यहां तो ऐसे लोग हैं जो इत्र को हाथ में लेकर सूंघते हैं (अर्थात् यह भी नहीं जानते कि इत्र कैसे सूंघा जाता है) सराहते हैं, और चुप होकर रह जाते हैं (अर्थात् यह भी नहीं कह सकते कि काहे का इत्र है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—को छूट्यो यहि जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत त्यों त्यों उरझत जात।६६४।

भावार्थ—हे हिरन! क्यों अकुलाता है, इस जाल में पड़कर कौन छूट सका है। तू ज्यों ज्यों फंदों को सुलझा कर भागना चाहता है त्यों त्यों अधिकाधिक उलझता जाता है।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—बहकि बड़ाई आपनी कत राचति मति भूल।
बिन मधु मधुकर के हिये गड़ै न गुड़हर फूल ॥६५८॥

शब्दार्थ—राचति=प्रसन्न होती है। गड़ै न=चुभता नहीं, अच्छा नहीं लगता। गुड़हर=जपा-पुष्प।

भावार्थ—हे मति भूल (अज्ञान जन) झूँठी प्रशंसा से बहक कर अपनी बड़ाई में क्यों प्रसन्न हो रहा है। बिना मधु के भौंरे के चित्त में गुड़हर का फूल अच्छा नहीं लगता।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—जदपि पुराने, बक तऊ, सरवर निपट कुचाल।
नये भये तु कहा भयो, ये मनहरन मराल ॥६५९॥

भावार्थ—हे सरोवर यह तुम्हारी निपट कुचाल है कि तुम पुराने ही साथियों पर कृपा करना चाहते हो। यद्यपि तुम्हारे ये साथी पुराने हैं तो भी बक ही तो है। और हम नये हैं तो क्या हुआ, हैं तो आखिर मनहरने वाले हंस। बकुलों से हंस अधिक माननीय हैं।

अलकार—अन्योक्ति।

दो०—अरे हंस या नगर में, जैयो आप विचारि।
कागनि सों जिन प्रीति करि कोकिल दई विड़ारि ६६०

भावार्थ—हे हंस इस नगर में, जिसने (नगर ने) कौवों से प्रीति करके कोकिल को भगा दिया है, उस नगर में अपनी योग्यता विचार कर जाना।

अलकार—अन्योक्ति।

दो०—को कहि सकै बड़ेन सों लखे बड़ी हू भूल।
दीने दई गुलाब को इन डारन ये फूल ॥ ६६१ ॥

भावार्थ—बड़ों की बड़ी भूल भी देखकर उनसे कौन कह




सकता है, देखो ईश्वर ने गुलाब को इन कँटीली डालों से ये सुन्दर फूल दिये हैं (यह ईश्वर की भूल है, पर कोई ईश्वर की निंदा नहीं करता)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—वे न यहां नागर बड़े जिन आदर तो आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब ॥६६२॥

भावार्थ—वे बड़े प्रवीण मनुष्य यहां नहीं हैं जिनके आदर से तेरी प्रतिष्ठा होती है। गँवई गाँव में फूला हुआ गुलाब न फूले हुए के समान ही हुआ (फूलना और न फूलना बराबर ही है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—कर लै सूंघि सराहि कै रहे सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को गँवई गाहक कौन ॥ ६६३ ॥

शब्दार्थ—गंधी=इत्र फुलेल बेचने वाला।

भावार्थ—हे गंधी, इस गँवई गाँव में गुलाब के इत्र का खरीदार कौन है (कोई नहीं है) यहां तो ऐसे लोग हैं जो इत्र को हाथ में लेकर सूंघते हैं (अर्थात् यह भी नहीं जानते कि इत्र कैसे सूंघा जाता है) सराहते हैं, और चुप होकर रह जाते हैं (अर्थात् यह भी नहीं कह सकते कि काहे का इत्र है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—को छुट्यो यहि जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत त्यों त्यों उरझत जात।६६४।

भावार्थ—हे हिरन ! क्यों अकुलाता है, इस जाल में पड़ कर कौन छूट सका है। तू ज्यों ज्यों फंदों को सुलझा कर भागना चाहता है त्यों त्यों अधिकाधिक उलझता जाता है।

अलंकार—अन्योक्ति।



दो०—पट पांखे, भखु कांकरे, सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत में एकै तुही बिहंग ॥ ६६५ ॥

शब्दार्थ—भखु=भोजन की सामग्री।

भावार्थ—हे परेवा पक्षी ! संसार में एक तूही सुखी है जो पंख मात्र कपड़ों, कंकड़ मात्र भोजन और सदा एक अपनी स्त्री से संतुष्ट रहता है (जरूरी वस्त्र, आवश्यक भोजन और प्रयोजन मात्र के लिये एक धर्मपत्नी से जो संतुष्ट रहता है वही सुखी रहता है। अधिक का इच्छुक दुखी होता है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखु विहंग विचारि।
वाज पराये पानि परि तूं पंछीहि न मारि ॥६६६॥

शब्दार्थ—स्वारथ=अपना हित। सुकृत=पुण्य। विहंग=आकाशगामी।

(विशेष)—संसार में जितना परिश्रम किया जाता है वह दो हेतु से-स्वार्थ साधन, और पुण्य संचय। परंतु पाला हुआ बाज जो शिकार करता है, उसके ये दोनों तात्पर्य नहीं सिद्ध होते। इसी पर यह उक्ति है।

भावार्थ—हे विहंग (आकाश में स्वच्छंद विचरण करने वाले-उच्च कोटि के जीव) तू विचार कर देख तो कि जो तू दूसरों के लिये शिकार करता है इस में तेरा परिश्रम सब व्यर्थ ही है। न तो तेरा स्वार्थ ही सिद्ध होता है-न उस शिकार में से भर पेट खाने ही को मिलता है-और न कोई पुण्य ही होता है जिससे वह एक परमार्थ का काम समझा जाय। अतः तेरा श्रम व्यर्थ है। अतएव हे बाज पक्षी तू पराये हाथ में पड़कर छोटे छोटे पंछियों को मत मारा कर। इस

बुरे काम से बाज़ आ।

अलंकार—अन्योक्ति (दुष्ट स्वामी के इशारे पर अनर्थकारी सेवक प्रति)।

दो०—दिन दस आदर पायकै करिले आपु बखान।
जौ लौं काग सराध पख तौलौं तो सनमान ॥६६७॥

शब्दार्थ—दिन दस=थोड़े दिन। बखान=बड़ाई, प्रशंसा। सराधपख=(श्राद्धपक्ष) पितृपक्ष, कनागत पक्ष।

भावार्थ—हे कौवा! थोड़े दिनों का आदर पाकर तू अपनी बड़ाई करले। जब तक श्राद्धपक्ष है तभी तक तेरा सम्मान है।

अलकार—अन्योक्ति।

दो०—मरत प्यास पिंजरा परो सुवा दिनन के फेर।
आदर दै दै बोलियत बायस बलि की बेर ॥६६८॥

शब्दार्थ—समय का फेर देखो कि सुवा पिंजड़ा में पड़ा हुआ प्यासों मरता है, और बलिके समय (श्राद्धपक्ष में) कौवे को आदर पूर्वक लाग बुलाते हैं।

अलकार—अन्योक्ति।

दो०—जाके एको एकहू, जग व्यवसाय न कोय।
सो निदाघ फूलै फलै आक डहडहो होय ॥६६९॥

शब्दार्थ—व्यवसाना=उद्योग करना (सींचना, रक्षा करना इत्यादि) निदाघ=ग्रीष्म ऋतु। डहडहा=लहलहा, पल्लवित।

भावार्थ—जिस अकौवा (मदार) के लिये संसार में एक भी मनुष्य कोई एक भी उद्योग नहीं करता (न कोई उसे लगाता है, न सींचता है, न रक्षा का प्रबंध करता है) वही अकौवा (ईश्वर भरोसे रह कर) अति कठिन ग्रीष्म ऋतु में पल्लवित और पुष्पित होता है (जिसका कोई नहीं, उसकी

रक्षा और उसका पालन ईश्वर अनायास करता है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—नहिं पावस ऋतुराज यह, सुनु तरवर मति भूल।
अपत भये बिन पाइहै, क्यों नव दल फल फूल ॥६७०॥

शब्दार्थ—पावस=वर्षाऋतु जो समदर्शी और दानी है। अपत=(१) पत्र रहित (२) बेइज्जत।

भावार्थ—हे तरवर तू भूल मत कर, यह वर्षा नहीं है कि बिना विचारे सबको अमित दान देती है, यह ऋतुराज (वसंत) है, इसके राज में बिना पत्र रहित (अप्रतिष्ठित) हुए नवीन दल, फल-फूल कैसे पाओगे?

(विशेष)—वर्षा में बिना पत्ते गिरे नवीन किल्ले निकलते हैं। वसंत में पहले पत्ते झड़ जाते हैं तब नवीन पत्ते निकलते हैं।

अलकार—अन्योक्ति।

दो०—सीतलता रु सुगंध की, महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ॥६७१॥

शब्दार्थ—रु=(अरु) और। मूर=मूल्य (मोल)। पीनस-वारे=पीनस रोग वाला जिसे सुगंध का ज्ञान ही नहीं होता।

भावार्थ—यदि पीनस रोग वाला मनुष्य कपूर को शोरा समझ कर त्याग दे (निरादृत करे) तो भी कपूर की शीतलता और सुगंध की बड़ाई नहीं घटती और न मोल ही घटता है।

अलकार—अन्योक्ति।

दो०—गहै न नेको गुन-गरब, हँसै सकल संसार।
कुच उचपद लालच रहै, गरे परेहू हार ॥ ६७२ ॥

शब्दार्थ—हार=मोतियों की माला। (श्लेष से) हार=पराजय। गले पड़ना=निरादर सहकर भी किसी के यहां रहना।

भावार्थ—यद्यपि समस्त संसार हार हार (पराजय हुई पराजय हुई) कह कर हँसता है, तो भी वह हार अपने गुन का गर्व न करके गले ही पड़ कर रहता है। इसका कारण यह है कि वह कुच समान उच्च पद (स्थान) लालच से ऐसा करता है। (उच्च पद के लालच से लोग निरादर सह कर भी रहते हैं)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—मूड़ चढ़ाये हूं रहै, परो पीठ चक भार।
रहै गरे परि राखिये, तऊ हिये पर हार ॥६७३॥

शब्दार्थ—मूंड़ चढ़ाना=बहुत आदर करना। कचभार=बालों का समूह। गले पड़ना = ज़बरई किसी के यहां रहना।

भावार्थ—बालों का समूह मूंड़ चढ़ाने पर भी पीठ ही पर पड़ा रहता है (पीछे की ओर रहता है) और हार यद्यपि गले पड़ कर रहता है तो भी उसे हृदय पर ही स्थान दिया जाता है (अर्थात् अयोग्य को आदर पूर्वक रखने से भी उत्तम स्थान नहीं दिया जा सकता, और योग्य पुरुष को निरादर पूर्वक रखने पर भी उत्तम पद देना ही पड़ता है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—जो सिरधरि महिमा मही लहियत राजा राव।
प्रगटत जड़ता आपनी मुकुट पहिरियत पाव ॥६७४॥

शब्दार्थ—मही = बड़ी। जड़ता = मूर्खता।

भावार्थ—जिस मुकुट को सिर पर धारण करके राजा-राव लोग भारी बड़ाई पाते हैं, उसी मुकुट को पैर में पहन कर केवल अपनी मूर्खता ही प्रकट करते हो। (योग्य का निरादर करने से मूर्खता ही प्रकट होती है)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—चले जाहु ह्याँ को करत हाथिन कौ ब्यौपार
नहिं जानत या पुर बसत धोबी ओड़ कुम्हार ॥६७५॥

शब्दार्थ—ओड़ = बेलदार (जो गदहे पालते हैं)

भावार्थ—हे हाथी के ब्यौपारी; तुम यहां से चले जाओ यहां कोई हाथियों की खरीद फरोख्त नहीं करता। नहीं जानते कि यहां सब धोबी, बेलदार, और कुम्हार ही बसते हैं (जो गदहे रखते हैं)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मति अंध तू अतर दिखावत ताहि ॥६७६॥

शब्दार्थ—फुलेल = फूलों से सुवासित तैल। आचमन करि = पीकर। गंधी = फुलेल वा इत्र बेचने वाला।

भावार्थ—जो फुलेल को पीकर प्रशंसा से कहता है कि मीठा तो है (अर्थात् इतना तक नहीं जानता कि फुलेल का प्रयोग कैसे होता है और स्वाद कैसा होता है) रे मूर्ख गंधी तू उसको इत्र दिखाता है? (इसकी क़द्र यह क्या जाने। जो फुलेल का प्रयोग न जाने वह इत्र की क्या क़द्र करेगा)।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—विषम बृषादित की तृषा जियो मतीरनि सोधि।
अमित अपार अगाध जल मारौ मूढ पयोधि ॥६७७॥

शब्दार्थ—विषम = अति कठिन। बृषादित = (बृष + आदित्य) ग्रीष्म ऋतु, जब सूर्य बृष राशि पर होते हैं (जेठ मास में)। मतीरा = तरबूज़ा (राजपूताना)। मारौ = जाने दो, त्यागो। मूढ़ = अबूझ (जो किसी की भी प्यास नहीं बुझाता)।





भावार्थ—तीक्ष्ण ग्रीष्म की प्यास में तरबूज़ों को खोज कर उनसे अपनी प्यास बुझाओ और जीवन धारण करो। और बहुत और अथाह जल वाले मूर्ख समुद्र को जाने दो (जल तो बहुत है, पर खारा है, पीने के अयोग्य है) अर्थात् थोड़े और उत्तम पदार्थ से काम चलाओ, बहुत और अयोग्य पदार्थ को त्याग दो।

अलंकार—अन्योक्ति।

दो०—जम-करि मुख तरहरि परो यह धरि हरि चित लाय।
विषय तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाय॥६७८॥

शब्दार्थ—करि = हाथी। तरहरि = तलहटी, नीचे। यह धरि= ऐसा समझकर। हरि चितलाय=ईश्वर में चित्त लगाओ।

भावार्थ—जमराज रूपी हाथी के मुख के नीचे पड़ा हुआ समझ कर ईश्वर में चित्त लगा, और विषय की इच्छा छोड़ अब भी श्री नृसिंह के गुण गाओ।

अलंकार—रूपक।

दो०—जगत जनायो जेहि सकल सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये आँखि न देखी जाहि॥६७९॥

भावार्थ—जिसने समस्त जगत को जनाया (जिसके दिये हुए ज्ञान से तूने समस्त संसार को जान लिया) उस परमेश्वर को न जाना। यह वैसी ही बात है जैसे जिन आंखों से सब कुछ देखते हैं वे आंखें स्वयं नहीं देखी जा सकतीं।

अलंकार—उदाहरण।

दो०—जप-माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचै नाँचै वृथा साँचै राँचै राम॥ ६८०॥

भावार्थ—जप करने की माला, छापा और तिलक इत्यादि

से एक भी काम न चलेगा। मन के कच्चे होने से यह सब नाच व्यर्थ है, क्योंकि राम तो सच्चे से अनुरक्त रहते हैं (ऊपरी दिखाऊ भेप से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता, सच्चा अनुराग हो तो ईश्वर शीघ्र ही प्राप्त होता है)।

अलंकार—परिसंख्या और अनुप्रास।

(नोट)

इस ऊपर लिखे हुए अर्थ से माला, छापा तिलक इत्यादि की निंदा होती है अतः भक्त लोग यों कहते हैं:—जपमाला, छापा और तिलक की इतनी बड़ी महिमा है कि जो कोई इनको धारण करता है उनकी तो बात ही नहीं कह सकता। इनका माहात्म्य यहां तक है कि जो कोई इनको नवता है (माला, छापा, तिलकधारियों को प्रणाम करता है) उस का भी काम बन जाता है। कच्चे मन वाले लोग यदि वृथा ही समझ कर खेल समझ कर इस नाच को नाचें तो भी राम जी सचमुच उनसे अनुरक्त हो जाते हैं।

अलंकार—अत्युक्ति और अनुप्रास।

दो०—यह जग काँचो काँच सो मैं समुझ्यो निरधार।
प्रतिबिंबित लखियै जहाँ एकै रूप अपार ॥ ६८१ ॥

भावार्थ—मैंने निश्चय समझ लिया कि यह अस्थायी संसार काँच (आईना) के समान है। इसमें ईश्वर का एक ही रूप असंख्य रूपों में प्रतिबिंबित होता है (ईश्वर सर्व व्यापी है)।

अलंकार—उपमा और प्रमाण।

दो०—बुधि अनुमान प्रमाण श्रुति किये नीठि ठहराय।
सूक्षम गति परब्रह्म की अलख लखी नहिं जाय ॥ ६८२ ॥

शब्दार्थ—नीठि=कठिनता से।

भावार्थ—बुद्धि के अनुमान से और श्रुति के प्रमाण से कठिनाई से निश्चित होता है। परब्रह्म की गति (उसका अस्तित्व) ऐसी अलख है कि प्रत्यक्ष लखी नहीं जाती (अर्थात् ईश्वर प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। अनुमान और शब्द प्रमाण ही से उसका अस्तित्व जाना जाता है)।

अलंकार—काव्यलिंग।

दो०–तौलगि या मन सदन में हरि आवैं किहि बाट।
विकट जटे जौलौं निपट खुलैं न कपट कपाट ॥६८३॥

शब्दार्थ—जटे = जड़े हुए, बंद। निपट = अत्यंत।

भावार्थ—तब तक इस मन रूपी घर में ईश्वर किस रास्ते से आवें, जब तक अत्यंत दृढ़ता से बंद किये हुए कपट के किवाड़े न खुलें।

अलङ्कार—रूपक।

दो०–या भव पारावार को उलँघि पार को जाय
तिय-छवि छायाग्राहनी गहै बीच ही आय ॥६८४॥

शब्दार्थ—पारावार=समुद्र। छायाग्राहनी=सिंहिका नाम्नी राहु की माता जो लंका के निकट समुद्र में रहती थी और जिसने हनुमान जी को लंका जाते समय पकड़ने का उद्योग किया था (तुलसी० निश्चरि एक सिंधु महँ रहई। करि माया नभ के खग गहई)।

भावार्थ—इस संसार रूपी समुद्र को उल्लंघन करके कौन पार जा सकता है, क्योंकि स्त्रियों की छवि रूपी सिंहिका बीच ही में आकर पकड़ती है। (कबीर—इक कंचन अरु कामिनी दुर्गम घाटी दोय)।

अलंकार—रूपक।

दो०—भजन कह्यौ तासों भज्यो भज्यो न एकौ वार।
दूर भजन जासों कह्यौ सो तूँ भज्यो गँवार ॥ ६८५ ॥

शब्दार्थ—भजना=भजन करना। भजना=भागना।

भावार्थ—जिसका भजन करने कहा था उससे तो भागा, उसका भजन एकवार भी न किया और जिससे भागने कहा था उसी से अनुरक्त हुआ, इससे जान पड़ा कि तू गँवार (अज्ञान) है।

अलंकार—यमक।

दो०—पतवारी माला पकरि और न कछू उपाय।
तरि संसार पयोधि को हरि नामैं करि नाव ॥६८६॥

शब्दार्थ—पतवारी=नाव का करिया (कर्ण) जिसके बल पर नाव चलती वा इधर उधर घूमती है।

भावार्थ—दूसरा कोई उपाय नहीं है, माला रूपी करिया को पकड़ कर, हरिनाम को नौका बनाकर संसार रूपी समुद्र को तर जा।

अलंकार—रूपक।

दो०—यह विरिआ नहिं औरकी तू करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाय जिन कीने पार पयोधि ॥६८७॥

शब्दार्थ—विरिआ=बेला, समय। करिया=कर्णधार, मल्लाह। पाहन=पत्थर।

भावार्थ—यह वेला अन्य उपाय की नहीं है (कलियुग में अन्य उपाय निष्फल हैं) हे मनुष्य तू उसी मलाह को खोज, जिसने पत्थर की नाव पर चढ़ाकर बहुतों को समुद्र के पार कर दिया था (श्री राम जी ने पत्थरों के पुलपर से बंदरों की सेना उतारी थी)।




अलंकार—पर्यायोक्ति।

दो०—दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही चंग रंग गोपाल॥ ६८८॥

शब्दार्थ—गुन=(१) गुण (२) डोरी। चंग=पतंग। रंग=सम।

(विशेष)—गुन अर्थात् डोरी बढ़ाने से पतंग दूर जाती है, डोरी समेटने से निकट आती है। यही हाल ईश्वर का है। अपना गुण विस्तारने से (कि हम कुलीन हैं, विद्वान हैं इत्यादि) ईश्वर दूर भागता है और गुण हीन होने से (ऐसी भावना रखने से कि मुझ में कोई गुण नहीं है केवल उसी की दया का आधार है) ईश्वर शीघ्र दयालु होता है।

भावार्थ—गोपाल (ईश्वर) चंग के समान हैं। गुण विस्तारने से वह प्रभु दूर भगता है—जैसे डोरी (गुण) बढ़ाने से पतंग दूर अति दूर होती जाती है, और गुणहीन होने की भावना से निकट ही आ जाता है—जैसे (गुन) डोरी समेट ने से पतंग निकट आती है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

दो०—जात जात वित होत है ज्यों जिय में संतोष।
होत होत त्यों होय तौ होय घरी में मोष॥ ६८९॥

शब्दार्थ—वित=धन। मोष=मोक्ष। घरी में=थोड़े काल में।

भावार्थ—धन के जाते जाते (नष्ट होने से) जिस प्रकार धीरे धीरे संतोष ही धारण करना पड़ता है, वैसे ही यदि होते होते (बढ़ते समय भी) संतोष हो, तो थोड़े ही समय में मोक्ष प्राप्त हो जाय। (तात्पर्य यह कि जैसे धन नष्ट होने पर लोग यह कहते हैं कि क्या करें भाई हमारे नसीब में बदा

ही न था, अतः चला गया, इसी प्रकार यदि धन बढ़ते समय यह संतोष रखे कि भाई जितना नसीब में होगा मिल ही जायगा व्यर्थ पापाचरण क्यों करें—अनेक प्रकार की बेईमानी करके धन क्यों बढ़ावें-तो शीघ्र ही मोक्ष हो जाय।

अलंकार—संभावना।

दो०—ब्रजवासिन को उचित धन जो घनरुचि तन कोय।
सु चित न आयो सुचितई कहौ कहाँ ते होय ॥६९०॥

शब्दार्थ—घनरुचि=बादल के समान श्याम। जो घनरुचि तन कोय=जो कोई बादल के समान श्याम तन वाला है। सुचितई=स्थिरता, शान्ति।

भावार्थ—जो ब्रजवासियों का उचित धन है, जिसका शरीर बादल की प्रभा वाला है (अर्थात् कृष्ण) वह जब चित्त में नहीं आया तब शांति कैसे प्राप्त हो सकती है।

अलंकार—पर्यायोक्ति और यमक।

दो०—नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।
तज्यो मनो तारन बिरद बारक बारन तारि ॥६९१॥

शब्दार्थ—अनाकनी देना=सुनकर भी अनसुनी करना। फीकीपरी=अरुचिकर हुई। गुहारि=पुकार। बारन=हाथी।

भावार्थ—हे ईश्वर आपने तो अच्छी आनाकानी दी (सुनी अनसुनी सी करदी) मालूम होता है मानो एकबार हाथी को तार कर अब अन्य जनों को तारने का विरद ही छोड़ दिया है। (आगे आरत भक्तों की पुकार आपको स्वादिष्ट मालूम होती थी, अब फीकी सी हो गई है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो०—दीरघ सांस न लेहि दुख, सुख साईं नहिं भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल ॥६९२॥




शब्दार्थ—दुःख के समय लम्बी सांस न ले और सुख के समय स्वामी (ईश्वर) को मत भूल। दैया दैया क्यों करता है, ईश्वर ने जो कुछ दिया है (दुःख वा सुख) उसे स्वीकार कर, अर्थात् मालिक की मर्जी पर संतुष्ट रह।

अलकार—यमक।

दो०—कौन भांति रहि है विरद, अब देखिबी मुरारि।
वीधे मों सों आन कै, गीधे गीधहिं तारि ॥६९३॥

शब्दार्थ—विरद=बड़ाई। वीधे=उलझे हो, फँसे हो। आनकै=आकर। गीधे=परक गये हो (तारना आसान समझते हो)। गीध=जटायु।

भावार्थ—हे मुरारि अब मैं देखूंगा कि किस तरह से आप की बड़ाई रहती है। जटायु को तार कर तुम परक गये हो (जानते हो कि तारना आसान है) अब मुझसे आकर फंसे हो, मुझको तारना बहुत कठिन काम है।

नोट—"देखिबी" ब्रज भाषा का नहीं वरन् ठेठ बुंदेलखंडी प्रयोग है। इसी प्रकार दोहा नंबर २० में "लखिबी" और दोहा नंबर २६६ में "गनिबी" इत्यादि के प्रयोग से अनुमान किया जाता है कि बिहारी बुंदेलखंड के निवासी थे। 'वीधे' और 'गीधे' भी बुंदेलखंडी प्रयोग है।

अलकार—अनुप्रास।

दो०—बंधु भये का दीन के को तास्यो रघुराय?
तूठे तूठे फिरत हो झूठ विरद बुलाय ॥ ६९४ ॥

शब्दार्थ—तूठे=तुष्ट, राजी, प्रसन्न। विरद=नेकनामी, बड़ाई।

भावार्थ—आप किस दीन के बंधु हुए हैं? आपने किसको तारा है? हे रघुराज (राम जी) मुझे तो ऐसा जान पड़ता



है कि झूठी ही बड़ाई लोगों से कहलवा कहलवा कर आप इतने प्रसन्न हुए फिर रहे हो। (तात्पर्य यह कि जब मेरे बंधु बनो और मुझे तारो तब मैं जानूँ)।

अलंकार—काकु वक्रोक्ति। 'तूठे तूठे' से वीप्सा।

दो०—थोरे ई गुने रीझते विसराई वह बानि।
तुम हू कान्ह मनो भये आज कालि के दानि ॥६९५॥

भावार्थ—हे कृष्ण पहले तो तुम थोड़े ही गुण से रीझते थे, सो वह आदत आपने भुला दी। मानो आप भी अब आज कल के दाता हो गये हो (जो पहले तो कठिनता से रीझते हैं और यदि रीझे भी तो वाह २ में ही वह रीझ हज़म कर जाते हैं और यदि कुछ देना ही पड़े तो वर्षों टालटूल करते हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दो०—कब को टेरत दीन ह्वै होत न स्याम सहाय।
तुम हू लागी जगत गुरु जगनायक जग बाय ॥६९६॥

भावार्थ—मैं कब से दीन होकर पुकार रहा हूं, और हे श्याम! तुम सहायता नहीं करते। हे जगत के गुरु! हे संसार के मालिक! क्या आपको भी संसार की हवा लगगई?

अलंकार—लोकोक्ति, और गम्योत्प्रेक्षा।

दो०—प्रगट भये द्विजराज कुल सुबस बसे ब्रज आय।
मेरे हरो कलेस सब केसो केसोराय ॥ ६९७ ॥

शब्दार्थ—द्विजराज=(१) चंद्रमा (२) ब्राह्मण। सुबस= अपनी इच्छा से, खुशी से (किसी के जोर जुल्म से नहीं)। केसो=(केशव) ग्रन्थकर्ता श्री बिहारी लाल जी के पूज्य पिता का नाम। केसोराय=श्रीकृष्ण जी।

(विशेष)—विहारी जी कृष्ण स्वरूप मान कर अपने पिता



से अथवा पिता स्वरूप मान श्री कृष्ण से निज क्लेश निवारणार्थ विनती करते हैं।

भावार्थ—(कृष्णपक्ष में) हे केशवराय-कृष्ण-आप चंद्रवंश में प्रकट हुए (जन्म लिया) और स्वेच्छा से ब्रज में आ कर बसे । मैं भी ब्रजवासी हूं। अत. हे कृष्ण मेरे सब क्लेश हरो ।

(पिता पक्ष में) हे कृष्ण रूप केशव (पिता) जी आप कृष्ण की तरह द्विजराज कुल (ब्राह्मण वंश) में पैदा हुए और स्वेच्छा से ब्रज में आ बसे थे । ऐसे कृष्ण रूप मेरे पिता (केशव) मेरे सब क्लेश हरो ।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक ।

दो०—घर घर डोलत दीन ह्वै जन जन जाँचत जाय ।
दिये लोभ चसमा चखन लघुहू बड़ो लखाय ॥६९८॥

भावार्थ—लोभी आदमी दीन बना हुआ द्वार द्वार फिरता है और प्रत्येक जन से याचना करता है । इसका कारण यह है कि वह लोभ रूपी चश्मा आँखो पर लगाये रहता है, अतः उसे छोटा मनुष्य भी बड़ा दिखाई देता है ।

अलंकार—रूपक ।

दो०—कीजै चित सोई तिरौं, जिहि पतितन के साथ ।
मेरे गुन-औगुन-गनन, गनौ न गोपीनाथ ॥६९९॥

भावार्थ—हे गोपी नाथ ! मेरे गुणों और अवगुणों के समूहों को न गिनो, अपने चित्त में वही कृपा धारण कीजिये (जो पतितों को तारते वक्त धारण करते हो) जिससे मैं भी अन्य पतितों के साथ तर जाऊँ ।

अलंकार—काव्यलिङ्ग ।

दो०—जो अनेक पतितन दियो, मोहूं दीजै मोष ।
तो बांधौ अपने गुनन, जो बांधे ही तोष ॥७००॥



शब्दार्थ-गुण = (१) गुणानुवाद (२) रस्सी।

भावार्थ—यदि आपने अनेक पापियों को दी हो, तो मुझे भी मोक्ष दीजिये, (क्यों कि मैं भी पापी हूं)। और यदि बांधने में ही आपको संतोष है, तो अपने गुणों से बांधिये।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट आक्षेप।

दो०—कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा विपति विदारनहार ॥ ७०१॥

भावार्थ—चाहे कोई करोड़ों की संपत्ति संग्रह करे चाहे लाखों की वा हजारों की। मेरी संपत्ति तो श्री कृष्ण ही हैं जो सदा सब की विपत्ति नाश किया करते है।

अलंकार—हेतु (द्वितीय)।

दो०—ज्यौं ह्वैहौं त्यौं होहुँगो हौं हरि अपनी चाल।
हठ न करौ अति कठिन है मो तारिबो गोपाल ॥७०२॥

भावार्थ—हे हरि! मैं अपनी करणी से जैसा हूँगा वैसाही हूँगा (कोई भी कर्म के फल को अदल बदल नहीं सकता) अतः हे गोपाल आप हठ न करें, मुझको तारना बड़ा कठिन काम है।

अलंकार—सम (दूसरा) - (जैसा कर्म वैसा फल)।

दो०—करौ कुबत जग कुटिलता तजौं न दीन दयाल।
दुखी होहुगे सरल चित बसत त्रिभंगी लाल ॥ ७०३॥

भावार्थ—हे दीन दयाल! संसार मेरी निंदा (कुबत=कुवार्ता) किया करे (मुझे कुछ परवाह नहीं,) पर मैं तो कुटिलता न छोड़ूंगा, क्योंकि तुम हो त्रिभंगी लाल, तुमको सीधे चित्त में बसने में दुःख होगा (टेढ़ी वस्तु के लिये टेढ़ा ही स्थान चाहिये)।

अलंकार—सम (प्रथम)।



दो०—मोहिं तुम्हैं बाढी बहस को जीतै जदुराज।
अपने २ बिरद की दुहुन निबाहन लाज ॥ ७०४ ॥

भावार्थ—हे यदुराज! मुझसे और आप से तो अब विवाद बढ़ ही गया है, अब देखना है कि कौन जीतता है। अपने २ विरद के निर्वाह की लज्जा दोनों को चाहिये—(देखना है कि मैं पाप करने में बढ़ जाता हूं या आप पापियों को तारने में)।

अलंकार—सम।

दो०—निज करनी सकुचौ हि कत सकुचावत यहि चाल।
मोहू से अति विमुख त्यों सनमुख रहि गोपाल ॥७०५॥

शब्दार्थ—हि=हृदय में। त्यों=तरफ, ओर।

भावार्थ—हे गोपाल अपनी करणी से तो मैं अपने हृदय में सकुचताही था, तिस पर आप अपनी इस चाल से मुझे और अधिक क्यों लजाते हैं कि मुझ सरीखे अति बिमुख की ओर भी आप सम्मुख रहते हैं।

अलंकार—विषम।

दो०—तौ अनेक अवगुन भरी चाहै याहि बलाय।
जो पति संपति हू बिना जदुपति राखे जाय ॥७०६॥

भावार्थ—जो विना संपत्ति के ही श्री कृष्ण मेरी यथार्थ प्रतिष्ठा रखें, तो अनेक अवगुणों से भरी संपत्ति को मेरी बलाय चाहे।

अलंकार—संभावना।

दो०—हरि कीजत तुमसों यहै विनती वार हजार।
जेहि तेहि भांति डरो रहौं परो रहौं दरबार ॥७०७॥

भावार्थ—हे हरि आप से हजार वार मेरी यही विनती है कि जिस तरह मुमकिन हो मुझे अपने दरवाजे पर पड़ा रहने दीजिये।

सो०—पावस कठिन जु पीर अबला क्योंकरि सहिसकैं ।
तेऊ धरत न धीर रक्त बीज सम अवतरे ॥ ७१८ ॥

दो०—प्यासे दुपहर जेठ के थके सबै जल सोधि ।
मरुधर पाय मतीर हू मारू कहत पयोधि ॥७१९॥

संवत ग्रह ससि जलधि छिति छठ तिथि बासरचंद ।
चैत्रमास पछ कृष्ण में पूरन आनँद कंद ॥ ७२० ॥

सतसैया के दोहरा अरु नावक के तीर ।
देखत तो छोटे लगैं घाव करैं गंभीर ॥ ७२१ ॥

समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोय ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होय ॥७२२॥

सामा सैन सयान सुख सबै साह के साथ ।
बाहुबली जयसाह जू फते तिहारे हाथ ॥ ७२३ ॥

हुकुम पाय जयसाह को हरि-राधिका-प्रसाद ।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद ॥ ७२४ ॥

कालि दसहरा बीति है धरिमूरख जिय लाज ।
दुरयो फिरत कत द्रुमन में नीलकंठ बिन काज ॥७२५॥



दोहों के नंबर की सूचनिका





शब्द-कोष ।



(अ)

अँगोट=आड़, रक्षा ४६६
अएरना=अंगीकार करना २७६
अकस=ईर्ष्या, वैमनस्य १०
अचकां=अचानक छिपकर २७६
अछत=नास्ति, नहीं ५३१
अछेह=(१) बहुत अधिक १५४
(२) निरंतर ५०१
अठान=अनुचित कार्य १८६
अदब=आदर ४५४
अनखाहट=क्रोध ४६६
अनखुली=(अनखु+ली)
कोप करने वाली ३८८
अनवट=अँगुठा २१२
अबोला=मौन ४३३
अमोलक=बहुमूल्य ४३
अर=(अड़)हठ, ५२, ३४८
अरगट=(१) (आड़गत)
घूँघुट (२) (अलगंत)
अलग ५०
अलीक=झूठ ४७७

(आ)

आंट=दाब ६२१
आक=मदार, अकौवा ४३५
आघु=(सं० अर्घ) मूल्य
आदर ४७
आड=लंबी टिकुली, लंबा
टीका ५६७
आमिल=शासक, गवर्नर ३१
आलवाल=थाला २१५
आले=गीले, भीगे ४६७
आसव=मदिरा, शराब १६३
आह=साहस ४२

(इ)

इठलाहट=परिहास ४५४

(ई)

ईछन=नेत्र ५७
ईठ=(सं० इष्ट) मित्र ६८, ३२५

(उ)

उचना=उच्च होना, उठना २१८

उचाना=उठाना ३४८
उछकना=नशे का उतरना १९४
उजास=उजेला, प्रकाश १०२
उझकना=(१) चौकना ५५६
(२)झांक कर देखना ३०६
उठान=दौड़,धावा ३५०
उताल=उतावली, शीघ्रता ३१६
उदोत=प्रकाश, छवि ३७, ४१
उपैजाना=उड़जाना २६४
उमदाना=उन्मत्त की सी चेष्टा करना २९१
उलमना=लटकना,झुकना ३१८
उरवसी=(१)धुकधुकी चौकी १३०
(२)एक अप्सरा विशेष २५९
उसरना=हट जाना ३४७
उसास देना = उखाड़ देना उभाड़ना ५७८
उसीर = खस ५२३

(ऐ)

ऐंड़=गर्व,घमंड ३४५

(ओ)

ओड़=बेलदार, मिट्टी खोदने वाला ६७५
ओक=स्थान, घर ५८०
ओथरो = उथला ६४५

(औ)

औम=(सं० अवम) जिसका क्षय हो, वह तिथि जिसकी हानि हो ५३१

(क)

कजाकी=(अ) लूट मार, हत्यारापन ५१
कटना=रीझना २८५
कटनि = आशक्ति, रीझ ४१६
कन = (सं० कण) भिक्षा १६१
कपूर मणि=कहरुवा, एक प्रकार का गोंद जिसमें तृण उठाने की शक्ति होती है जैसे चुंबक में लोहा उठाने की शक्ति है १४८
किबलनुमा=एक यंत्र विशेष जिसकी सुई सदैव एकही ओर ठहरती है ६१
करिया=कर्णधार, मलाह ६८७
कलित= १) युक्त ३६३
(२) सुन्दर ३६४
काती = तलवार ५४०

(थ)

थुरहथी=छोटे हाथ वाली १६१

(द)

दंद=दुःख ६३२
ददोरा=चोट की सूजन ६०६
दमामा=नगारा ६२४
दाघ=दाह, जलन ५६५
दान=गजमद ५६०
दाम=दमड़ी ३७
दुकूल=कपड़ा ५४३
द्रुमची=पतली शाखा ३६६

(ध)

धरधरा=धड़का ३७८
धरहरि=धैर्य २७५
धुरवा=मेघ, बादल ५७२
धोवती=धोती ६४७

(न)

नटना=नाहीं करना ४०५
नटसाल=तीर की गांसी जो टूट कर अंग के भीतर रह जाती है १२२
नतरकु=नहीं तो २४६
नांदना=चैतन्य हो उठना २७८
नाग वेलि=पान ४१६
नायक=नाच गान सिखाने वाला गुरु ६३
नारि=गर्दन ६०७
नारी=राशि १२४
नावक=नलिका-बाण ८०
निजु=निश्चय पूर्वक ४२०
निदाघ=ग्रीष्म ,५२३-५६५
निदान=रोग का कारण ४८८
निमूँद=प्रगट, खुला हुआ ५२२
निरधार=निश्चय ६८१
निसक=निःशक्ति, निर्बल ६३४
नीठि=मुशकिल से २०१,६८२
नींदना=निंदा करना ५३६
नै=नदी, झुककर २८,५२६,६०१

(प)

पंचाली=द्रौपदी ५३४
पगार=उथला पानी, छीलर ६१८
पनिहा=चोरी का पता देने वाला ३६२
परिमल=सुगंध ५१८
परी=(फा०) अप्सरा ३६८
पलटो=बदला ४६४
पहुला=कुमोदिनी ५६६
पाटल=गुलाब ३०४

